मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा

(एलोपैथिक ढंग से)

३८ चित्रों के साथ

(मल, मूत्र, थूक, स्राव, वीर्य, रक्तादि की परीक्षा विधि
वृहद रूप से दी गई है)

मेडिकल पुस्तक भवन का छब्बीसवां पुष्प

मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा

भूमिका लेखक

डा० शिवनाथ खन्ना

एम. बी. बी. एस., पी. डी. एच.
प्राध्यापक—आयुर्वेदिक कालेज,
काशी विश्वविद्यालय, काशी ।

डा० धीरेन्द्र वर्मा पुस्तक-संग्रह

डा० शिवदयाल गुप्त

ए. एम. एस. (का. वि. वि.)
(सचित्र नेत्र रोग विज्ञान, सफल औषधियाँ, संततिनिग्रह,
तात्कालिक चिकित्सा आदि के रचयिता)

मेडिकल पुस्तक भवन
बनारस
प्रकाशक

प्रकाशक द्वारा सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण] जनवरी, १९५४ [मूल्य २॥) मात्र

प्रकाशक—
मेडिकल पुस्तक भवन,
अशोक भवन,
गोला दीनानाथ
बनारस

प्राप्तिस्थान—
(१) मेडिकल पुस्तक भवन,
बनारस
(२) प्रिंस फार्मेसी,
बनारस

मुद्रक—
शारदा मुद्रण : बनारस।

भूमिका

ले० डा० शिवनाथ खन्ना, एम. बी. बी. एस. डो. पी. एच
प्रोफेसर –आयुर्वेदिक कालेज, काशी विश्वविद्यालय,

हम आप सभी इस सृष्टि के 'पथिक' हैं। प्रत्येक पथिक किसी न किसी 'पथ' से गुजरता हुआ 'पथ'में ही चलते चलते समाप्त होता है। 'पथ' पर चलते रहना ही जीवन है और 'पथ' के कारण ही समाप्त हो जाना मृत्यु है। अंग्रेजी में 'पथ' (**Path**) शब्द का अर्थ होता है 'व्याधि' या रोग। आयुर्वेदज्ञ आप्तजनों का भी यही कथन है कि 'शरीरं व्याधि मन्दिरम्'। हमारा शरीर व्याधियों के रास्ते से गुजरता हुआ अन्त में व्याधियों के कारण ही मृत्यु का आलिंगन करता है। मृत्यु निश्चित है–अनिवार्य है। 'मृत्युरवार्य्यस्यात् किन्तु रोगान्निवारयेत्'। मृत्यु तो होगी ही किन्तु उसे टालते रहनेका प्रयास करना ही तो मानव जीवन की उत्कृष्टता या बुद्धिमानी है। चिकित्सक का यही तो प्रमुख उद्देश्य है कि वह मृत्यु को टालता रहे और मानव की आयु को अधिक से अधिक बढ़ाता रहे।

आयुसंवर्धनार्थ रोग-सम्बन्धी (**Pathic** पथिक) विज्ञान (**Science**) अर्थात् 'रोग-कारण-विज्ञान' (**Pathic-Science**) तो अतीव प्राचीन समय से यानी असंख्य वर्षों से यानी सृष्टि जब से भी चाहे किसी भी रूप में हुई हो, तभी से किसी न किसी रूप में चला आ रहा है। हमारे आप्तजनों ने—शुभचिन्तक बुजुर्गों ने जीवन की इस अनिवार्य संघटना की ओर बहुत ही सावधानी और समझदारी के साथ ध्यान दिया, अनुसंधान किया, प्रचार किया, इस ज्ञान को धीरे धीरे लिपिबद्ध किया। अनुभवों की कसौटी पर कसते हुए अनेकों विध अनुसंधानात्मक प्रयोग करते चले आ रहे हैं। सम्प्रति पूर्वापेक्षा उसकी द्रुत-गति प्रगति रूप में चल रही है।

'रोग-कारण-विज्ञान' (**Pathic Science**) शब्द अँग्रेजी का कुछ पुराना शब्द है। हमारे भारतीय-विद्वज्जन इस विज्ञान को 'निदान' (निदानं हेतुकारणम्-इत्यमरे) शब्द द्वारा बोधन कराते आ रहे हैं। अंग्रेजी का नवीन-आधुनिकतम शब्द है '**Pathology**'-'पथोलोजी'; इसका उच्चारण 'पैथोलोजी' किया जाता है।

भाषा विज्ञान (**Phyloay**) के अनुसार मेरे विचार से 'पैथोलाजी' शब्द का हिन्दी में अनुवाद 'पथालोची' होना चाहिए। 'पथालोची' शब्द का

प्रस्तावना

चिकित्सा में रोग के निदान का उतना ही महत्त्व है जितना कि औषधि प्रयोग का। आधुनिक युग में जब कई सफल औषधियाँ आविष्कृत हो चुकी हैं तथा नई नई आविष्कृत होती जा रही हैं यह महत्त्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि यदि हम रोग का अचूक निदान कर लेते हैं तो सफल औषधि के प्रयोग द्वारा रोगी को तत्क्षण लाभ पहुँचाया जा सकता है। यह हो सकता है कि रोग के लक्षण, चिह्न, इतिहास तथा रोगी परीक्षा के आधार पर ही निदान किया जाय और कई स्थलों पर केवल इन्हीं के आधार पर रहकर निश्चित निदान करना पड़ता है। किन्तु रोग के अचूक निदान के लिए प्रायोगिक पद्धतियों (**Laboratory Examinations**) के ऊपर यदि पूर्णतः निर्भर नहीं रहना तो कम से कम समय समय पर उनकी सहायता लेना नितान्त आवश्यक होता है। यदि साधनों के अभाव में मल, मूत्र, रक्त, कफादि परीक्षा स्वतः नहीं की जा सकती तो कम से कम यह तो आवश्यक है ही कि चिकित्सक को इस बात का पूर्ण ज्ञान हो कि किस अवस्था में कौन सी परीक्षा कराना है तथा उसे किस प्रकार कराया जा सकता है। इस सम्बन्धी परीक्षा फलों का अर्थ समझने तथा तदनुकूल चिकित्सा करने की क्षमता भी प्रत्येक चिकित्सक में होनी चाहिए। यही कारण है कि प्रत्येक चिकित्सक को इस सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान की एक अनिवार्य आवश्यकता है।

हिन्दी भाषा में अभी तक इस विषय पर कोई भी ग्रन्थ नहीं। अंगरेजी तक में इस सम्बन्धी सम्पूर्ण वर्णन भिन्न भिन्न चिकित्सा ग्रन्थों में इतस्ततः बिखरा है, एकत्रित रूप में उपलब्ध नहीं। मल, मूत्र, रक्त, कफादि परीक्षा अर्थात् प्रायोगिक पद्धतियाँ (**Laboratory Examinations**) सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान का प्रस्तुत पुस्तक में संकलन कर लिया गया है। ***किन किन रोगों में किस किस परीक्षा की आवश्यकता तथा उसका कितना महत्व है, परीक्ष्य पदार्थों मल, मूत्र, रक्त आदि को भिन्न भिन्न परीक्षाओं के लिए किस प्रकार एकत्रित***

अर्थ है [पथ-मार्ग (**System** या **way**) आलोच्यते-प्रकाश्यते (ज्ञानं-परिज्ञान-विज्ञानं वा प्रदीप्यते येन शास्त्रेण) तत्पथालोची] किसी खास रास्ते को किसी खास तरीके से खुलासा तौर पर प्रकाश में लाना होता है। परन्तु बहुत से हिन्दी या संस्कृतविज्ञ चिकित्सक वर्ग ने इस विज्ञान के लिए 'विकृति-विज्ञान' या 'व्याधि-विज्ञान' अथवा 'रोग-कारण-विज्ञान' शब्दों का व्यवहार किया है। मुझे भी इस पर कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु इतना मेरा अवश्य अनुरोध है कि इस विज्ञान के लिये केवल एक ही शब्द का भारत-व्यापी प्रयोग होना चाहिए, ताकि साधारण से साधारण व्यक्ति भी इसका अर्थायात्त कर सके।

'पैथालोजी' पर अँग्रेजी में अनेकों ग्रन्थ बृहत्काय रूप प्राप्त होते हैं। परन्तु भारत की राष्ट्रीय राजकीय भाषा हिन्दी में प्रामाणिक ग्रन्थ सम्भवतः एक भी अद्यावधि उपलब्ध नहीं है। डा० शिवदयाल गुप्त ए० एम० एस० (स्नातक-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय) ने इस दिशा में एक सुन्दर प्रयास किया है। एतदर्थ मैं उन्हें हृदय से बधाई देता हूँ। यथार्थतः यह पुस्तक पैथालोजी के केवल प्रायोगिकांश (**Practical**) की ही पूर्ति करता है। अभी सैद्धान्तिकांश (**Theory**) पर प्रकाशित होना शेष है। आशा है वह अंश भी कुछ ही अवधि के पश्चात् यथासाध्य शीघ्र ही सामने आयेगा।

सम्प्रति वैज्ञानिक साहित्य को प्रस्तुत करने में सबसे बड़ी कठिनाई है पारिभाषिक सुनिर्णीतः शब्दों का अभाव। डा० शिवदयाल जी ने इस पुस्तिका में उन्हीं शब्दों का व्यवहार किया है जिनका कि प्रयोग आयुर्वेदिक कालेज—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राध्यापक गण प्रायः प्रयोग में लाते आ रहे हैं। इनके अलावा कुछ शब्द डा० खुबीर महोदय के 'वैज्ञानिक कोष' से भी लिये गये हैं।

मेरे विचार से प्रस्तुत पुस्तिका एक बहुत बड़े अभाव की पूर्ति में सहायक होगी। आयुर्वेदिक कालेजों के छात्र इससे पर्याप्त सहायता ले सकेंगे। इसके अलावा उन चिकित्सकों के लिए भी लाभप्रद सिद्ध होगी जो कि अँग्रेजी नहीं समझते। बड़े नगरों से दूर रहने वाले चिकित्सक भी अपने तत्वावधान में आने-वाले रोगियों का मूत्र, मल, थूक एवं रक्त का यथोचित रूप से संग्रहण कर पैथोलोजी के विशेषज्ञों के पास पहुँचाने में और रोग का ठीक ठीक निदान करने में यह पुस्तिका अवश्य ही उपादेय सिद्ध होगी।

काशी, दिसम्बर १०, १९५३ **शिवनाथ खन्ना**

प्रस्तावना

चिकित्सा में रोग के निदान का उतना ही महत्त्व है जितना कि औषधि प्रयोग का। आधुनिक युग में जब कई सफल औषधियाँ आविष्कृत हो चुकी हैं तथा नई नई आविष्कृत होती जा रही हैं यह महत्त्व और भी बढ़ जाता है क्योंकि यदि हम रोग का अचूक निदान कर लेते हैं तो सफल औषधि के प्रयोग द्वारा रोगी को तत्क्षण लाभ पहुँचाया जा सकता है। यह हो सकता है कि रोग के लक्षण, चिह्न, इतिहास तथा रोगी परीक्षा के आधार पर ही निदान किया जाय और कई स्थलों पर केवल इन्हीं के आधार पर रहकर निश्चित निदान करना पड़ता है। किन्तु रोग के अचूक निदान के लिए प्रायोगिक पद्धतियों (**Laboratory Examinations**) के ऊपर यदि पूर्णतः निर्भर नहीं रहना तो कम से कम समय समय पर उनकी सहायता लेना नितान्त आवश्यक होता है। यदि साधनों के अभाव में मल, मूत्र, रक्त, कफादि परीक्षा स्वतः नहीं की जा सकती तो कम से कम यह तो आवश्यक है ही कि चिकित्सक को इस बात का पूर्ण ज्ञान हो कि किस अवस्था में कौन सी परीक्षा कराना है तथा उसे किस प्रकार कराया जा सकता है। इस सम्बन्धी परीक्षा फलों का अर्थ समझने तथा तदनुकूल चिकित्सा करने की क्षमता भी प्रत्येक चिकित्सक में होनी चाहिए। यही कारण है कि प्रत्येक चिकित्सक को इस सम्बन्धी पूर्ण ज्ञान की एक अनिवार्य आवश्यकता है।

हिन्दी भाषा में अभी तक इस विषय पर कोई भी ग्रन्थ नहीं। अंगरेजी तक में इस सम्बन्धी सम्पूर्ण वर्णन भिन्न भिन्न चिकित्सा ग्रन्थों में इतस्ततः बिखरा है, एकत्रित रूप में उपलब्ध नहीं। मल, मूत्र, रक्त, कफादि परीक्षा अर्थात् प्रायोगिक पद्धतियाँ (**Laboratory Examinations**) सम्बन्धी सम्पूर्ण ज्ञान का प्रस्तुत पुस्तक में संकलन कर लिया गया है। ***किन किन रोगों में किस किस परीक्षा की आवश्यकता तथा उसका कितना महत्व है, परीक्ष्य पदार्थों मल, मूत्र, रक्त आदि को भिन्न भिन्न परीक्षाओं के लिए किस प्रकार एकत्रित***

करना तथा प्रयोग शाला (Pathological Laboratory) तक पहुंचाना चाहिए, किस प्रकार परीक्षाएं की जायं तथा उन परीक्षाओं का क्या अर्थ लगाया जाय आदि सम्पूर्ण बातों का इस छोटे से ग्रन्थ में वर्णन है।

मातृभाषा में वैज्ञानिक ग्रन्थों को लिखते समय प्रमुख कठिनाई पारिभाषिक शब्दों के प्रयोग की पड़ा करती है और वही कठिनाई हमारे सामने भी थी। किसी प्रामाणिक शब्द कोष के अभाव में अधिकांश शब्दों का स्वतः निर्माण करना पड़ा है। सरलता, प्रयोग, भाव एवं अर्थ सभी का ध्यान रखते हुए यह कार्य किया गया है। फिर भी सम्भव है ये शब्द सर्वसम्मत न हों! कहीं कहीं कुछ शब्द कर्णकटु भी मालूम पड़ सकते हैं किन्तु इसका कारण उनकी यथार्थतः कर्ण-कटुता नहीं बल्कि शब्दों के प्रति हमारा अनभ्यस्त होना है। धीरे धीरे प्रयोग में आने पर यह अवस्था स्वयंमेव दूर होती जायगी। समझने की सुविधा के लिए प्रत्येक पारिभाषिक हिन्दी शब्द के साथ ही समानार्थी अंगरेजी शब्द भी दे दिया गया है।

प्रत्येक प्रकार का ध्यान रखते हुए भी लेखक का यह दावा नहीं हो सकता कि कृति निष्कलंक है। अतः विद्वत् समाज से विनम्र निवेदन है कि वे लेखक व प्रकाशक को त्रुटियों से अवगत कराने की कृपा करें ताकि आगामी संस्करण के समय पुस्तक में आवश्यक सुधार किये जा सकें।

पुस्तक के लेखन में कई भिन्न भिन्न ग्रन्थों की सहायता ली गई है जिनके लेखकों व प्रकाशकों के हम हृदय से आभारी हैं।

विनीतः—

जनवरी २, १९५४

शिवदयाल गुप्त

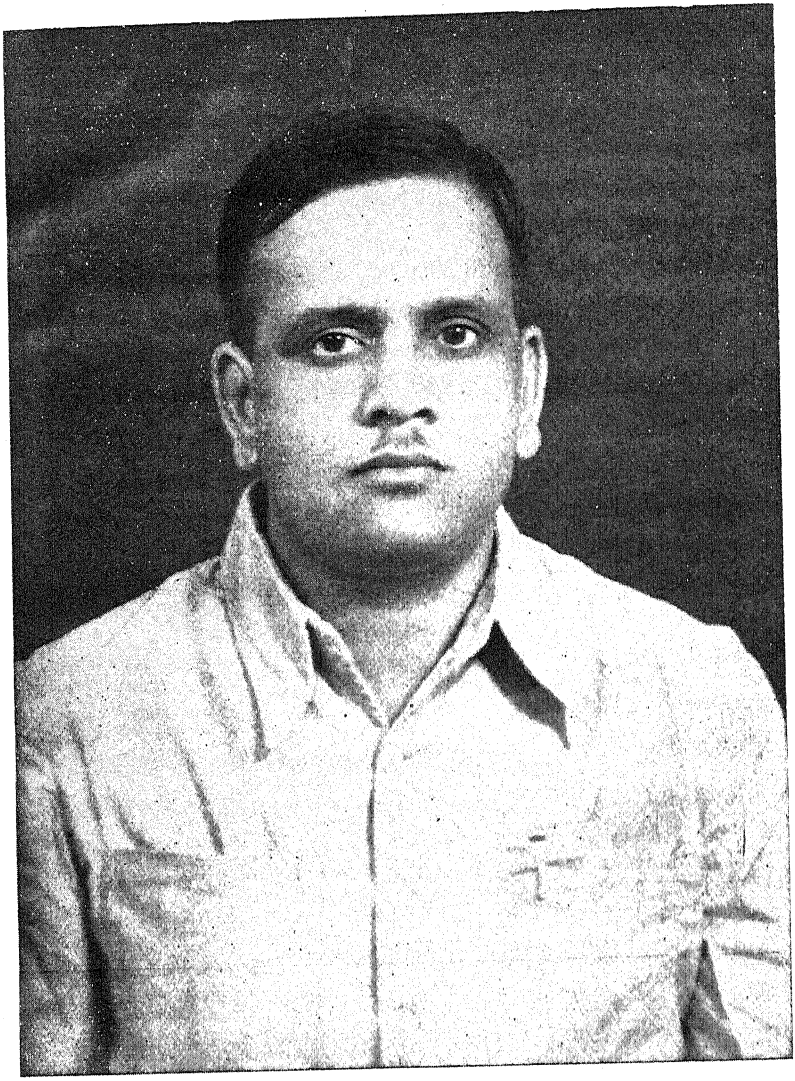

लेखक

विषय-सूची

विषय — पृष्ठ संख्या

प्रथम अध्याय

१. विषय प्रवेश १
२. परीक्ष्य पदार्थ संग्रह २
३. सामान्य नियम ३
४. मूत्र संग्रह ४
५. सामान्य सम्पूर्ण परीक्षा ४
६. मात्रात्मक परीक्षा ४
७. वर्द्धनात्मक परीक्षा ५
८. यूरिया निस्सरण परीक्षा ६
९. जीव विज्ञानात्मक परीक्षा ६
१०. मलसंग्रह ७
११. थूक संग्रह ८
१२. प्रलेप ८
गले का प्रलेप ८
मूत्र मार्गीय प्रलेप ९
गर्भाशय-ग्रीवास्राव ९
१३. छेदन द्वारा प्राप्त परीक्षा १०
१४. रक्त ११

द्वितीय अध्याय

मूत्र-परीक्षा १३
भौतिक परीक्षा १४
१५. मात्रा १४
१६. वर्ण १५
१७. गन्ध १६
१८. आपेक्षिक घनत्व १७
१९. आपेक्षिक घनत्व का बढ़ना १८
१९. आपेक्षिक घनत्व का घटना १९
२०. तलछटपरीक्षा १९
२१. तलछट परीक्षा २०
२२. म्यूकस २०
२३. फास्फेट २०
२४. यूरेट्स २०
२५. सल्फा औषधियाँ २१
२६. पूयकण २१
रासायनिक परीक्षा २१
२७. प्रतिक्रिया २१
२८. एल्ब्यूमिन के लिए परीक्षा २१
२९. ताप परीक्षा २१
३०. शोरकाम्ल परीक्षा २२

३१. सल्फासैलीसैलिक एसिड परीक्षा २२
३२. एलब्यूमिन मात्रा-परीक्षा २२
३३. निर्देश २४
३४. शर्करा के लिए परीक्षा २५
३५. फैहलिंग की परीक्षा २५
३६. बैरिडक्ट परीक्षा २६
३७. शर्करा की मात्रा परीक्षा २७
३८. फैहलिंग की परीक्षा २७
३९. बैनडिक्ट परीक्षा २८
४०. मूत्रशर्करा के निर्देश २८
४१. रक्त के लिए परीक्षा २९
४२. ग्वाइक परीक्षा ३०
४३. बैंजेडीन परीक्षा ३०
४४. हीमोग्लोबीन्यूरिया ३१
४५. मीथ ,, ३१
४५. रक्तमेह के निर्देश ३१
४६. पूय ३२
४७. पूयमेह के निर्देश ३३
४८. पित्त ३३
४९. गैमलिन की परीक्षा ३३
५०. मेकर चार्लस परीक्षा ३४
५१. हेज परीक्षा ३४
५२. यूरो बिलोनोजिन ३४
५३. एसीटो एसीटिक एसिड ३४
५४. एसिटोन ३४
५५. कुछ अन्य परीक्षायें ३५
५६. एलब्यूमोयूरिया ३५
५७. एल्फैप्टोन्यूरिया ३५
५८. इण्डीकल ३५
५९. **मूत्र के प्राकृतिक घटकों के लिए रासायनिकपरीक्षा** ३५
६०. युरिया ३६
६१. युरिया मात्रा परीक्षा ३६
६२. क्लोरायड ३९
६३. पोटास परमैंगनेट द्वारा विशेष परीक्षा ४०
६४. वृक्क कार्यक्षमता परीक्षा ४१
६५. यूरिया कन्सेट्रेशन परीक्षा ४१
६६. फिनोल सल्फोन फ्थैलीन परीक्षा ४२
६७. **सूक्ष्म दर्शकात्मक परीक्षा** ४४
६८. निरेन्द्रिय पदार्थ ४५
६९. यूरेट्स ४५
७०. यूरिक एसिड ४५
७१. कैल्सियम ओक्सेलेट ४६
७२. ल्यूसिन, टायरोसिन तथा सिस्टिन ४६
७३. कैल्सियम कार्बोनेट ४६
७४. एमोनियम यूरेट ४६
७५. सल्फनोमायड कण ४६
७६. सेन्द्रिय पदार्थ ४८
७७. निर्मोक ४८
७८. एपीथिलियल निर्मोक ४९
७९. कणदार निर्मोक ४९
८०. हापलायन कास्ट ४९
८१. बसा निर्मोक ४९

८२. सिलेण्ड्रोयड ४६
८३. जीव कोष ४६
८४. एपीथीलियल जीवकोष ४६
८५. रक्त कण ५०
८६. पूय जीवकोष ५१
८७. शुक्राणु ५१
८८. जीवाणु ५१

तृतीय अध्याय

८९. **मल परीक्षा** ५२
९०. **भौतिक परीक्षा** ५३
९१. मात्रा ५३
९२. रूप ५३
९३. वर्ण ५३
९४. गन्ध ५५
९५. मल में पाय जाने-वाले अन्य पदार्थ ५५
९६. भोजन के विना पचे हुए अंश ५५
९७. म्यूकस ५६
९८. पूय ५६
९९. रक्त ५६
१००. पित्ताश्मरी ५७.
१०१. विभिन्न कृमि ५७
१०२. कीड़े ५७
१०३. **रासायनिक परीक्षा** ५७
१०४. प्रतिक्रिया ५७
१०५. ग्वाइक परीक्षा ५८
१०६. **सूक्ष्मदर्शक से परीक्षा** ५९
१०७. प्रोटोजुआ ६०
१०८. एण्टोमीवा हिस्टोलिटिका ६०
१०९. एमीवा कोलाई ६०
११०. केन्द्र सिस्ट ६१
१११ बेसिलरी अतिसार ६१
११२ अमीबिक ,, ६१
११३ कृमि ६२
११४ सामान्य विधि ६२
११५ मेकवेल की विधि ६३
११६ विलिस की परीक्षा ६३
११७ जीवाणु ६७
११८ कोलाई विभाग ६७
११९ सेल्मोनेला विभाग ६७
१२० टायफायड बिभाग ६७
१२१ बी. डिसेंटरी ६७
१२२ कोमो बैसीलस ६७

चतुर्थ अध्याय

१२३ **श्लेष्मा परीक्षा** ६८

पाँचवाँ अध्याय

१२४ **रक्त-परीक्षा** ७२ । १२५ लाल कण ७४

१२६. श्वेतकण ७५
१२७. ग्रेन्यूलोसायट ७५
१२८. लिम्फोसायट ७५
१२९. मानोसायट ७५
१३०. रक्त प्लेट ७५
१३१. रासायनिक परीक्षा ७६
१३२. कण परीक्षा ७६
१३३. जीवाणवात्मक परीक्षा ७६
१३४. कुछ विशिष्ट परीक्षा ७६
१३५. रक्तकोरासायनिकपरीक्षा ७६
१३६. आपेक्षिक घनत्व ७६
१३७. रक्त में पाये जानेवाले भिन्न भिन्न लवण ७७
१३८. वाण्डेन वर्ग परीक्षा ७८
१३९. ततत्क्षण प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया ८०
१४०. विलम्बित ८०
१४१. द्विअर्थी ८०
१४२. अप्रत्यक्ष परीक्षा ८०
१४३. शर्करा सह्यता ८०
१४४. रक्तकण गणना ८६
१४५. रक्तकणों की वृद्धि व ह्रास ८६
१४६. श्वेत कण ८७
१४७. श्वेत कणों की संख्या का महत्व ८८
१४८. श्वेत कण वृद्धि के कारण ८८
१४९. ,, ह्रास ,, ८९
१५०. रक्त प्लेटलेट ८९
१५१. रक्ताणु संख्या का महत्व ९०
१५२. रक्तरंग ९०
१५३. टैलक्विस्ट की विधि ९०
१५४. साहिली का रक्तरंग मापक ९१
१५५. रक्तरंग का ह्रास एवं वृद्धि ९१
१५६. रक्तरंग निदर्शक ९१
१५७. संघटित रक्त कणों का आयतन ९४
१५८. सूक्ष्मदर्शक द्वारा रक्तपरीक्षा ९५
१५९. प्रलेप तैयार करना ९६
१६०. रंजन ९६
१६१. रक्तकणों में परिवर्तन ९८
१६२. रक्ताल्पता ९९

छठवाँ अध्याय

रक्त परीक्षा क्रमशः

१६३. श्वेतकणों की पृथक २ गणना १०२
१६४. पौलीमोफेन्यूक्लियर न्यूट्रोफिल १०२
१६५. यूसनोफिल १०३
१६६. दीर्घाकार तथा ह्रस्व लिम्फोसायट १०३
१६७. बेसीफिल १०३
१६८. मोनोसायट अथवा लार्ज हायलापन १०३

१६६. रक्तगत जीवाणु १०६
१७०. ताजी प्रलेप १०६
१७१. स्थूल प्रलेप १०७
१७२. मलेरिया का जीवाणु १०८
१७३. श्लीपद कृमि ११२
१७४. कालाजार का जीवाणु ११३
१७५. आवर्तक ज्वर का जीवाणु ११३
१७६. जीवाणु मयता ११३
१७७. **रक्तकी कुछ विशिष्ट परीक्षायें** ११४
१७८. वर्णपट परीक्षा ११४
१७९. रक्तस्थापन कार्य ११४
१८०. रक्तस्राव काल ११५
१८१. तलच्छट निर्माणगति ११६
१८२. रक्तकणों की भंजनशीलता ११६
१८३. रक्त विभाजन ११८

सतवाँ अध्याय

१८४. **विभिन्नस्रावोंकीपरीक्षा** १२०
१८५. **मस्तिष्कसुषुम्ना द्रव** १२१
१८६. प्राप्त करने की विधि १२१
१८७. द्रव परीक्षा भौतिक परीक्षा १२१
१८८. रासायनिक १२१
१८९. ग्लूकोज १२४
१९०. लवणं १२४
१९१. यूरिया १२४
१९२. **सूक्ष्मदर्शकद्वारापरीक्षा** १२४
१९३. **वासरमैन परीक्षा** १२५
१९४. **अन्य द्रव** १२८
१९५. वेधन जलोदर के लिए १२८
१९६. जलोरस १२८
११७. जर्लाबुद या अन्य सीमित स्थान १३०
१९८. द्रव परीक्षा १३०
१९९. एण्डोथीलियल जीव कोष १३१
२२०. कोलेस्टरोल १३२
२०१. परिवर्तित १३२
२०२. यकृत बेधन १३३
२२३. प्लीहा बेधन १३३
२०४. वक्षास्थि बेधन १३४
२०५. फुप्फुस बेधन १३४
२०६. लसीकाग्रन्थि बेधन १३५

अठवाँ अध्याय

२०७. **जीवाणवात्मक परीक्षा** १३५
२०८. परीक्षा विधि १३६
१०९. मैथेलीन ब्ल्यू १३६
२१०. ग्राम जीन्सनकी रंजन पद्धति १३७
२११. डिफ्थेरिया जीवाणु के लिए नेसर की रंजन पद्धति १३७
२१२. क्षय जीवाणु के लिए जील नील्सन की रंजन पद्धति १३७

२१३. **ग्राम धनात्मक दण्डाकार** १३८
२१४. बैसीलस टिटेनी १३८
२१५. बैसीलस ट्यु वर्क्यूलोसिस ,,
२१६. ,, एन्थेसिसि ,,
२१७. स्ट्रप्टोथ्रिक्स एक्टीनोमाय-कोसिस ,,
२१८. **ग्राम धनात्मक विदंडाकार** १३६
२१६. स्ट्रेप्टोकोकाई ,,
२२०. न्यूमोकोकाई ,,
२२१. **ग्राम ऋणात्मक दण्डाकार** ,,
२२२. बैसीलस पेटिस्टन ,,
२२३. ,, पट्यूमिस ,,
२२४. बेसीलस टायफायड ,,
२२५. बेसीलस इन्फ्यूएंजा ,,
२२६. **ग्राम ऋणात्मक विन्द्वाकार** ,,
२२७. मेनिंगोकोक्कस ,,
२२८. गोनोकोक्कस १४०
२२६. स्पायरोकीट पैडिला ,,
२३०. जीवाणुओं की वृद्धि एवं प्राणियों में अन्तः क्षेप १४१
२३१. **रक्तरस परीक्षा** १४२
२३२. पुंज कारक ,,
२३३. स्वादुकारक १४२
२३४. अवक्षेपक ,,
२३५. द्रावक ,,
२३६. प्रतिविष ,,
२३७. वासरमैन परीक्षा १४३
२३८. फलसे रोग का अनुमान १४४
२३६. काह्न परीक्षा १४५
२४०. विह्वाल परीक्षा १४७
२४१. **कालाजार के लिए लसोका परीक्षा** ,,
२४२. **चोप्रा परीक्षा** ,,
२४३. चोप्रा का विलयन पद्धति ,,
२४४. नेपीयर की परीक्षा १४८
२४५. एल्डीहाइट्स परीक्षा १४८
२४६. विभिन्न स्रावोंकी जीवाणुवात्मक परीक्षा १४६
२४७. मूत्र ,,
२४८. मल १५०
२४६. कफ परीक्षा ,,
२५०. गले तथा नसोफरेक्स स्राव १५२
२५१. मस्तिस्क सुषुम्नाद्रव ,,
२५२. मूत्र १५३

नवाँ अध्याय

२५३. कुछ विशिष्ट परीक्षायें १५३
२५४. बी० एम० आर० परीक्षा ,,
२५५. ,, ,, का महत्व १५५
२५६. गर्भावस्था परीक्षा ,,
२५७. आश्चिम जाडेक परीक्षा १५५
२५८. फ्रीडमैन परीक्षा १५६
२५६. चर्मप्रति क्रिया परीक्षा ,,
२६०. सिक परीक्षा १५७

२६१. डिक परीक्षा १५८
२६२. वान परफेट परीक्षा १५८
२६३. मैंटोक्स परीक्षा १५८
२६४. बाह्य प्रोटीन के प्रति चर्म प्रतिक्रिया परीक्षा १५९
२६५. कुष्ट के लिए परीक्षा १६०
२६६. त्वचास्राव परीक्षा ,,
२६७. नासा स्राव परीक्षा ,,
२६८. वीर्यपरीक्षा १६१

मल, मूत्र, रक्तादि-परीक्षा

प्रथम अध्याय

विषय प्रवेश

चिकित्सा क्षेत्र[1] में प्रत्येक औषधि तथा परीक्षा विधि का एक निश्चित स्थान है और इसमें सन्देह नहीं कि मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा रोग निदान की दृष्टि से अपना एक निश्चित महत्व रखती है। किन्तु यह भी स्पष्ट रूप से ध्यान रखना चाहिए कि चिकित्सा में इन परीक्षाओं को जिन्हें प्रायोगिक पद्धतियां[1] कहते हैं आवश्यकता से अधिक महत्व देना ठीक नहीं। रोग के लक्षण को ध्यान पूर्वक सुनना, रोग के पूर्व इतिहास तथा लक्षणों पर पूरी तरह विचार करना तथा समुचित रूपसे रोगी के विभिन्न अंगों की परीक्षा करना रोग के निदान का मूल आधार है। प्रायोगिक पद्धतियां इसका स्थान नहीं ले सकतीं बल्कि इस आधार पर किए गए निदान की पुष्टि के लिए की जा सकती हैं। निदान के लिए प्रायोगिक पद्धतियों पर ही पूर्णतः निर्भर रहना एक बड़ी भूल है जिससे सदैव सावधान रहना चाहिए क्योंकि—

प्रायोगिक पद्धतियां सर्वावस्था में सदैव उपलब्ध नहीं हो सकतीं। भारतवर्ष जैसे निर्धन देश में जहां चिकित्सा के लिए अधिकांश व्यक्ति अधिक व्यय नहीं कर सकते हर समय इस प्रकार की परीक्षाओं के लिए अधिक जोर देना ठीक नहीं। यदि साधारणरूप से निदान करके रोगी की चिकित्सा की जा सकती है तथा उसको लाभ पहुँचता है तो कोई आवश्यकता नहीं कि रक्तादि परीक्षा पर अधिक जोर दिया जाय।

इस प्रकार की परीक्षाओं के करने में समय लगता है तथा कई अवस्थाएं ऐसी आती हैं जहां उनके लिए ठहरा नहीं जा सकता। उदाहरण के लिए

1. Laboratary methods

रोहिणी (डिप्थीरिया) का रोगी मिलते ही रोगी का जीवन बचाने की दृष्टि से उसको तत्क्षण प्रतिविष देना नितान्त आवश्यक है, गले के स्राव की परीक्षा कर डिप्थीरिया जीवाणु को देखकर निदान करने के लिए ठहरना घातक हो सकता है।

केवल प्रायोगिक पद्धतियों द्वारा निश्चित निदान कभी भी नहीं किया जा सकता। रोग के लक्षणों आदि की ओर अवश्य ही ध्यान देना पड़ेगा।

प्रायोगिक पद्धतियों के सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना है कि इस सम्बन्ध में ऋणात्मक या निगेटिव[1] फल का कोई अर्थ नहीं। कफ में क्षय जीवाणुओं का न पाया जाना या रक्त की वाशरमैन क्रिया व्यक्त न होने का अर्थ यह नहीं लगाया जा सकता कि रोगी क्षय या सिफलिस से पीड़ित नहीं। धनात्मक या पौजीटिव[2] फल अवश्य ही निश्चित निदान का द्योतक होता है।

उपरोक्त बातें ठीक होते हुए भी संदेह की अवस्था में सदैव ही प्रायोगिक पद्धतियों की शरण ली जानी चाहिए तथा जब केवल लक्षणों से निदान न हो सक रहा हो तबभी मल, मूत्र,रक्तादि परीक्षा द्वारा निदान की निश्चिती की जा सकती है। कई स्थलों पर मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा ही निदान का निश्चित साधन हुआ करती है। अतः मल, मूत्रादि परीक्षा चिकित्सा का महत्वपूर्ण आवश्यक अंग है।

परीक्ष्य पदार्थ संग्रह

मल, मूत्र रक्तादि की परीक्षा विधि की जानकारी के साथ ही साथ यह जानना भी आवश्यक है कि परीक्षा के लिए इन पदार्थों का संग्रह किस प्रकार किया जाय। क्योंकि पदार्थों को संग्रह करते समय किसी भी प्रकार की अशुद्धि हो जाती है तो उसके अनुसार ही परीक्षा फल भी शुद्ध आने की आशा नहीं की जा सकती। इसके साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि परीक्ष्य पदार्थ मल, मूत्र रक्तादि को उचित ढंग से शीघ्र से शीघ्र परीक्षक के पास पहुँचा दिया जाय, यह आवश्यक है। संग्रह विधि भिन्न भिन्न पदार्थों के लिए तथा भिन्न भिन्न प्रकार

1. Negative 2. Positive

की परीक्षा के लिए भिन्न-भिन्न हुआ करती है। इस अध्याय में उसी का समुचित रूप से दिग्दर्शन कराया जायगा।

सामान्य नियम—परीक्ष्य पदार्थ को लेकर उचित आकार के शुद्ध पात्र में बन्द करने के पश्चात् पात्र के ऊपर लेबिल लगा दिया जाना चाहिए जिस पर रोगी का नाम, पदार्थ संग्रह करने का समय एवं तिथि तथा जो भी परीक्षा कराई जानी है उसका स्पष्ट निर्देश होना चाहिए। रोग के लक्षणों एवं अनुमानित निदान की ओर भी अलग से एक पत्र में संकेत किया जा सकता है। केवल मात्र संग्रह करके परीक्ष्य पदार्थ को परीक्षक के पास भेज देने का कोई भी अर्थ नहीं। यदि पात्र इतना छोटा है या केवल स्लाइड है जिस पर पूरे विवरण युक्त लेबिल नहीं लगाये जा सकते तो उस पर नम्बर लिख दिया जाना और चिपका दिया जाना चाहिए। नम्बर के अनुसार ही अलग से पत्र में सब कुछ विवरण दे दिया जाना आवश्यक है।

बहुधा यह भी होता है कि चिकित्सक परीक्ष्य पदार्थ का स्वतः संग्रह न करके परीक्षक के ऊपर ही यह कार्य भी छोड़ देता है तथा रोगी को ही स्वतः परीक्षक के पास भेज देता है। इस स्थल पर परीक्षक से तात्पर्य उस व्यक्ति से है जिसको मल, मूत्र, रक्तादि की परीक्षा करनी है। इस प्रकार की स्थिति में रोगी को एक पत्र देकर परीक्षक के पास भेज दिया जाना चाहिए किन्तु पत्र में केवल 'रक्त परीक्षा', 'मल परीक्षा' या 'मूत्र परीक्षा' ये शब्द लिख देना ही पर्याप्त नहीं क्योंकि परीक्षक से यह आशा नहीं की जानी चाहिए कि निदान के लिए जिस परीक्षा की आवश्यकता है उसका भी वह निर्णय करे। यह कर्त्तव्य चिकित्सक का है कि निदान के लिए जिस 'विशिष्ट' परीक्षा की आवश्यकता है उसका भी पत्र में स्पष्ट निर्देश कर दें। पत्र में रोगी का नाम लिखने के बाद यह भी स्पष्ट लिख दिया जाना चाहिए कि किस चीज की तथा क्या परीक्षा करानी है। उदाहरण के लिए 'मूत्र परीक्षा' लिखने के साथ ही साथ यह भी लिखना आवश्यक है कि मूत्र की सम्पूर्ण परीक्षा, शर्करा के लिए अथवा एल्ब्यूमिन के लिए परीक्षा करानी है। मल परीक्षा एमीबा के लिए, रक्त परीक्षा-विषमज्वर-(मलेरिया) जीवाणु, कालाजार या वाशरमैन प्रतिक्रिया के लिए इत्यादि। परीक्षक परीक्षा फल चिकित्सक के पास भेज देता है। उसके आधार पर निश्चित निदान

करना भी चिकित्सक का ही कर्त्तव्य है। यहाँ एक बात स्पष्ट रूप से ध्यान में रखनी चाहिए कि निदान के लिए धनात्मक परीक्षाफल का एक स्पष्ट अर्थ है जब कि ऋणात्मक परीक्षाफल का कोई भी अर्थ नहीं। उदाहरण के लिए एमीबासिस्ट के लिए यदि मल परीक्षा धनात्मक है तो इसका स्पष्ट अर्थ यह हुआ कि अमीबिक आमातिसार का उपसर्ग है किन्तु यदि परीक्षा अमीवासिस्ट के लिए ऋणात्मक हो तो हम निश्चित रूप से यह नहीं कह सकते कि रोगी अमीबिक आमातिसार से पीड़ित नहीं? क्योंकि बहुत सम्भव है कि रोगी के अमीबिक आमातिसार से पीड़ित होते हुए भी उसके उस समय लिए गए मल में एमीवासिस्ट न हों। ऐसी स्थिति में यदि लक्षणों के आधार पर उसी रोग का सन्देह हो तो परीक्षा दूसरी बार या तीसरी बार भी दुहराई जा सकती है तथा साथही साथ परीक्षा करते समय तथा मल लेते समय विशेष रूप से सावधानी बरती जाती है। यदि तीसरी बार भी परीक्षा ऋणात्मक आती है तो बहुत कुछ सम्भव है कि रोगी उस रोग से पीड़ित न हो।

मूत्र-संग्रह

सामान्य सम्पूर्ण परीक्षा [1] के लिए प्रातः कालीन मूत्र लेकर एक काँच के पात्र में बन्द कर भली प्रकार डाट लगा-भेजने वाले डाक्टर का नाम, रोगी का नाम, संग्रह का समय तथा तिथि लिखकर परीक्षक के पास भेज दिया जाता है। यदि शर्करा के लिए मूत्र परीक्षा करानी है तो भोजन के तीन घंटे पश्चात् वाला मूत्र अधिक ठीक रहता है क्योंकि प्रातः कालीन मूत्र की अपेक्षा इसमें शर्करा तथा अन्य आवश्यक पदार्थों के अंश अधिक मात्रा में रहते हैं।

मात्रात्मक परीक्षा [2] के लिए पूरे २४ घंटे की पूरी मात्रा एकत्रित की जानी चाहिए तथा उसमें से लगभग ६ औंस परीक्षा के लिए प्रयोगशाला परीक्षक के पास भेजी जानी चाहिए। रोगी से मूत्र कराया जाता है तथा उसको फेंक दिया जाता है। इसके बाद जब भी रोगी को मूत्र त्याग की इच्छा होती है मूत्र किसी पात्र में करा कराकर एकत्रित

1. Routine Examination 2. Quantitative Test

किया जाता रहता है। प्रथम बार के मूत्र को जिसको कि फेंक दिया गया था ठीक २४ घंटे पश्चात् रोगी से चाहे उसको इच्छा न भी हो मूत्र कराया जाता है तथा उसको भी पहली मात्रा के साथ मिला दिया जाता है। इसके बाद सम्पूर्ण मूत्र को भली प्रकार हिलाकर उसमें से ६ औंस लेकर परीक्षक के पास भेज दिया जाता है।

यदि मूत्र २४ घंटे तक एकत्रित किया जाना हो अथवा प्रयोगशाला तक उसके पहुँचने में कुछ समय लग जाने की सम्भावना है तो यह भी आवश्यक है कि मूत्र में सड़ने की क्रिया[1] रोकी जाय। इसके लिए मूत्र में लगभग एक ग्राम सत् अजवायन [2] टोल्यूओल [3] ५-२० सी० सी० या शुद्ध लवणाम्ल[4] (३० औंस में लगभग २ ड्राम) मिलाया जा सकता है। इनमें से टोल्यूओल सर्वोत्तम है। मूत्र के तल पर उसकी एक तह फैल जाती है जिसके कारण मूत्र में सड़ने की क्रिया न होने के साथ ही साथ परीक्षा में भी कोई बाधा नहीं पड़ती। क्लोरोफार्म १०-२० बूंद अथवा फोर्मलीन ५–१० बूंद के मिला देने से भी मूत्र सुरक्षित रहता है, किन्तु इससे सर्वदा के लिए फैहलिंग सोल्यूशन के साथ परीक्षा करने में बाधा पड़ती है।

वर्द्धनात्मक परीक्षा [5] के लिए मूत्र संग्रह करते समय इस प्रकार की खास आवश्यकता है कि मूत्र शुद्धरहे तथा कोई दूसरे जीवाणु मूत्र लेते या भेजते समय उसमें न मिल जायं। स्त्रियों में इस प्रकार की परीक्षा के लिए कैथेटर द्वारा मूत्र लेकर भेजा जा सकता है। पुरुषों में इस प्रकार मूत्र नली (कैथेटर) के प्रयोग करने की तो कोई आवश्यकता नहीं किन्तु उनके शिश्नमुण्ड[6] को भली प्रकार साफ कर दिया जाना चाहिए। इसके बाद रोगी से मूत्र त्याग करने के लिए कहे तथा थोड़ा मूत्र अलग निकल जाने दे। रोगी को बाद के मूत्र को किसी शुद्ध पात्र या परख नली (टेस्ट ट्यूब)में ही सीधे कर देने दे। केवल १० सी० सी० के लगभग मूत्र पर्याप्त हैं; इससे अधिक लेकर पात्र को मुंह तक भर देना ठीक नहीं क्योंकि फिर अन्य जीवाणुओं

1. Decomposition 2. Thymol 3. Toluol 4. Concentrated Hydrochloric Acid 5. Cultured Examination 6 Glans

की वहाँ तक पहुँच जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। पात्र के मुंह को शुद्ध रुई तथा कार्क से बन्द कर पात्र प्रयोगशाला भेज दिया जाता है।

मूत्र के तलच्छट [1] में निर्भोकों [2] की कभी कभी सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करना आवश्यक होता है ताकि घातक अर्बुद [3] की उपस्थिति या अनुपस्थिति का निश्चित निर्णय किया जा सके। इसके लिए सबसे अच्छा उपाय तो यह है कि रोगी को ही परीक्षक के पास भेज दिया जाय ताकि उसका मूत्र वहीं लेकर तदनुकूल उसकी परीक्षा की जा सके।

यूरिया निस्सरण परीक्षा[4]—के लिए मूत्र भेजते समय कुछ विशेष बातें ध्यान में रखने की हैं। रोगी से मूत्र करने के लिए कहा जाता है तथा उस मूत्र को फेंक दिया जाता है। इसके पश्चात् एक घंटे तक रोगी को कुछ भी खाने पीने नहीं दिया जाता। एक घंटे बाद उससे मूत्र करा कर ले लिया जाता है। इसी समय उसकी शिरा में से थोड़ा रक्त लेकर ओक्सेलेटेड पात्र में रख लिया जाता है। एक घंटे पश्चात् फिर मूत्र कराया जाता है। तीनों पात्रों पर यथानुकूल लेबिल लगा दिए जाते हैं। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र की पूरी मात्रा परीक्षक के पास भेजनी है। यदि पूरी मात्रा न भेजनी हो तो केवल १० सी० सी० मूत्र ही भेजा जा सकता है किन्तु उस हालत में दोनों बार के मूत्र की पूरी पूरी मात्रा नाप ली जानी चाहिए तथा परीक्षक को स्पष्ट लिख दिया जाना चाहिए कि कुल दोनों बार के मूत्र की पूर्ण मात्रा इतनी इतनी थी जिसमें से केवल १०, १० सी० सी० भेजी जा रही है।

जीव विज्ञानात्मक परीक्षा[5] यथा आश्चिश्म जो डेक[6] या[7] फ्रीड परीक्षा के लिए केवल २५ सी. सी. मूत्र की आवश्यकता पड़ती है। इसके लिए प्रातः कालीन मूत्र लिया जाना चाहिए। मूत्र नली द्वारा मूत्र लेने की आवश्यकता नहीं। आवश्यक मात्रा एक साफ पात्र में रख ली जाती है। तथा उसको बरफ की पेटी या रेफ्रीजरेटर में सुरक्षित रखा जाता है।

कुछ अवस्थाओं में पृथक् पृथक् वृक्क द्वारा उत्सर्गित मूत्र की परीक्षा की जाती है

---

1. Sediment 2. Cast 3. Mailgnant disease 4. Urea clearance test 5. Biological Test 6. Ashchheim zondek 7. Friedman

ताकि यह अनुमान लगाया जासके कि किस ओर का वृक्क खराब है इसके लिए विशेष विधि से विशेष प्रकार के कैथेटर को मूत्राशय में प्रविष्ट कराया जाता है तथा उसको भिन्न भिन्न वृक्कों से मूत्र लाने वाली नली के छिद्रों में ही लगाकर उसकी सहायता से एक ओर के वृक्क का मूत्रही संगृहीत किया जाता है। दो कैथेटर लगाकर अलग अलग संगृहीतकिया जा सकेता है अथवा दो बार में अलग अलग वृक्कों का मूत्र लेकर उसकी परीक्षा की जा सकती है। इस प्रकार संग्रह किसी विशेषज्ञ द्वारा ही सम्भव है

मल संग्रह

मल परीक्षा की आवश्यकता कई, भिन्न-भिन्न उद्देश्यों से पड़ा करती है। जिस उद्देश्य से ही मल की परीक्षा की जाती है उसी के अनुसार मल एकत्रित करना चाहिए।

आन्त्रोपजीवी जीवाणु या ओवासिस्ट परीक्षा के लिए मल सदैव विरेचन देने के पश्चात् लेना चाहिए। विरेचक औषधि देने के बाद प्रथम बार का मल न लेकर दूसरी बार का मल एक साफ पात्र में मूत्र या पानी से बचाकर लिया जाता है तथा शीघ्र परीक्षा के लिए भेज दिया जाता है। यदि जीवित अमीबा देखने की इच्छा है तो ताजी ही मल की उसमें किसी प्रकार की औषधि मिलाए बिना परीक्षा की जानी चाहिए। तन्तु कृमि की परीक्षा के लिए गुदा के आस-पास के भाग को रुई के फाहे से पोंछ कर भेजना चाहिए क्योंकि मल में ओवा मिलना सम्भव नहीं।

यदि आमाशय वा पक्वाशय से आने वाले रक्त के लिए मल की परीक्षा करनी है तो यह नितान्त आवश्यक है कि रोगी को विरेचन देने के बाद तीन दिन केवल निरामिष (मांस आदि नहीं) भोजन दिया जाय तथा हरे साग तक न दिए जाँय। इसके बाद तीसरे या चौथे दिन के मल की परीक्षा की जाती है।

मल के अन्तर्गत वसा की मात्रा मालूम करने के लिए मल अधिक मात्रा में भेजना आवश्यक है। मल के अन्तर्गत पाए जाने वाले विशूचिका जीवाणु का वर्द्धन करने के लिए यह आवश्यक है कि मल पात्र तथा लेने की विधि के बारे में पूरी पूरी सफाई का ध्यान रखा जाय।

थूक संग्रह

थूक से तात्पर्य गाढ़े चिपचिपे पदार्थ से है जो खाँसने पर श्वसनस्थान के ऊपरी भाग से निकलता है; यह हो सकता है कि इसमें मुख के आन्तरिक भाग से पानी सदृश स्राव या लाला [1] भी मिल जाय, साधारणतया बिना खांसी के थूके जा सकने वाले पानी सदृश स्राव की परीक्षा व्यर्थ है। गाढ़े चिपचिपे पदार्थ की ही, क्षय, न्युमोनिया आदि के जीवाणु या फुफ्फुस के कैंसर के लिए परीक्षा की जा सकती है।

यह प्रातःकालीन खांसी के समय का ही लिया जाना चाहिए। अच्छा हो कि लेने से पहले भली प्रकार कुल्ला कर मुंह साफ कर लिया जाय तथा थूक एक पूर्ण जीवाणु रहित साफ चौड़े मुंह की शीशी में लगभग १० सी. सी. की मात्रा में लेकर सफाई के साथ परीक्षा के लिए भेज दिया जाय। वर्द्धन या प्राणियों में अन्तःक्षेप द्वारा भी इसी इतने थूक से परीक्षा की जा सकती है। थूक को सुरक्षित रखने के लिए उसमें किसी प्रकार की औषधि मिलाने की आवश्यकता नहीं क्योंकि ऐसा करने से परीक्षा में बाधा पड़ सकती है।

प्रलेप

प्रलेप [2] से तात्पर्य रुई के फाहे से पोंछकर किसी स्थान से परीक्षार्थ लिए जाने वाले स्राव से है। इस प्रकार का प्रलेप गला, मूत्रमार्ग तथा गर्भाशय-ग्रीवा से लिया जाता है।

गले का प्रलेप—यह प्रलेप बहुधा रोहिणी जीवाणु[3] अथवा मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर जीवाणु[4] की उपस्थिति का ज्ञान करने के लिए लिया जाता है, वर्द्धन के लिए भी इसकी आवश्यकता पड़ सकती है। अतः जीवाणु हीनता का पूरा ध्यान रखते हुए ही प्रलेप लिया जाना चाहिए। यह भी आवश्यक है कि निगाह से देखते रहते हुए ही इच्छित स्थान से प्रलेप लिया जाय तथा उसको मुख अथवा गले के अन्य अंगों से न छूने दिया जाय। प्रलेप लेकर उसको काँचपट पर

1. Saliva 2. Smear 3. Diphtheria 4. Meningococcous

हलका रगड़ कर तुरन्त परीक्षा की जा सकती है। काँच पट को ही सुखाकर प्रयोगशाला भेजा जा सकता है अथवा फाहे को ही एक साफ परखनली टेस्ट ट्यूब में रखकर भेज दिया जाना चाहिए। गले का प्रलेप लेने के लिए एक विशेषप्रकार की काच की नली भी आती है जिसका एक शिरा मूत्र नलिका [1] की तरह मुड़ा तथा छिद्र युक्त होता है। काच की नली के अन्दर एक कड़ा धातु का तार रहता है जिसके एक शिरे पर रुई का फाहा लगाया जा सकता है। इस प्रकार की नली को वेस्ट ट्यूब [2] नाम से सम्बोधित किया जाता है। नली को उबाल कर जीवाणु रहित शुद्ध कर लिया जाता है तथा रोगी का मुंह खुला रखकर, सुप्रकाश में उसको देखते रहते हुए नली मुंह में प्रविष्ट कर मुड़ी हुई ओर के छिद्र में होकर तार को थोड़ा बाहर निकाल कर उसमें लगी हुई रुई से गले के इच्छित स्थान को पोंछकर फिर तार को खींच कर नली के अन्दर ही कर लिया जाता है। इस प्रकार करने से रुई का फाहा मुख के अन्य किसी भाग से छू नहीं जा सकता। कभी कभी नासा से लिए जाने वाले प्रलेप की भी कुष्ठ रोग के जीवाणु की उपस्थिति के लिए परीक्षा की जाती है। यह प्रलेप प्लेटीनम तार के लूप (Loop) की सहायता से लिया जाता तथा उसको तुरत काँच पट पर लगाकर परीक्षा की जा सकती है।

मूत्र मार्गीय प्रलेप—जब मूत्र मार्ग से काफी स्राव निकल रहा हो तब स्राव की एक बूंद काच पट पर लेकर उसका प्रलेप सीधा काच पट पर ही तैयार किया जा सकता है। लिखने की आवश्यकता नहीं कि काच पट जीवाणु रहित पूर्ण शुद्ध होना चाहिए। अच्छा हो यदि प्रातःकालीन स्राव की ही एक बूंद ली जाय। रोग की चिरकालीन अवस्था में जब स्राव नहीं ही निकलता, पौरुष ग्रन्थि का मर्दन कर स्राव निकाल कर तब बूंद उपरोक्त विधि से ली जानी चाहिए।

गर्भाशय-ग्रीवा स्राव—स्त्रियों में इस स्राव की परीक्षा बहुधा पूयमेह (सुजाक) जीवाणु के लिए की जाती है। स्त्री को इस प्रकार लिटाया जाता है कि उसका योनि प्रदेश साफ दिखता रहे।

1, Catheter 2. West Tube 3 Loop

योनि मार्ग को प्रसारक [1] की सहायता से प्रसारित रखा जाता है तथा ग्रीवा को बाहर की ओर निकाल कर किसी मजबूत तार या सींक में लपेटे रुई के फाए को ग्रीवा में अन्दर प्रविष्ट कर थोड़ा घुमाकर बाहर निकाल लिया जाता है।

यह ऊपर ही संकेत किया जा चुका है कि परीक्षा के लिए जीवाणु रहित साफ परखनली टेस्ट ट्यूब में रखकर रुई का फाहा अथवा काँच पट पर प्रलेप ही तैयार करके भेजा जा सकता है। काच पट पर प्रलेप तैयार करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि फाहे को काच पट पर उचित स्थान में एक बार फिरा दिया जाय, अधिक बार रगड़ने की आवश्यकता नहीं, अच्छा हो कि दो काच पट तैयार करके भेजे जायं। प्रलेप सूख जाने पर दोनों काच पटों के मध्य में दियासलाई की सींक के दो टुकड़े रखकर, जिस ओर प्रलेप तैयार किया गया है, वह भाग आमने-सामने रखकर कागज में भली प्रकार लपेट कर भेज दिया जाता है।

छेदन द्वारा प्राप्त स्राव

छेदन द्वारा प्राप्त स्राव [2] से तात्पर्य है, जो छेदन द्वारा प्राप्त किए जाते हैं, यथा मस्तिष्क शुषुम्नाद्रव, जलोदर द्रव, जलोरस द्रव आदि। साधारणतया इन द्रवों में प्रोटीन की मात्रा कम ही रहती है किन्तु शोथ की भी उपस्थिति होने पर फायब्रोनोजिन के रूप में प्रोटीन की मात्रा बढ़ जाती है। अतः द्रव लिए जाने के बाद शीघ्र ही जम जाता है। ये द्रव उत्तम वर्द्धन द्रव हैं अतः किसी प्रकार यदि बाहर से जीवाणु इन तक पहुँच जाते हैं तो शीघ्र ही उनकी वृद्धि होने लगती है। ये द्रव यदि बहुत समय तक रखे रहते हैं तो उनमें विघटन की क्रिया भी प्रारम्भ हो सकती है। अतः द्रव निकालने के बाद शीघ्र से शीघ्र परीक्षा कर ली जानी चाहिए। यह भी ध्यान रखना है कि द्रव में किसी प्रकार रक्त न मिल जाय क्योंकि रक्त मिल जाने से परीक्षा में बहुत कुछ बाधा पड़ जा सकती है।

इन उपरोक्त बातों को देखते हुए यह आवश्यक है कि—

१. द्रव दो परखनलियों में लेकर भेजे जायं। एक परख नली साधारणतया तथा दूसरी पोटेशियम ओक्सेलेट द्वारा संस्कारित हो।

1. Retractor 2. Puncture Fluids

२. एक परखनली में केवल १०-१५ सी. सी. द्रव ही रखकर भेजा जाय, शेष द्रव दूसरे वर्तनों में एकत्रित किया जा सकता है। परखनलियाँ उबाल कर जीवाणु रहित शुद्ध कर ली जानी चाहिए तथा उनके मुंह में लगाया जाने वाला रुई का फाहा भी जीवाणु रहित शुद्ध हो।

३. निकालने के पश्चात् जितनी ही शीघ्र परीक्षा की जा सके उतना ही अच्छा है

४. यदि द्रव का प्राणियों में अन्तःक्षेप करना हो तो १५ सी. सी द्रव में सोडा सायट्रास घोल का २ सी. सी. मिला कर प्रयोगशाला भेजना चाहिए। सोडा सायट्रास घोल भी जीवाणु रहित शुद्ध हो यह आवश्यक है।

रक्त

रक्त की कई भिन्न भिन्न प्रकार की परीक्षाएं की जाती हैं तथा जिस प्रकार की भी परीक्षा की जाती है उसके लिए अनुकूल विधि द्वारा ही रक्त लेकर भेजा जाना चाहिए।

भिन्न भिन्न प्रकार के रक्त कणों की गणना, जीवाणुओं की उपस्थिति तथा रक्त कणों का आकार आदि देखने के लिए रक्त प्रलेप की परीक्षा करना आवश्यक होता है। रक्त प्रलेप ताजे रक्त से ही तैयार किया जाना चाहिए और इसके लिए उंगली के अन्तिम पोरवे में सुई से छिद्र करके रक्त लिया जा सकता है। उंगली दबा दबा कर रक्त नहीं निकालना चाहिए बल्कि स्वतः ही जो रक्त निकल आवे उसी को ले लिया जाना चाहिए। सुई चुभाने से पहले उंगली को स्पिरिट से साफ कर लेना भी आवश्यक है। प्रलेप तैयार करने के पश्चात् उसको केवल सुखाकर परीक्षक के पास भेज दिया जाना चाहिए। मलेरिया जीवाणु की परीक्षा के लिए ज्वरावस्था में बिना कोई मलेरिया नाशक औषधि दिए ही रक्त ले तथा श्लीपद (फाइलेरिया) की परीक्षा के लिए आधी रात के लगभग रक्त लेकर स्थूल प्रलेप तैयार करे। कालाज़ार की परीक्षा के लिए उंगली से रक्त लेकर भी परीक्षा की जा सकती है किन्तु यदि प्लीहा[1] अथवा वक्षास्थि[2] छेदन करके रक्त लेकर प्रलेप तैयार किया जाय और उसकी परीक्षा की जाय तो और भी अच्छा है। ध्यान रखना चाहिए कि शिरा में से लिए जाने

1. Spleen 2. Sternal Puncture

वाले रक्त से भी प्रलेप तैयार किया जा सकता है किन्तु वह भी ताजा ही होना चाहिए। जमा हुआ रक्त अथवा सायट्रास या ओक्सेलेट मिश्रित रक्त इसके लिए उपयुक्त नहीं।

कणगणना के लिए रक्त उंगली से भी लिया जा सकता है और शिरा से भी। यदि परीक्षा के लिए भेजना आवश्यक है तो शिरा से लेकर ही भेजना चाहिए। इसके लिए ओक्सलेट संस्कारित[1] ट्यून या पेनिसिलिन की खाली शीशी अधिक उपयुक्त है। ओक्सलेट संस्कारित ट्यूब किसी भी प्रयोगशाला से प्राप्त किया जा सकता है अथवा निम्न विधि से तैयार कर लिया जाना चाहिए।

पोटैशियम ओक्सेलेट	... ०·४ ग्राम
एमोनियम ओक्सलेट	... ०·६ ग्राम
शुद्ध परिश्रुत जल	... १०० सी. सी.

प्रत्येक ट्यूब में उपरोक्त घोल का ½ सी. सी. डालकर गर्म हवा में सुखा दिया जाता है। सुखाने के बाद २ सी. सी. रक्त को न जमने देने के लिए पर्याप्त औषधि एक ट्यूब में होती है।

ध्यान रखना चाहिए कि ट्यूब में यदि २ सी. सी. से अधिक रक्त डाला जाता है तो वह जम जायगा। रक्त डालने के पश्चात् ट्यूब को थोड़ा हिला देना चाहिए ताकि रक्त औषधि के साथ में भली प्रकार मिल जाय अन्यथा जम सकता है। अधिक नहीं हिलाना चाहिए क्योंकि ऐसा करने से रक्तकण टूट-फूट जा सकते हैं। यह भी ध्यान रखना है कि इस प्रकार भेजे गए रक्त से प्रलेप नहीं तैयार किया जा सकता। केवल मात्र पोटैशियम ओक्सलेट का ही प्रयोग करने से रक्त कणों का आकार घट जाता है। अतः एमोनियम ओक्सलेट भी साथ में प्रयोग करना चाहिए। रक्त लेने के लिए सिरिंज १२०° सेंटीग्रेड तक गर्म लीक्विड पैराफिन से धोकर साफ की जा सकती है अथवा लवण जल या पानी में उबालकर भी शुद्ध की जा सकती है। यदि केवल पानी में उबाल कर शुद्ध की जानी है तो उसको शुद्ध लवण जल से और धो लेना चाहिए अथवा पूरी तरह सुखा लेना चाहिए क्योंकि यदि पानी के कुछ भी अंश शेष रह जाते हैं तो रक्त कणों के टूट-फूट जाने का सन्देह है। रक्त लेने से पहले सिरिंज को ठण्डा कर

1, Oxalated

लिया जाना चाहिए तथा सूची को अलग करने के बाद ही रक्त ट्यूब में डालना चाहिए। रक्त डालने के बाद ट्यूब को दोनों हथेलियों के बीच में करके धीरे धीरे घुमा फिरा देते हैं। इस प्रकार भेजे गए रक्त की ही 'अवक्षेपनगति की परीक्षा'[1] अथवा रक्त आदान-प्रदानके लिए भी परीक्षा की जा सकती है।

कान्ह, वासरमैन, विडाल आदि परीक्षाओं के लिए केवल रक्त-रस की ही आवश्यकता पड़ती है। अतः इसके लिए रक्त पूर्णतः कणगणना के लिए वर्णित विधि से ही लिया जाना चाहिए। केवल इतना ध्यान रखना है कि ओक्सेलेट संस्कारित ट्यूब या शीशी न ली जाय। शीशी भी उबाल कर शुद्धकर ली गई हो तथा पूरी तरह सूखी हो। यह भी हो सकता है कि रक्त के जम जाने पर उससे अलग करके केवल रक्त रस ही भेज दिया जाय।

द्वितीय अध्याय

मूत्र-परीक्षा

जब रक्त बृक्कों (गुर्दों)[2] में होकर निकल रहा हो तब रक्त के बहुत से अनावश्यक पदार्थ जल में घुले हुए ही बृक्कों द्वारा निस्सरित[3] कर दिये जाते हैं। यह निस्सरण किस प्रकार होता है इन सबके वर्णन की इस स्थल पर आवश्यकता नहीं। यहाँ इतना ही ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र रक्त के कई अनावश्यक पदार्थों का जलमें घुला हुआ रूप है जिसका निर्माण गुर्दों द्वारा होता है। गुर्दों में निर्मित हो होकर गवीनीमार्ग[4] से धीरे-धीरे आकर मूत्र मूत्राशय में एकत्रित होता रहता है जहाँ से कि वह समय पर बाहर निकाल दिया जाता है।

शरीर की कुछ प्राकृत अवस्थाओं तथा रोग की अवस्थाओं में भी ये अनाव-

1.Sedimentation Rate 2.Kidney 3. Filter 4, Ureter

श्यक पदार्थ बढ़ जाते हैं, कभी कभी गुर्दों की विकृति के कारण इन अनावश्यक पदार्थों का पूरी तरह निस्सरण नहीं हो पाता अथवा गुर्दों की या मूत्र मार्ग की विकृति के कारण ही मूत्र में कई अप्राकृतिक पदार्थ निर्मोक जीवाणु आदि भी मिल जाते हैं। कभी कभी यह भी होता है कि रोग के कारण शर्करा आदि मूत्र के द्वारा उत्सर्गित होने लगती है जैसा कि नहीं होना चाहिए। मूत्र परीक्षा द्वारा इन सारी बातों का निर्णय कर लिया जाता है तथा उसी के अनुसार यह निष्कर्ष निकाला जाता है कि अमुक प्रकार की खराबी हो सकती है। संक्षेप में इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि मूत्र परीक्षा द्वारा कुछ सार्वदैहिक रोग लगभग सभी वृक्क रोग तथा मूत्र मार्ग के रोगों के निदान करने में बहुत कुछ सहायता मिलती है।

मूत्र परीक्षा का एक विशेष क्रम रहना चाहिए जिसके अनुसार ही मूत्र परीक्षा करना ठीक है। यह क्रम निम्न प्रकार है—

१. भौतिक परीक्षा—मात्रा, वर्ण, आपेक्षिक घनत्व तथा तलछट आदि सम्बन्धी परीक्षा।

२. रसायनिक परीक्षा—[1] एल्ब्यूमिन, शर्करा आदि के लिए परीक्षा।

३. सूक्ष्म दर्शकात्मक [2] परीक्षा।

४. जीवाणुत्मक [3] परीक्षा।

५. कुछ विशेष जीव विज्ञानात्मक [4] परीक्षाएं।

६. वृक्क कार्य क्षमता [5] परीक्षा।

इन्हीं सम्पूर्ण परीक्षाओं का स्पष्ट वर्णन आगे किया जायगा तथा यह भी संकेत किया जायगा कि वह किस किस रोग की परिचायक हो सकती है। मूत्र का संग्रह किस प्रकार किया जाय यह वर्णन प्रथम अध्याय में किया गया है।

भौतिक परीक्षा

(१) ***मात्रा***—स्वस्थावस्था में एक पूर्ण युवा व्यक्ति २४ घंटे में लगभग ५० औंस (१½ सेर) मूत्र करता है। स्त्रियाँ कुछ कम करती हैं। वर्षा एवं शीत ऋतु में यह मात्रा बढ़ जाती तथा गर्मी में कुछ कम हो जाती है। २४

1. Physical examination 2. Chemical 3. Microscopic 4. Bacteriolgical 5. Biological 6. Kidney Efficiency Test

घंटे की मात्रा नापने के लिए यह ध्यान रखना चाहिए कि रोगी को एक खास समय पर पेशाब करने के लिए कहे तथा उसको फेंक दे। इसके पश्चात् जब भी रोगी पेशाब करे उसको एकत्रित करता रहे। जिस समय की पेशाब लेकर फेंक दी गई थी उसी समय पेशाब लेकर उसको भी पूर्ण मात्रा में सम्मिलित कर ले। उदाहरण के लिए रोगी से प्रातः १० बजे पेशाब कराई जाती है जिसे फेंक दिया जाता है। इसके पश्चात् प्रतिबार पेशाब ले-लेकर एकत्रित कर लिया जाता है।

दो रूप में मिला करती हैं यथा प्रथम तो मूत्र का गुर्दों द्वारा निर्माण न होना ही जैसा कि विशूचिका (हैजे) में हो सकता है। दूसरे मूत्र मार्ग में रुकावट हो जाने के कारण मूत्राशय से मूत्र का न निकल सकना। प्रथम अवस्था अधिक भयंकर है क्योंकि उसमें भयानक पदार्थ रक्त में ही रुक जाते हैं। दूसरी अवस्था अधिक भयंकर नहीं—इसमें मूत्र नलिका के द्वारा मूत्र कराया जा सकता है।

(२) वर्ण—वर्ण से तात्पर्य मूत्र के रंग से है। यूरोक्रोम एवं यूरोबिलिन के कारण यह वर्ण कुछ रक्त मिश्रित हलका पीला होता है लगभग वैसा ही जैसा कि यदि भूसे को धोया जाय तो उसमें से निकले हुए पानी का होना चाहिए। मूत्र के भिन्न भिन्न वर्ण तथा उसके उत्पन्न करने वाले कारणों का निम्न तालिका के रूप में वर्णन किया जा सकता है—

वर्ण	कारण	किस अवस्था में उत्पन्न होता है
१—पानी सदृश	अधिक मूत्र का आना अथवा	बहु मूत्र अथवा अधिक पानी पीने पर
वर्ण रहित	यूरोक्रोम आदि की कमी	अधिक मूत्र आना
२—गहरे पीले से बादामी	रंग द्रव्य यूरोक्रोम आदि को अधिकता, मूत्र की मात्रा कम	ज्वर की अवस्था
३—नारंगी वर्ण	कुछ औषधियों का मूत्र में उत्सर्ग	सेटोनिन, रुबर्ब, क्राइ-सोफेनिक एसिड आदि,

४–दूधिया	१–मूत्र में बसा कण या २–पूय का उत्सर्ग	१–बसामेह, कारबोलिक एसिड का प्रभाव अस्थि मज्जा विकृत २–मूत्र मार्ग में शोथ आदि के कारण पीव निकलना
५–लाल वर्ण या लालिमा युक्त	१–रक्तकी उपस्थिति २–हिमेटोपोरफायरीन ३–भोजन या औषधिजन्य	१–रक्तमेह या रक्तस्राव २–सल्फपरीडीन ३–कुछ मूत्र मार्ग शोधक औषधियाँ
६–बादामी से काला बादामी	१–हीमेटिन २–मीथहीमोग्लोबिन ३–मैलेनिन ४–हायड्रोकिनोल आदि	१–रक्तस्राव २–मीथ हीनोग्लोबिन मेह ३–घातक अर्बुद(सारकोमा) ४–कारबोलिक एसिड का विष प्रभाव
७–हरिताभ पीले से लगभग काला	पित्त रङ्ग द्रव्य	कामला
८–हरा अथवा नीला	तल पर नीला पर्त तथा पीला तलछट	हैजा या टायफस में कभी कभी मैथेलिन ब्ल्यू के सेवन से

साधारणतया मूत्र साफ पारदर्शक होता है किन्तु कभी-कभी मूत्र में मिली हुई अशुद्धियों के कारण वह अर्द्धपारदर्शक एवं गन्दा भी हो सकता है। यदि फिल्टर पेपर द्वारा छानने के बाद भी गन्दा रहता है तो समझना चाहिए कि सम्भवतः जीवाणु शामिल हैं। यदि ठंडा होने पर गन्दा हो जाता है तो यूरेट की उपस्थिति के कारण ऐसा हो सकता है। यदि गन्दगी यूरेट के कारण है तो थोड़ा गर्म करने से वह ठीक हो जाती है।

गन्ध—सामान्यतः मूत्र में कोई विशेष गन्ध नहीं होती किन्तु यदि अधिक समय तक मूत्र रखा रहता है तो सड़ने की क्रिया के कारण उसमें एमोनिया की गन्ध आने लगती है। मीठी-मीठी सी फलों की जैसी गन्ध का विशेष महत्व है

क्योंकि यह एसीटोन की उपस्थिति का परिचायक है जिसका अर्थ है कि रोगी मधु-मेह से पीड़ित है अथवा दीर्घकालीन उपवास के कारण भी इस प्रकार की गन्ध हो सकती है।

(३) आपेक्षिक घनत्व—ध्यान रखना चाहिए कि आपेक्षिक घनत्व का अर्थ है कि मूत्र जल की अपेक्षा कितना भारी है। जल का घनत्व १००० लेते हुए मूत्र का स्वस्थावस्था में आपेक्षिक घनत्व १०१५—१०२५ होता है।

आपेक्षिक घनत्व नापने के लिए 'मूत्र-मापक'[1] का प्रयोग किया जाता है। मूत्र-मापक, दुग्ध मापक की तरह का होता है तथा कई प्रकार का आता है। इनमें से एक, चित्र १ में दिखाया गया है। यह मूत्र-मापक धातु का बना हुआ है जिसके नीचे के भाग में पत्ती लगी हुई है जो स्टेण्ड का काम देती है तथा मूत्र में डालते समय मूत्र-मापक को स्थिर रखती है। ऊपर के भाग में जो अंक लिखे हुए हैं वहां के स्थान पर १००० तथा १० के स्थान पर १०-१० और इसी प्रकार आगे भी समझना चाहिए। कांचनिर्मित मूत्र-मापक में स्टेण्ड आदि नहीं लगा होता।

आपेक्षिक घनत्व नापने के लिए मूत्र एक लम्बे कांच पात्र में ले लें तथा मध्य में मूत्र-मापक सावधानी के साथ छोड़ दें। ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र-मापक कांच के किनारों को न छूता रहे बल्कि मध्य में रहे। जिस अंक तक मूत्र-मापक मूत्र में डूब जाता है उसको देख लें। यही मूत्र का आपेक्षिक घनत्व है। देखते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र के तल के बराबर में ही अंक देखा जाय—मूत्र मापक को डण्डी के साथ जलीयांश एक दो अंश ऊपर तक खिंच जाता है वहां तक देखना शुद्ध नहीं।

यदि मूत्र इतनी मात्रा में उपलब्ध नहीं कि उसमें मूत्र मापक को डुबाया जाकर आपेक्षिक घनत्व लिया जा सके तो मूत्र में उसके बराबर, दुगुना या तिगुना जल मिला दिया जाना चाहिए और मिश्रण का आपेक्षिक घनत्व लिया जाना चाहिए। पश्चात् जितना भी आपेक्षिक घनत्व आवे उसके अन्तिम दो अंकों को जितना गुना मिश्रण तैयार किया गया है उतने से ही गुणित कर देना

1. Urinometer

चाहिए। गुणनफल के जो अंक आवेंगे वही आपेक्षिक घनत्व के अन्तिम अंक होंगे। उदाहरण के लिए यदि एक औंस मूत्र में तीन औंस जल मिलाकर आपेक्षिक घनत्व लिया जाता है तथा मिश्रण का १००६ आपेक्षिक घनत्व आता है तो ०६ को ४ से गुणा करने पर २४ मिलते हैं। इसका अर्थ है मूत्र का आपेक्षिक घनत्व १०२४ हुआ।

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र मापक में जो अंक दिये होते हैं वह १५°C पर मूत्र के लिए होते हैं। मूत्र का आपेक्षिक घनत्व ठंडा होने पर कुछ बढ़ जाता है। मूत्रोत्सर्ग के पश्चात् ही जब आपेक्षिक घनत्व नापा जाता है तो वह १०२० होगा और मूत्र के वायुमण्डल के तापमान तक आ जानेपर वही १०२५ हो सकता है। उत्सर्ग के कुछ समय बाद ही आपेक्षिक घनत्व नापा जाना चाहिए।

ऊपर ही संकेत किया जा चुका है कि स्वस्थावस्था में आपेक्षित घनत्व १०१५ से १०२५ तक होता है। कभी-कभी मूत्र के अधिक घन होने पर यह १०३५ तक भी पहुँच सकता है। इतना भी विकृति का परिचायक नहीं माना जा सकता। ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र का आपेक्षिक घनत्व उसमें घुले हुए यूरेट्स आदि लवणों के कारण ही होता है। अतः मूत्र में लवण अधिक मात्रा में होंगे तो आपेक्षिक घनत्व भी अधिक होगा। यदि शर्करा की उपस्थिति का संदेह नहीं तो मूत्र के आपेक्षिक घनत्व से ही मूत्र में के यूरेट्स, क्लोरायड आदि लवणों की मात्रा का अनुमान लगाया जा सकता है। सामान्य नियम यह है कि अन्तिम दो अंकों का दूना प्रति हजार लवण माने जाने चाहिए। उदाहरण के लिए यदि आपेक्षिक घनत्व १०२० है तो लवणों की मात्रा २० × २ = ४० प्रति हजार या ४ प्रतिशत समझना चाहिए।

आपेक्षिक घनत्व का बढ़ना—यह इस बात का परिचायक है कि मूत्र में घुलनशील पदार्थों की अधिकता है और यह बहुधा मधुमेह[1] की अवस्था में होता है, जब कि मूत्र में शर्करा उत्सर्ग होने लगता है तथा मूत्र की मात्रा भी बढ़ जाती है। इस अवस्था में आपेक्षिक घनत्व १०७५ तक हो जा सकता है किन्तु बहुधा १०४०-४५ तक ही रहता है।

1. Diabeties mellitus.

वृक्कशोथ की अवस्था में एल्ब्यूमिन के कारण भी कुछ आपेक्षिक घनत्व बढ़ जाता है। प्रायः एक प्रतिशत एल्ब्यूमिन के लिए आपेक्षिक घनत्व ३ बढ़ता है।

आपेक्षिक घनत्व का घटना इस बात का द्योतक है कि मूत्र में घुलनशील पदार्थों की कमी है और ऐसा उस अवस्था में होता है जब मूत्र की मात्रा बढ़ जाती है जैसा कि बहुमूत्र[1] की अवस्था में होता है। योषापस्मार (हिस्टीरिया) की हालत में भी मानसिक क्षोभ के कारण मूत्र की मात्रा बढ़ जाने से आपेक्षिक घनत्व कम हो जा सकता है।

आपेक्षिक घनत्व के आधार पर गुर्दों की कार्यक्षमता का भी बहुत कुछ अनुमान लगाया जा सकता है क्योंकि यह संकेत किया ही जा चुका है कि वृक्कों द्वारा यूरेट्स आदि के निस्सरण के कारण ही स्वस्थावस्था में मूत्र का आपेक्षिक घनत्व एक निश्चित सीमा (१०१५-१०२५) में बना रहता है। यदि गुर्दे यूरेट्स आदि लवणों को निकालने में असमर्थ होते जाते हैं तो आपेक्षिक घनत्व लगभग १०१० (उत्सर्ग के समय ही मूत्र उष्ण होने के कारण केवल १००६) तक पहुँचने का प्रयत्न करता है। वृक्कों के इस दृष्टि से बहुत कुछ असमर्थ हो जाने पर यह आपेक्षिक घनत्व १०१० पर ही स्थिर हो जाता है। इस दृष्टि से सदैव प्रातःकालीन मूत्र का आपेक्षिक घनत्व ही नापना चाहिए क्योंकि वह सबसे अधिक घन होता है।

(४) तलछट परीक्षा—तलच्छट[2] से तात्पर्य मूत्र के उस भाग से है जो मूत्र के कुछ समय तक स्थिर रहने से तल में बैठ जाता है। इसकी परीक्षा सूक्ष्मदर्शक की सहायता या केवल नेत्रों से ही की जा सकती है। यहाँ केवल नेत्रों से परीक्षा करने की ओर संकेत है। सामान्यतः स्वस्थावस्था में मूत्र पूर्णतः स्वच्छ होता है तथा किसी प्रकार का तलछट भी नहीं मिलता। फिर भी स्वस्थ मूत्र में भी निम्न तलछट मिल सकते हैं अथवा इसको इस प्रकार भी कहा जा सकता है कि निम्न रूप के तलछट का मिलना किसी विशेष विकृति का परिचायक नहीं—

---

1. Diabeties incipidus 2. Deposit or Sediment

१. **म्यूकस**[1]—मूत्र के कुछ समय तक स्थिर रहने पर म्यूकस की तल में एक तह सी जम जाती है जो देखने में ऊन सदृश[2] होती है। यदि मूत्र का आपेक्षिक घनत्व अधिक होता है तो यह मध्य में या कभी कभी ऊपर तैरती हुई मालूम पड़ सकती है। रक्त की उपस्थिति में इस का वर्ण भी कुछ बादामी हो जाता है।

२. **फोस्फेट**—एमोनियम, मेग्नेशियम तथा केल्सियम के फोस्फेट जिन्हें ट्रिपुल फोस्फेट भी कहा जा सकता है, कभी-कभी मूत्र में जाने लगते हैं तथा मूत्र के तल में खटिका सदृश श्वेत तलछट के रूप में बैठ जाते हैं। इनसे पूय (पीव) का सन्देह हो सकता है किन्तु एसीटिक एसिड की थोड़े बिन्दु डालकर मूत्र को गर्म करने से सन्देह मिटाया जा सकता है जब कि फोस्फेट पूरी तरह घुल जाने चाहिए। यहाँ इस बात की ओर भी थोड़ा संकेत करना युक्तिसंगत ही होगा कि कुछ व्यक्तियों में जो मूत्रोत्सर्ग के पहले या बाद में 'धातु' जाने की शिकायत करते हैं, फोस्फेट ही जाया करते हैं, वीर्य आदि नहीं। इस प्रकार की अवस्था मूत्र को थोड़ा अम्ल बनाने से ही आसानी से ठीक की जा सकती है। नरसार (नौसादर) या एसिड, सोडा फोस्फेट के प्रयोग से यह शिकायत आसानी से ठीक हो जाती है।

३. **यूरेट्स—ये** स्वस्थ मूत्र में भी यदि मूत्र अधिक घन हो तो पाये जा सकते हैं। इनका तलछट ईंट सदृश रक्त[3] वर्ण का होता है तथा मूत्र को थोड़ा-सा गर्म करने से ही साफ़ हो जाता है। किन्तु गर्म करते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र धीरे-धीरे गर्म किया जाय। एकदम गर्म करने से यदि मूत्र में एल्ब्यूमिन है तो वह यूरेट्स के घुल पाने से पहले ही अवक्षेप[4] के रूप में स्पष्ट हो जायगी। धीरे-धीरे गर्म करने से प्रथम यूरेट्स घुल जायंगे, तब अवक्षेप बन जायेगा। यूरेट्स की तलछट एसीटिक ऐसिड से नहीं घुलता बल्कि शोरे का तेज़ाब आदि डालने से घुल जाता है। यूरेट्स के तलछट के वर्ण के सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यह वर्ण मूत्र में के वर्ण द्रव के कारण होता है। अतः मूत्र में यदि वर्णद्रव की कमी है तो तलच्छट की वर्ण भी हलका पीला या लगभग श्वेत हो सकता है।

---

1. Mucus 2 Wooly 3. Brick Red. 4. Precipitate.

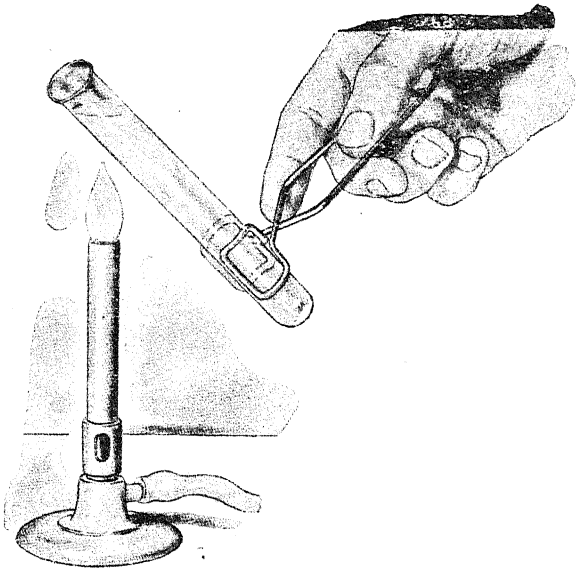

चित्र नं० २— एल्ब्यूमिन परीक्षा के लिए मूत्र गर्म करना
(वर्णन पृ० २२ पर)

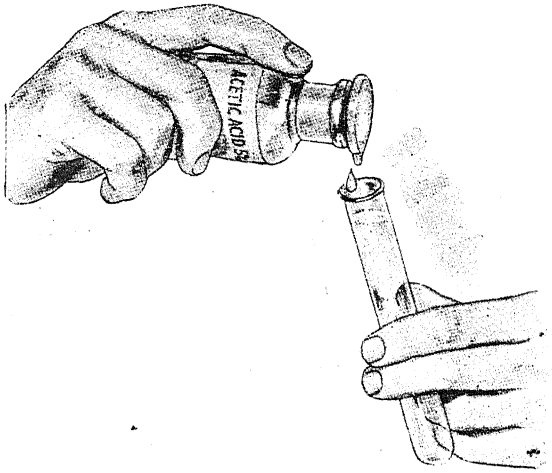

चित्र नं ३—यदि अवक्षेप बन जाता है तो ५% एसीटिक एसिड की बूँद डालना चाहिए (वर्णन पृ० २२ पर)

मूत्र में निम्न प्रकार के तलछट का होना विकृति का द्योतक है—

सल्फा औषधियाँ—यदि मूत्र अधिक मात्रा में उत्सर्गित होती हैं तो श्वेत रवेदार तलछट के रूप में व्यक्त हो सकती हैं। ऐसी स्थिति में सल्फा औषधियाँ बन्द करनी चाहिए तथा क्षारीय मिश्रण दिया जाना चाहिए।

पूय कण—फोस्फेट के सदृश तलछट उत्पन्न करते हैं जिसमें जीवाणु भी सम्मिलित हो सकते हैं। इस प्रकार का तलच्छट गर्म करने तथा एसीटिक एसिड मिलाने से घुलता नहीं। सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करके पूर्ण निर्णय किया जाना चाहिए।

रासायनिक-परीक्षा

(१) **प्रतिक्रिया**—मूत्र की प्रतिक्रिया[1] क्षारीय[2] है अथवा अम्लीय[3] इस बात का भी निश्चय प्रारम्भ में ही कर लिया जाना जाना चाहिए। इसके लिए लिटमस पेपर द्वारा ही परीक्षा की जाती है। प्रकृतितः यह प्रतिक्रिया अम्लीय होती है जिसमें नीला लिटमस लाल हो जाता है। भोजन के पश्चात् ही प्रतिक्रिया क्षारीय हो सकती है जो भोजन के तीन घंटे पश्चात् अधिकतम होती है। यदि मूत्र कुछ समय तक रखा रहता है तो एमोनिया गैस के उत्पन्न होने के कारण भी प्रतिक्रिया क्षारीय हो सकती है जिसका अनुमान मूत्र की गन्ध से लगाया जा सकता है। इस अवस्था में लाल रंग का लिटमस नीला हो जाता है किन्तु उसको यदि गर्म किया जाय तो एमोनिया गैस के उड़ जाने से पुनः लाल हो जाता है।

(२) **एल्ब्यूमिन के लिए परीक्षा**—मूत्र की यह एक महत्वपूर्ण परीक्षा है जिसकी बहुधा आवश्यकता पड़ जाती है। इसकी निम्न विधियाँ हैं :—

(क) *ताप परीक्षा*—यह सबसे सरल तथा विश्वसनीय है। इसका सिद्धांत यह है कि गर्म करने से एल्ब्यूमिन श्वेत वर्ण अवक्षेप के रूप में आ जाती है जो एसीटिक एसिड डालने से घुलती नहीं। मूत्र यदि स्वच्छ न हो तो छान लिया जाना चाहिए। एक परखनली में लगभग $\frac{3}{4}$ लम्बाई तक मूत्र भर लिया जाता

1. Reaction 2. Alkaline 3. Acidic

है। परखनली को नीचे के भाग में परखनली ग्राहक[1] से या मोटे कागज की पत्ती से पकड़कर ऊपर के भाग में गर्म किया जाता है जैसा कि चित्र २ में दिखाया गया है। यदि एल्ब्यूमिन उपस्थित है तो इस स्थल पर स्वेत वर्ण धुंधलापन या अवक्षेप बन जायगा। अब १० प्रतिशत् एसीटिक एसिड की कुछ बूँदें डाली जाती हैं (चित्र ३)। यदि घुल जाता है तो समझना चाहिए कि फोस्फेट के कारण है, यदि नहीं घुलता तो एल्ब्यूमिन के कारण समझना चाहिए। प्रारम्भ में ही यदि मूत्र की प्रतिक्रिया अम्लीय न हो तो उसे एसीटिक एसिड १०% के कुछ बूंद डालकर अम्लीय बना लिया जाना चाहिए।

(ख) ***शोरकाम्ल परीक्षा***—इसी को हैलर[2] की परीक्षा भी कहा जाता है। शोरकाम्ल[3] के स्थान पर यदि रौबर्ट द्रव[4] लिया जाय तो इसको रोबर्ट की परीक्षा भी कह सकते हैं। रौबर्ट द्रव, ५० सी० सी० शुद्ध शोरे का तेजाब; २५० सी० सी० मेग्नेसियम सल्फेट के संतृप्त घोल में मिलाकर तैयार किया जाता है।

परीक्षा-विधि यह है कि एक परख नली में थोड़ा शोरकाम्ल या रौबर्ट का द्रव ले लें (चित्र ४)। इसके ऊपर बहुत धीरे धीरे ड्रौपर या पिपेट की सहायता से मूत्र, जिसकी परीक्षा करनी है, डालें (चित्र ५)। यदि मूत्र में एल्ब्यूमिन उपस्थित है तो दोनों द्रवों—शोरकाम्ल एवं मूत्र—के मिलन-स्थान पर एक स्वेत वर्ण अपार दर्शक वलय[5] उत्पन्न हो जायगी।

यह परीक्षा बहुत ही सूक्ष्मग्राही है अतः विश्वसनीय है। ·००३ प्रतिशत तक एल्ब्यूमिन होने पर भी परीक्षा व्यक्त रहती है।

(ग) ***सल्फोसलीसलिक ऐसिड परीक्षा***—यह परीक्षा भी बहुत सूक्ष्मग्राही तथा विश्वसनीय है। एक परखनली में लगभग ५ सी० सी० साफ मूत्र लें। उसमें २०% सल्फो सलीसलिक एसिड के लगभग ६ बूँद डाल दें। धूसर वर्ण, धुँधलापन आ जाने का अर्थ है कि मूत्र में एल्ब्यूमिन है। धुँधलेपन की परीक्षा परख नली के पीछे अपार दर्शक काले रङ्ग का कागज लगा कर की जा सकती है। दूसरी परख नली में थोड़ा केवल मूत्र लेकर इससे मिलान भी किया जा सकता है।

(३) **एल्ब्यूमिनमात्रा-परीक्षा**—उपरोक्त परीक्षाओं द्वारा इस बात का ज्ञान

1. Test tude holder 2. Heller's Test 3. Nitric Acid 4. Roberts reagent 5. Ring.

चि० नं० ५—एक पिपट या ड्रापर को सहायता से १ या २ सी. सी. मूत्र परख नली की दीवाल के सहारे सहारे छोड़ा जाता है ताकि वह द्रव के ऊपर आ जाय (वर्णन पृ० २२ पर)।

म० मू० र० परीक्षा–पृ० २३

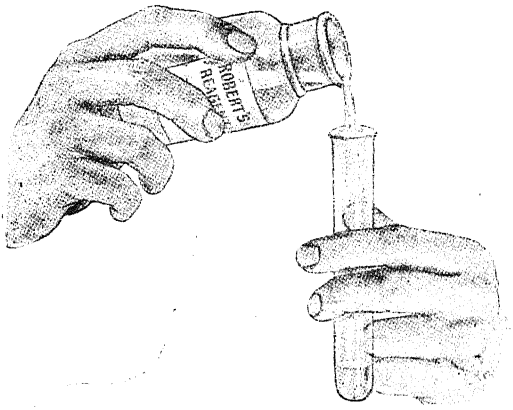

चित्र नं० ४—परखनली में २ सी रोवर्ट द्रव लें (वर्णन पृ० २२ पर)।

हो जाता है कि मूत्र में एल्ब्यूमिन जा रही है किन्तु इस बात का निश्चित अनुमान नहीं लगाया जा सकता कि एल्ब्यूमिन की मात्रा कितनी है। ताप परीक्षा द्वारा एल्ब्यूमिन की मात्रा का कुछ कुछ अनुमान अवश्य लगाया जा सकता है किन्तु निश्चित ज्ञान नहीं होता। परखनली में के सम्पूर्ण मूत्र को उबाल कर २४ घंटे के लिए शान्त छोड़ दिया जाता है ताकि अवक्षेप नीचे तल में बैठ जाय। कुल मूत्र की लम्बाई के जितने भाग में अवक्षेप रहता है उसी के अनुसार मात्रा का भी अनुमान लगाया जाता है। यदि $\frac{1}{2}$ भाग तक में अवक्षेप रहता है तो एल्ब्यूमिन की मात्रा १ प्रतिशत तथा यदि $\frac{1}{5}$ भाग में रहता है तो मात्रा २ प्रतिशत समझी जाती है।

निश्चित ज्ञान ऐसबेक्स के एल्ब्यूमिनोमीटर की सहायता से निम्न विधि से किया जा सकता है :—

सर्व प्रथम यदि मूत्र क्षारीय है तो थोड़ी बूंदे एसीटिक एसिड की मिलाकर उसको अम्लीय बना लिया जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त यह भी आवश्यक है कि परीक्षा के लिए, लिये गये मूत्र का आपेक्षिक घनत्व १०१० से अधिक न हो। यदि अधिक है तो बराबर या दूना पानी मिलाकर मूत्र का आपेक्षिक घनत्व कम कर लिया जाता है। इसके बाद एसबेक्स यूरिनोमीटर में U चिन्ह तक मूत्र भर लिया जाता हैं तथा R चिन्ह तक एसबेक्स द्रव[1] भर लेते हैं। अब यन्त्र के मुख पर रबर का कार्क लगाकर उसको एक दो बार हिला दिया जाता है ताकि मूत्र तथा परीक्षक द्रव भली प्रकार एक दूसरे के सम्पर्क में आ जायँ। इसके बाद यन्त्र को २४ घंटे तक शान्त रखा रहने दिया जाता है ताकि एल्ब्यूमिन का अवक्षेप बनकर तल में बैठ जाय। २४ घंटे बाद जिस अंक तक अवक्षेप रहता है उसको पढ़ लिया जाता है। ये अंक इतने ग्राम एल्ब्यूमिन, प्रति १००० सी० सी० मूत्र समझना चाहिए। इसको दस से भाग देने से एल्ब्यूमिन की प्रतिशत मात्रा

1. Esbach's reagent. १० ग्राम पिकरिक एसिड तथा २० ग्राम सायट्रिक एसिड को लगभग ६०० सी० सी० उबलते हुए पानी में घोल लें। ठंढा होने पर कुछ और पानी मिलाकर कुल १००० सी० सी० कर दें। यही 'एसबैक्स रि एजेण्ट' है।

निकल आती है। यदि आपेक्षिक घनत्व कम करने के लिए मूत्र में पानी मिलाकर उसको हलका करना पड़ा है तो जितना गुना मूत्र को हलका करना पड़ा है उतने से ही इस प्रतिशत मात्रा का और गुणा कर देते हैं। उदाहरण के लिये यदि ५ अंक तक अवक्षेप आता है तो इसका अर्थ ५ ग्राम एल्ब्यूमिन प्रति १००० सी० सी० मूत्र अर्थात् $\frac{५}{१०००}$=".५ प्रतिशत एल्ब्यूमिन हुई। अब यदि मूत्र में बराबर का पानी मिलाया गया है तो .५ × २ = १ प्रतिशत एल्ब्यूमिन समझना चाहिए।

इस यन्त्र द्वारा १ प्रतिशत से कम का फल नहीं मिल सकता। यथार्थ में एल्ब्यूमिन के प्रतिशत प्रमाण को मालूम करने का इतना ही महत्व है कि चिकित्सा के दौरान में इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि चिकित्सा से कुछ लाभ हो रहा है अथवा नहीं।

निर्देश—मूत्र में एल्ब्यूमिन जाना निम्न अवस्थाओं का परिचायक होता है।

१—प्राकृतिक—जो किसी अङ्ग की विकृति का द्योतक नहीं—कठिन-परिश्रम या शीत स्नान के पश्चात्। इस अवस्था में प्रातःकालीन मूत्र में, दो-तीन दिन तक केल्सियम देने के पश्चात् तथा क्षारीक औषधियाँ लेने के पश्चात् एल्ब्यूमिन नहीं मिल सकता। वृक्कपूय अथवा रक्तसंस्थान की अकार्यक्षमता के शोथ आदि कोई लक्षण नहीं मिलते तथा मूत्र में पूय आदि भी नहीं पाई जा सकती। एल्ब्यूमिन की मात्रा ३ प्रतिशत से अधिक नहीं हो सकती।

२—ज्वर की अवस्था में—

३—वृक्क रोगों में—तीव्र अथवा चिरकालीन वृक्क शोथ, वृक्क पूय अथवा वृक्क के अर्बुद में इसकी उपस्थिति अवश्य होती है तथा रोग के दूसरे लक्षण भी मिलते हैं। मात्रा सदैव ३ प्रतिशत से अधिक रहती है।

४—गर्भकालीन विषमयता[1] एक्लेम्पसिया[2] आदि में एल्ब्यूमिन भेद अवश्य मिलता है। इसीलिए गर्भिणी के मूत्र की समय समय पर एल्ब्यूमिन के लिए परीक्षा करना चाहिए। मूत्र में अल्ब्यूमिन का आने लगना इस बात का द्योतक है कि गर्भकालीन विषमता उत्पन्न होने जा रही है जिसका तत्क्षण प्रबन्ध करना नितान्त आवश्यक है।

1. Toxemias of Pregnancy 2. Eclampsia

५—हृदय की दुर्बलता अथवा यकृतक्षय के कारण शिरागत रक्त प्रवाह में बाधा पड़ना।

६—सोमल पारद अथवा शीशा विष, परप्यूरा, स्कर्वी, आतशक, कालाजार आदि रोग।

शर्करा के लिए परीक्षा—निम्न परीक्षाओं द्वारा उपस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षा करने से पूर्व मूत्र को प्रोटीन (एल्ब्यूमिन) रहित बना लेना आवश्यक है। इसके लिए मूत्र में एसीटिक एसिड की दो-तीन बूंद डालकर, उबालकर फिल्टर पेपर द्वारा छान लिया जाता है। छने हुए मूत्र की फिर परीक्षा की जाती है।

१. *फैहलिंग की परीक्षा*[1]—एक परखनली में फैहलिंग द्रव नं १ तथा नं २ दोनों मिलाकर ले लें। दूसरी परखनली में लगभग एक इंच मूत्र ले लें। दोनो फैहलिंग द्रव भी मिलाकर लगभग एक इंच ही होना चाहिए। दोनो परख नलियों को अलग अलग उबाल लें तथा उबालने के पश्चात् मूत्र को फैहलिंग द्रव में डाल दें तथा घोल को कुछ ठंडा होने दें। यदि शर्करा उपस्थित है तो हरा पीला अथवा रक्तिम वर्ण का अवक्षेप बन जाता है। ध्यान रखना चाहिए कि फैहलिंग यदि पुराने हैं तो स्वतः ही उनमें अवक्षेप बन जाता है। इस-लिए सदैव ताजी घोल का ही प्रयोग करना चाहिए। ताजी घोल उबाले जाने पर एक स्वच्छ नीले वर्ण का द्रव रहता है। यह भी हो सकता है कि मूत्र को अलग से परखनली में न उबालकर थोड़ा थोड़ा इसी घोल में डालकर उबाला जाय।

---

1. Fehling Test फैहलिंग द्रव—पिसा हुआ रवेदार Copper Sulphate ३४.६४ ग्राम लेकर २०० सी० सी० गर्म शुद्ध जल में घोल लें। ठंडा होने पर और पानी मिलाकर कुल ५०० सी० सी० कर दें। यह फैहलिंग द्रव नं १ हुआ। १८० ग्राम रवेदार सोडियम पोटेसियम टारटरेट ३०० सी० सी० शुद्ध गर्म जल में घोल दें। फिल्टर पेपर से छान लें। इसी में ७० ग्राम कास्टिक सोड़ा या १०० ग्राम कास्टिक पोटाश मिला दें। ठंढा हो जाने पर और शुद्ध जल मिलाकर ५०० सी. सी. कर दें। यह द्रव नं० २ हुआ। परीक्षा के समय दोनों को समान मात्रा में मिलाया जाता है जिससे पोटेसियम कूप्रिक टारटरेट का क्षारीय घोल तैयार हो जाता है जिसका १ सी. सी. ५ मिलीग्राम ग्लूकोज़ द्वारा रिड्यूस किया जाता है।

यदि मूत्र में १ प्रतिशत या इससे अधिक शर्करा (ग्लूकोज़) है तो रक्तिम या पीत वर्ण अवक्षेप तुरन्त मूत्र तथा फैहलिंग द्रव मिलाने पर बन जाता है। यदि ½ प्रतिशत या इससे भी कुछ कम शर्करा है तो केवल हरे वर्ण का अवक्षेप बनता है जो मूत्र के ठंढे होने पर स्पष्ट होता है। अवक्षेप के बिना बने थोड़े से वर्ण परिवर्तन का ही कोई अर्थ नहीं। सम्मान्यतया २ प्रतिशत शर्करा की उपस्थिति का अनुमान इसके द्वारा लगाया जा सकता है।

इस परीक्षा के समय भी कुछ बातों का ध्यान रखना चाहिए यथा—

(क) एल्ब्यूमिनरहित मूत्र की परीक्षा की जाय। यदि मूत्र में एमोनिया गैस की भी उपस्थिति होगी तब भी परीक्षाफल विश्वसनीय नहीं हो सकता।

(ख) क्लोरल, क्लोरोफार्म, एस्परीन, सलीसलेट, कारबोलिक एसिड, एस्कोर्बिक एसिड भी यदि रोगी ले रहा है तो परीक्षा व्यक्त हो सकती है।

(ग) यदि मूत्र में फोर्मलीन डाल दी गई है तब भी परीक्षा व्यक्त हो सकती है।

(घ) यूरिक एसिड की उपस्थिति में भी परीक्षा पर कम विश्वास किया जाना चाहिए।

(ङ) परीक्षा व्यक्त होने का अर्थ यह भी है कि मूत्र में लेक्टोज, मेंटोज, की भी उपस्थिति है।

२. ***बैरिडक्ट परीक्षा***—यह अधिक सूक्ष्मग्राही तथा विश्वसनीय है। ५ सी. सी. बैंडिक्ट द्रव[1] में लगभग दस बूंद मूत्र को डाल कर उबालें। यदि शर्करा है तो ठंढा होने पर हरा, पीला या रक्तिम अवक्षेप बन जायगा। सामान्यतया इस परीक्षा के फलस्वरूप निम्न अनुमान लगाए जा सकते हैं।

१. हलका हरित वर्ण धुंधला पन.....·१ से ·५ प्रतिशत तक शर्करा
२. हरित वर्ण अवक्षेप .....·५ से १ प्रतिशत शर्करा
३. पीत वर्ण अवक्षेप .....१—२ प्रतिशत शर्करा
४. रक्तिम वर्ण अवक्षेप .....२ से अधिक प्रतिशत शर्करा

1. Bandicts reagent Copper sulphate...17·3 gm. Sodium Citrate...173 gm. Sodium Carbonate (Aubydrows)...100 gm. Crystalline or Sodium carbonate...200 gm.

ध्यान रखना चाहिए कि बैरिडक्ट द्रव, ग्लूकोज, लेक्टोज़ अथवा पेंटोज़ (शर्करा के भिन्न भिन्न रूप) द्वारा ही इस प्रकार का फल दे सकता है। फिनायल हाय-ड्रेजीन परीक्षा तथा सन्धान[1] परीक्षा और भी दो परीक्षायें हैं जो की जा सकती है किन्तु सामान्यतः उनके करने की विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती। अतः इस स्थान पर उनका वर्णन आवश्यक नहीं।

शर्करा की मात्रा परीक्षा—उपरोक्त परीक्षाओं द्वारा शर्करा की उपस्थिति का ज्ञान होता है। शर्करा की कितनी मात्रा है इसका अनुमान लगाने की ओर भी ऊपर संकेत दिया गया है। निश्चित मात्राज्ञान के लिए निम्न विधि का अवलम्बन किया जाता है।

१. इस बात की ओर पीछे ही संकेत किया गया है कि १ प्रतिशत शर्करा की उपस्थिति आपेक्षिक घनत्व को ३ बढ़ा देती है। ऐसी स्थिति में यदि मूत्र के रंग से यह अनुमान लगाया जाता है कि उसका आपेक्षिक घनत्व १०१० होना चाहिए जब कि नमूने के मूत्र का आपेक्षिक घनत्व १०२२ है तो शर्करा की मात्रा $\frac{१०२२-१०१०}{३}$=४ प्रतिशत हुई। इससे भी निश्चित ज्ञान नहीं बल्कि केवल अन्दाज हुआ।

२. ***फैहलिंग की परीक्षा***—ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रकार की मात्रात्मक परीक्षा के लिए २४ घंटे को कुल मूत्र की मात्रा में से ही नमूना लिया जाय। एक ब्यूरेट में शुद्ध मूत्र या पानी मिलाकर मूत्र भर दो। अलग से एक प्याली में या बीकर में १० सी. सी. फैहलिंग का घोल (दोनों ५, ५, सी. सी. मिलाकर) लो तथा उसको उबालो। उबालते समय ही उसमें थोड़ा थोड़ा मूत्र ब्यूरेट से डालते जाओ। फैहलिंग द्रव में भी पानी मिलाया जा सकता है। मूत्र बूंद-बूंद मिलाना चाहिए तथा साथ ही साथ उसको हिलाते भी जाना चाहिए। ठीक जब

Copper Sulphate (नीला थोथा) को लगभग १००–१५० सी. सी. शुद्ध जल में घोल लो। अन्य दोनों पदार्थों को अलग से जल में घोलकर फिल्टर पेपर से छान लो। प्रथम घोल में द्वितीय घोल को धीरे-धीरे डालें तथा हिलाते जायँ। शुद्ध जल मिलाकर कुल १००० सी. सी. कर लें।

1. Fermentation Test

सभी घोल का वर्ण बदल जाय मूत्र डालना बन्द कर दिया जाना चाहिए। इसका अर्थ हुआ कि इतने मूत्र से १० सी. सी. फेहलिंग द्रव रिड्यूस हो जाता है। रिड्यूस होते समय द्रव के वर्ण की सावधानी से परीक्षा करनी चाहिए। यदि प्याली ली गई है तो प्याली को थोड़ा तिरछा कर रंग देखा जाना चाहिए। यदि बीकर लिया गया है तो रंग देखने में आसानी होगी किन्तु बीकर को वाटर बाथ या सेंट बाथ पर उबालना पड़ेगा। मानलो १० सी. सी. फैहलिंग द्रव के वर्ण को नष्ट करने अथवा वैज्ञानिक शब्दों में रिड्यूस करने के लिए ८० सी० सी० मूत्र की आवश्यकता पड़ती है। यदि इस मूत्र को पानी मिलाकर २० गुना हलका किया गया है तो समझना चाहिए कि $\frac{८०}{२०}$ = ४ सी० सी० मूत्र ने इतने द्रव को रिड्यूस किया अर्थात् ४ सी० सी० मूत्र में ·०५ ग्राम शर्करा है। इससे प्रतिशत मात्रा आसानी से निकाली जा सकती है।

साधारण ब्यूरेट के स्थान पर कारवरडीन का शर्करा मापक[1] प्रयोग में लाया जा सकता है।

३. ***बैनेडिक्ट की परीक्षा***—इस परीक्षा में कैदलिंग द्रव के स्थान पर बैनेडिक्ट द्रव लिया जाता है २५ सी० सी० बैनेडिक्ट द्रव एक फ्लास्क में ले लिया जाता हैं जिसमें ४ ग्राम शुष्क सोडियम कार्बोनेट और भी मिला देते हैं। द्रव को धीरे-धीरे मूत्र मिलाते समय गरम किया जाता रहना चाहिए। उपरोक्त प्रकार रंग परिवर्तन हो जाने पर मूत्र मिलाना बन्द कर दिया जाता है। ध्यान रखना चाहिए कि बैनेडिक्ट द्रव के सी० सी० ·०५ ग्राम ग्लूकोज़ द्वारा रिड्यूस होते हैं और इसी आधार पर उपरोक्त विधि से ही शर्करा की प्रशिशत मात्रा निकाल ली जाती है। फैहलिंग द्रव के स्थान पर बैनेडिक्ट द्रव लेने से यह लाभ है कि यह द्रव ग्लूकोज

मूत्र शर्करा के निर्दश—१. प्राकृतिक रूप से शर्करा का जाना—इस प्रकार शर्करा बहुत भम मात्रा में अर्थात् ·१ प्रतिशत प्रत्येक व्यक्ति के मूत्र में जाती है। उपरोक्त परीक्षाओं द्वारा यह व्यक्त नहीं हो पाती।

२. मुख द्वारा अधिक शर्करा लेने से भी शर्करा मूत्र में आने लग सकती है इस प्रकार की स्थिती को आन्त्रिक मधुमेह[2] कहा जा सकता है। ध्यान रखना

1. Carwardine's Sacchari meter. 2. Elementary Glycosusia.

चाहिए कि यदि रक्त में शर्करा की मात्रा १८० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. रक्त से अधिक हो जाती है तो मूत्र में उसका आना बहुत कुछ सम्भव है क्योंकि वृक्क शक्ति[1] १४०–२०० मिलीग्राम तक है अर्थात् १४०–२०० मिलीग्राम शर्करा प्रति १०० सी. सी. रक्त तक वृक्क उसे रोके रह सकते हैं।

३. मानसिक मधुमेह—कुछ व्यक्तियों में आकस्मिक मानसिक आघात, भय, क्रोध या पीड़ा के कारण भी मूत्र में शर्करा आ सकती है किन्तु यह क्षणिक होती है तथा सभी व्यक्तियों में नहीं पाई जा सकती।

४. वृक्कजन्य मधुमेह[2] इसमें वृक्कों की शक्ति कम हो जाती है अर्थात् वे १४० मिलीग्राम शर्करा प्रति १०० सी. सी. रक्त तक ही रोक पाते हैं। (ग्लूकोज़ टौलरेंसटेस्ट) द्वारा इसका निश्चय किया जाना चाहिए।

५. गर्भावस्था के अन्तिम दिनों या दुग्धपान कराने के दिनों[3] में भी स्त्री के मूत्र में थोड़ी बहुत दुग्ध शर्करा[4] आ सकती है।

६. मधुमेह की अवस्था में शर्करा का मूत्र में जाना निश्चित है तथा यही अवस्था रोग की परिचायका है जिसका बहुमूत्र आदि अन्य लक्षणों की उपस्थिति में निर्णय किया जाना चाहिए। कार्बोहायड्रेट के मुख द्वारा लेने के लगभग १–२ घंटे पश्चात् मूत्र में शर्करा की अधिकतम मात्रा मिल सकती है।

(६) रक्त के लिए परीक्षा—मूत्र में रक्त का आना सदैव रक्त के अथवा मूत्र-संस्थान के रोगों का परिचायक है। किन्तु इस परीक्षा के लिये यह सावधानी अवश्य ही रखनी चाहिए कि मूत्र के साथ में कहीं मासिक स्राव न मिल गया हो। मूत्र के साथ में रक्त सदैव शुद्धरक्त अथवा रक्त रंग के रूप में आ सकता है। प्रथम अवस्था को रक्तमेह[5] तथा द्वितीय अवस्था को रक्तरंगमेह[6] कहना चाहिए। दोनों अवस्थाओं में प्रधान अन्तर इतना है कि प्रथम अवस्था में मूत्र के अन्तर्गत रक्त कण भी उपस्थित रहते हैं तथा द्वितीय अवस्था में रक्तकणों के नष्ट हो जाने से उत्पन्न रंग पदार्थ हिमोग्लोबिन ही रहता है। मूत्र में रक्त की परीक्षा निम्न आधार पर की जाती है:—

1. Renal Threshhold. 2. Renal Glycosusia. 3. Lactation period. 4. Lactose. 5. Haematuria. 6. Haemoglobinuria

(१) मूत्र के वर्ण में विशेष परिवर्तन हो जाता है जैसा कि अध्याय के प्रारम्भ में ही दर्शाया गया है।

(२) स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा परीक्षा जो साधारणतया प्रत्येक चिकित्सक द्वारा सम्भव नहीं।

(३) ग्वाइक परीक्षा[1]—एक परखनली में लगभग एक इंच तक मूत्र लें जो पहले गर्म करने के पश्चात् ठण्डा कर लिया गया हो। इसमें केवल २ बूंद टिंचर ग्वाइक मिला दें। हिलाने पर श्वेत वर्ण अवक्षेप-सा बन जाता है। लगभग एक इंच ओजोनिक ईथर[2] परखनली को बिना हिलाये ही मिला दो। यदि रक्त या रक्त रंग हो तो दोनो द्रवों के मिलन-स्थल पर नील वर्ण उत्पन्न हो जायगा। परीक्षा के लिए टिंचर ग्वाइक ताजी रज़िन से तैयार की जानी चाहिए तथा ओज़ोनिक ईथर, हाइड्रोजन पर आक्सायड तथा सल्फ्यूरिक ईथर का मिश्रण है।

ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र में यदि पीब के अंश हैं तो इस परीक्षा से हरा वर्ण उत्पन्न होगा। इसके अतिरिक्त मूत्र में आयोडायड की उपस्थिति होने पर भी यह परीक्षा व्यक्त हो सकती है किन्तु उस अवस्था में नीला रंग सारे मूत्र में उत्पन्न होता है तथा धीरे-धीरे उत्पन्न होता है।

परीक्षा रक्त रंग के ऊपर निर्भर करती है, अतः मूत्र में रक्तकण या रक्तरंग दोनों ही अवस्था में व्यक्त होगी। सामान्यतया रक्तकण मूत्र में नीचे तल में जम जाया करते हैं तथा सूक्ष्म दर्शक द्वारा ही यह निश्चय किया जा सकता है कि रक्त कण उपस्थित हैं अथवा नहीं।

(४) बैंजेडीन परीक्षा[3]—मूत्र की एक बूंद फिल्टर पेपर पर रक्खी जाती है। इसी के ऊपर दूसरी बूंद बैंजेडीन घोल की रख दी जाती है। ३ प्रतिशत हायड्रोजन पर-ओक्सायड की एक बूंद इसी स्थल पर डालने से नीला रंग उत्पन्न हो जाता है।

बैंजेडीन घोल निम्न विधि से तैयार करना चाहिए। एक फ्लास्क में ४·३ सी. सी. एसीटिक एसिड लेकर वाटर बाथ पर उसको गर्म करो। तापमान ५०°सी. से अधिक नहीं होना चाहिए। इसी में ५ ग्राम बैंजेडीन मिला दें तथा ५०·

1. Guaiac Test. 2. Ozonic ether. 3. Benzidine Test.

पुस्तकालय

सेण्टीग्रेड पर ही आठ से दस मिनट तक गर्म करते रहें। अब १६ सी. सी. जल मिलाइये। यह घोल कुछ दिनों तक ठीक रहता है।

(७) हीमोग्लोबीन्यूरिया—इससे तात्पर्य रक्तरंग के मूत्र में आने से है। इससे संबंधित परीक्षाएं ऊपर ही लिखी जा चुकी हैं। प्रायः यह होता है कि रक्तकण तथा रक्तरंग दोनों ही मूत्र में आया करते हैं। यह भी होता है कि मूत्र के कुछ समय तक रक्खा रहने से रक्तकण मूत्र की अम्लता से नष्ट होते जाते हैं। रक्तकणों की उपस्थिति का ज्ञान सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करने पर ही हो सकता है। ताकि मूत्र की सेण्ट्रीफ्यूज मशीन द्वारा तलछट तैयार करके उसकी सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा की जाती है। यदि इसमें रक्तकण नहीं मिलते तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि मूत्र में केवल हीमोग्लोबिन ही है।

(८) मीथ हीमोग्लोबीन्यूरिया—से तात्पर्य मूत्र में मीथ हीमोग्लोबिन का जाना है। इसी के कारण मूत्र का रंग धुंआ[1] सदृश हो जाया करता है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यदि मूत्र अम्ल है तथा कुछ समय तक रक्खा रहता है तो हीमोग्लोबिन, मीथ हीमोग्लोबिन में परिवर्तित हो जाती है। ताजे मूत्र की स्पेक्ट्रोस्कोप द्वारा परीक्षा करने से ही मीथ हीमोग्लोबिन की उपस्थिति का निश्चय किया जा सकता है। मूत्र में मीथ हामोग्लोबिन का जाना इस बात का परिचायक है कि रक्तस्राव वृक्कों में हो रहा है।

रक्तमेह के निर्देश—१. यदि रक्त मूत्रोत्सर्ग के प्रारम्भ में ही आता है तथा बिलकुल लाल रंग का होता है तो समझना चाहिए कि यह मूत्रमार्ग (शिश्न) में से अथवा पौरुष-ग्रन्थि के पास से ही आ रहा है। इस स्थिति में स्थानिक पीड़ा भी होती है तथा चोट अथवा सुज़ाक का पूर्ववृत्त भी मिल सकता है।

२. यदि रक्त मूत्रोत्सर्ग के अन्त में आता है, खास तौर से उस अवस्था में जब वह थक्के के रूप में आ रहा हो तो समझना चाहिए कि मूत्राशय से आ रहा है। मूत्राशय से रक्त आने का कारण मूत्राशय शोथ, मूत्राशय में पथरी, मूत्राशय के अर्बुद तथा पौरुष-ग्रन्थि की वृद्धि भी हो सकती है। मूत्राशय की

1. Smoky.

क्षयजन्य विकृति अथवा सिस्टोसोमियेसिस भी इस प्रकार के रक्तमेह का कारण हो सकती है किन्तु बहुत कम।

३. यदि रक्त मूत्र में पूरी तरह मिश्रित होता है तो समझना चाहिए कि वह वृक्कों से ही आ रहा है। वृक्कों से रक्त आने के कई कारण हो सकते हैं यथा शोथ, रक्ताधिक्य, रक्तरोग, वृक्कपथरी, कुछ विषप्रभाव करने वाली औषधियाँ, वृक्क के अर्बुद, रक्तमेह, तथा आघात। इन रोगों का विशेष वर्णन यहाँ आवश्यक नहीं। रक्तमेह उत्पन्न करने वाले रक्तरोगों से तात्पर्य स्कर्वी, परप्यूरा अथवा मलेरिया से है। मलेरिया ज्वर की अवस्था में भी कभी-कभी, यद्यपि बहुत कम, इस प्रकार की अवस्था उत्पन्न हो जाया करती है। सैलोसलेट्स्, फिनोल, तारपीन का तैल, केन्थरायडस आदि औषधियाँ भी इस प्रकार की अवस्था उत्पन्न कर सकती हैं।

(६) पूय—पूय[1] पीव के लिए मूत्रपरीक्षा सूक्ष्म दर्शक द्वारा ही की जानी चाहिए क्योंकि मूत्र में यदि थोड़ी मात्रा में ही पूय है तो उसको रासायनिक परीक्षा द्वारा व्यक्त नहीं किया जा सकता। एक दो श्वेत कणों का मूत्र में पाया जाना कोई भी अर्थ नहीं रखता है। यदि सूक्ष्म दर्शक द्वारा निश्चित पूय से लें देखी जाती हैं तो परीक्षा व्यक्त समझी जानी चाहिए। यदि मूत्र में अधिक मात्रा में पूय है तो उसका निम्न रासायनिक परीक्षा द्वारा भी अनुमान लगाया जा सकता है—

१. तलछट में उसी के बराबर लायकर पोटास मिलाओ। यदि पूय उपस्थित होगी तो एक रस्सी सदृश जिलेटीन्स पदार्थ बन जायगा। इससे यदि एक परखनली से दूसरी में डाला जाता है तो जैली के समान ही साफ-साफ दिखाई पड़ता है।

२. ग्वायक परीक्षा द्वारा हरे रंग की उत्पत्ति, जिसकी ओर पीछे ही संकेत किया जा चुका है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि पूय यदि वृक्कों से आती है तो प्रारम्भ में मूत्र अम्लीय होता है तथा पूय उसमें भली प्रकार मिली होती है। कुछ देर तक स्थिर रहने पर ही तल में बैठ पाती है। यदि मूत्राशय से आ रही होती है तो मूत्र क्षारीय या निष्क्रिय होता है तथा पूय शीघ्र ही तल में बैठ जाती है।

1. Pus.

पूयमेह के निर्देश—१. यदि मूत्र करते समय प्रारम्भ में ही पूय आती है तो मूत्र अग्लीय है तथा मूत्र करते समय पीड़ा होती है तो समझना चाहिए कि मूत्र नली में से ही आ रहा है अथवा पौरुष ग्रन्थीय पूय[1] का भी सन्देह किया जा सकता है। इन दोनों ही अवस्थाओं का प्रधान कारण पूयमेह—सुजाक—हुआ करता है।

२. यदि पूय मूत्र करते समय बाद में आती है अथवा मूत्र के साथ अच्छी प्रकार मिली रहती है तथा पेट के नीचे के भाग में दबाने से पीड़ा होती है तो समझना चाहिए कि पूय मूत्राशय से आ रही है जिसका कारण मूत्राशय का शोथ है।

३. यदि पूय सम्पूर्ण मूत्र में मिली हुई आती है तथा मूत्र के कुछ समय तक स्थिर रक्खे रहने पर ही तल में बैठती है तो मूत्र की प्रतिक्रिया अम्लीय है एवं गुर्दों के स्थानपर पीड़ा होती है तथा ज्वर भी है तो समझना चाहिए कि पूय गुर्दों में से ही (एक या दोनों से) आती है।

इसके अतिरिक्त यह भी हो सकता है कि गवीनी, मूत्राशय या मूत्र नली के पास का फोड़ा फूट कर मूत्र में पूय मिला दे। उस अवस्था में पूय बहुत अधक मात्रा में मिलेगी तथा जिस स्थान का भी फोड़ा है उसका पूर्ववृत्त तथा अन्य लक्षण भी मिलेंगे।

(१०) पित्त—अवरोधक कामला[2] की स्थिति में मूत्र में प्रारम्भ से ही पित्त[3] के अंश जाने लगते हैं। कामला की स्थिति में भी प्रारम्भ में पित्तरंग[4] तथा पित्तलवण[5] किन्तु बाद में केवल पित्तरंग मिलते हैं। पित्त की उपस्थिति के कारण मूत्र का रंग नारंगी-हरा होता है। निम्न रासायनिक परीक्षाओं से इसका अनुमान लगाया जा सकता है।

(१) गैमलिन की परीक्षा[6]—एक परख नली में मूत्र ले लो। एक किनारे से थोड़ा शुद्ध शोरे का तेज़ाब नीचे जाने दो। जब कि तेज़ाब नीचे तल में बैठता हो तो लाल वामलेट या हरे वर्ण के वलय बन जाते हैं। हरे वर्ण के वलय का बनना पित्त का द्योतक है।

1. Prostatic Abscess. 2. Obstructive Jaundice. 3. Bite. 4. Bile pigment. 5. Bile salts. 6. Gmelin's test.

(२) मेकर चार्लस परीक्षा[1]—एक परख नली में थोड़ा मूत्र लेकर उसमें हल्की टिंचर आयोडीन मिलाओ। यदि मूत्र में पित्त की उपस्थिति होगी तो मूत्र का वर्ण हरा हो जायगा।

(३) हेज़परीक्षा[2]—मूत्र एक चौड़े मुंह के बर्तन में ले लो तथा उसके ऊपर के तल पर गन्धक का चूर्ण भुरक दो। यदि मूत्र में पित्त के अंश होंगे तो यह चूर्ण तल में बैठ जायगा तथा यदि मूत्र ठीक होगा तो तल पर तैरता रहेगा।

(११) यूरो बिलोनोजिन[3]—मूत्र में यह प्राकृत अवस्था में भी बहुत थोड़ी मात्रा में उपस्थित रहती है किन्तु यकृत की अकार्य क्षमता तथा रक्तकण नाश जन्य रक्ताल्पता[4] की अवस्था में इसकी मात्रा बढ़ जाती है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इसकी उपस्थिति का ज्ञान ताजे मूत्र में ही हो सकता है रक्खे हुए मूत्र में नहीं, क्योंकि उस अवस्था में यूरोबिलीनोजिन, यूरोबिलीन में परिवर्तित हो जाती है। इसके कारण मूत्र का रंग चमकीला पीला अथवा पीताभ बादामी हो जाता है।

परीक्षा के लिए एहरलिच[5] का द्रव प्रयोग में लाया जाता है तथा ताजे मूत्र को ही परीक्षा की जानी चाहिए। १० सी० सी० मूत्र में ½ सी० सी० द्रव मिलाकर हिलाओ। यदि यूरोबिलीनोजिन उपस्थित है तो रक्तवर्ण की उत्पत्ति हो जायगी।

(१२) एसीटो एसीटिक एसिड[6]—इसी को डायाएसीटिक एसिड भी कहते हैं। यह मूत्र में कीटोसिस[7] की अवस्था में एसीटोन के साथ ही साथ पाया जाता है। परीक्षा के लिए मूत्र में फेरिक क्लोरायड का संतृप्त घोल मिलाओ। अधिक मात्रा में मिलाने से लाल रंग की उत्पत्ति एसीटो एसीटिक एसिड की द्योतक है।

(१३) एसिटोन—कीटोसिस की अवस्था में मूत्र के अन्दर एसीटोन भी उपस्थित रहता है। इसकी परीक्षा के लिए ५ सी० सी० मूत्र में एक कण सोडियम नायट्रो प्रूसायडका मिलायें तथा लायकर एमोनिया फोर्ट की भी कुछ बूँदे मिलाओ। एसीटोन की उपस्थिति होने पर परमैंगनेट सदृश लालरंग की उत्पत्ति हो जाती है। इस परीक्षा को 'रोथर की परीक्षा' के नाम से सम्बोधित किया जाता है।

1. Marechal's test. 2. Hay's test. 3. Urobilinogen. 4. Ehrilich's aldehyde reagent (P. dimethy lamens bery aldebyde–10 gram cone Hydrochloric acid 100 c. c. Distilled water 300 c. c.) 5. Aceto acetic Acid. 6. Ketosis. 7. Acetone.

(१४) कुछ अन्य परीक्षाएं—उपरोक्त के अतिरिक्त कुछ अन्य विशेष अवस्थाओं में मूत्र की अन्य परीक्षाएं करना आवश्यक होता है। वे निम्न हैं—

१–एलब्यूमोसूरिया[1]—यह अवस्था एम्पायमा आदि के कारण श्वेत कण नाश के समय, यकृत के कुछ रोगों, आन्त्र व्रण आदि की अवस्था में देखी जाती है। इसके लिए निम्न परीक्षाएं की जा सकती हैं यथा—

क–यदि मूत्र में एल्ब्यूमिन नहीं है तो एक परख नली में थोड़ा मूत्र लेकर उसमें बूंद बूंद शोरे का तेजाब मिलाओ। यदि अवक्षेप बन जाता है जो गर्म करने से नष्ट तथा ठंढ़ा होने पर पुनः आ जाता है तो एल्ब्यूमोज़ की उपस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है।

ख–प्रथम मूत्र में कुछ एसीटिक एसिड डालकर उसको अम्लीय कर लें। उसके पश्चात् उसमें नमक का संतृप्त घोल मिलाओ तो कुछ धुंधलापन दूर होता है। तथा ठंडा होने पर फिर आ जाता है।

२–एल्केप्टोन्यूरिया[2]—यह अवस्था बहुत कम देखने को मिलती है तथा एक विशेष प्रकार की जन्मजात अवस्था की द्योतक है। चिकित्सा की दृष्टि से इसका कोई भी महत्त्व नहीं। इस अवस्था में मूत्र कोई क्षार मिलाने या खुला रखा रहने पर ऊपर से नीचे की ओर काला पड़ता जाता है।

३–इण्डीकल[3]—आँतों में सड़न की क्रिया विशेष होने पर मूत्र में इण्डीकन जाने लगता है। ५ सी. सी. ओबर मेयर द्रव[4] तथा २ सी.सी. क्लोरोफार्म मिलाकर हिलायें। कुछ मिनट तक हिलाने से इण्डीगो सदृश नील रंग उत्पन्न हो जाता है। आयोडायड एवं पित्तरंग की उपस्थिति में भी यह परीक्षा व्यक्त होती है।

कुछ औषधियां भी मुख द्वारा सेवन करने से मूत्र में विशेषता उत्पन्न कर देती हैं तथा मूत्र की परीक्षा से उनका अनुमान लगाया जा सकता है किन्तु इन परीक्षाओं की सामान्यतया आवश्यकता नहीं पड़ती है अतः उनकी ओर विशेष संकेत नहीं किया जाता।

मूत्रके प्राकृतिक घटकों[5] के लिए रासायनिक परीक्षा

ऊपर जो कुछ भी रासायनिक परीक्षा वर्णित की गई है वह उन पदार्थों के

1. Albumosuria. 2. Alkaptonuria. 3. Indican. 4. Obermajer's reagent Ferric chloride 2 parthy drochloric acid 1000 parts) 5. constituents

लिए है जो प्रकृतितः मूत्र में नहीं पाये जाने चाहिए तथा जिनका उपस्थिति विकृति की परिचायक है। अब इस स्थल पर उन पदार्थों की रासायनिक परीक्षा का वर्णन किया जायगा जो स्वस्थ व्यक्ति के मूत्र में भी पाए जाते हैं, किन्तु जिनकी कमी अथवा अधिकता विकृति की परिचायका है। जैसा कि पीछे भी संकेत दिया जा चुका है, मूत्र यथार्थ में पानी है जिसमें लगभग ४ प्रतिशत की मात्रा में विशिष्ट ठोस पदार्थ घुले रहते हैं। इन ठोस पदार्थों में यूरिया प्रधान है जिसकी मात्रा २·५–३ प्रतिशत तक हो सकती है।

(१) यूरिया—एक स्वस्थ व्यक्ति २४ घंटे में लगभग १२००–१५०० सी. सी. तक मूत्र करता है जिसमें २५ ग्राम तक यूरिया हो सकती है। ध्यान रखना चाहिए कि यदि वृक्क स्वस्थ हैं तथा अपना कार्य ठीक तरह से कर रहे हैं तो यूरिया की मात्रा नायट्रोजनयुक्त भोजन की मात्रा पर निर्भर करती है। जितना ही नायट्रोजनयुक्त भोजन अधिक लिया जायगा उतनी ही मूत्र में यूरिया की मात्रा बढ़ेगी। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि वमन अथवा अतिसार के पश्चात् यूरिया की मात्रा बहुत कुछ घट जाती है। मूत्र में यूरिया की मात्रा घटना तथा साथ ही साथ रक्त में यूरिया की मात्रा का बढ़ना मूत्र विषमता (यूरेमिया)[1] का द्योतक है। यह अवस्था प्रधानतः वृक्क के सभी रोगों, यकृत के कुछ रोगों, मिक्सोडीमा[2] (युवावस्था में चुल्लिका ग्रन्थि के स्राव की कमी), एडीसन का रोग तथा मानसिक अवसाद[3] की अवस्था में घट जाती है।

परीक्षा—एक काच पट्ट[4] पर जो सूक्ष्म दर्शनीय परीक्षा के लिए प्रयुक्त किया जाता है एक बूंद मूत्र की रक्खें तथा उसीके साथ एक बूंद शोरकाम्लकी छोड़ दें। थोड़ा गर्म करें तथा जलीयांश के उड़ जाने पर ठंडा करके सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करें। यूरिया नायट्रेट के विशेष आकार के (चित्र ६) कण दिखाई पड़ेंगे।

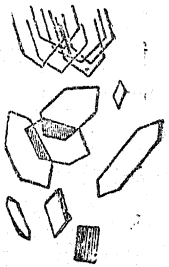

चित्र सं ६

यूरिया मात्रा-परीक्षा—उपरोक्त परीक्षा से यूरिया की केवल उपस्थिति का अनुमान लगाया जा सकता है। उसकी मात्रा अर्थात् कितनी मात्रा में यूरिया

1. Uraemia. 2. Myxoedema. 3. Melancholia. 4. Microscopic slide.

उत्सर्गित हो रही है। यह निश्चित अनुमान लगाने के लिए गैरार्ड के यूरिया मापक[1] द्वारा परीक्षा की जाती है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि इस परीक्षा के लिए २४ घंटे के कुल मूत्र में से नमूना लिया जाय। परीक्षा द्वारा यह निश्चय किया जाता है कि मूत्र की एक निश्चित मात्रा–५ सी. सी.–द्वारा कितनी नाइट्रोजन उत्पन्न हो सकती है। मूत्र में सोडियम हायपो ब्रोमायट मिलाकर यूरिया का विघटन करके यह नाइट्रोजन उत्पन्न की जाती है।

ध्यान रखना चाहिए कि ५ सी. सी. मूत्र लेने पर सी. सी. नायट्रोजन × ·०५६ = ग्राम यूरिया प्रति १०० सी. सी. मूत्र अर्थात् यूरिया की प्रतिशत मात्रा मालूम हो जाती है।

सामान्यतः इस प्रकार के हिसाब की भी कोई आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि यन्त्र में यूरिया की प्रतिशत मात्रा बताने के लिए ही चिह्न पड़े होते हैं।

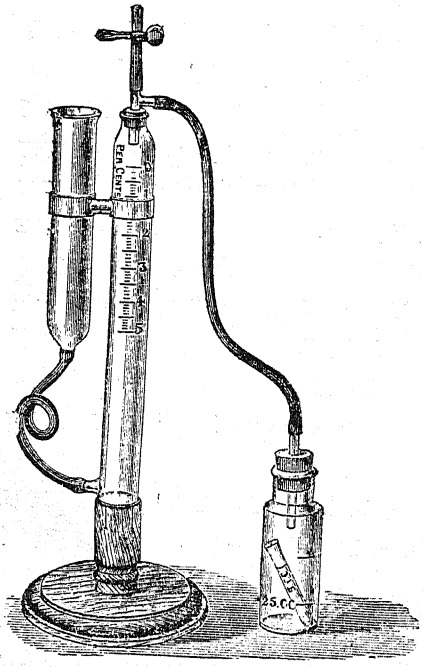

चित्र सं० ७

1. Gerrard's ureometer. 2. Stop cock.

गैरार्ड का यूरिया मापक (चित्र ७) एक लम्बा काच का बेलनाकार बर्तन जिसमें यूरिया की प्रतिशत मात्राद्योतक चिह्न लगे होते हैं, एक स्टेएड पर स्थिर रहता है। इसके ऊपरी शिरे में एक रबर कार्क फिट होता है जिसमें होकर काच की एक आकार की नली लगी रहती है। इस नली की एक भुजा में रबर की दो इंच लम्बी नली तथा उसको बन्द करने–खोलने की स्प्रिंग[2] लगी हुई है। दूसरी भुजा में एक लम्बी रबर की नली लगी होती है जिसके द्वारा यह बर्तन एक दूसरी लगभग ६ औंस की बोतल से सम्बन्धित होता है

जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। मध्य का प्रधान बर्तन अपने नीचे के शिरे पर रबर की नली द्वारा एक अन्य बर्तन से सम्बन्धित रहता है जो जल संग्रह[1] का काम देता है तथा जिसे एक धातु के छल्ले में स्थिर रखते हुए मध्य बर्तन के सहारे ही ऊपर नीचे किया जा सकता है।

काच की बोतल में २५ सी. सी. सोडियम हायपो ब्रोमायट घोल रक्खें। यह घोल सदैव ताजा तैयार किया जाता है। १० ग्राम कास्टिक सोडा २५ सी. सी. जल में घोल लो। ठंडा होने पर उसमें २·५ सी. सी. ब्रोमीन मिला दें। ब्रोमीन छोटे छोटे ट्यूब में मिलती है जो घोल के साथ हिलाए जाने पर ट्यूब टूट कर घोल में मिल जाती है। यदि यह हायपो ब्रोमायट घोल अधिक मात्रा में भी लिया जाता है तब भी कोई आपत्ति नहीं, क्योंकि हमको तो इतने घोल की आवश्यकता है जो सम्पूर्ण यूरिया को विघटित कर दे। यदि अधिक होने के कारण कुछ शेष रह जाता है तो भी कोई आपत्ति नहीं। अब दूसरे ट्यूब में, जो यन्त्र के साथ ही आता है, ५ सी. सी. मूत्र लिया जाता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि मूत्र एल्ब्यूमिन रहित हो। लगभग ५० सी. सी. मूत्र में एसीटिक एसिड की बूंदे डालकर उबाल लिया जाता है तथा बाद में फिल्टर करने के बाद पानी मिलाकर मूत्र की मात्रा ५० सी. सी. ही कर ली जाती है। मूत्र युक्त छोटे ट्यूब को बहुत सावधानी के साथ धीरे से बड़ी बोतल में रख दिया जाता है, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है। अब बीच के बर्तन के ऊपरी शिरे में रबर की नली के साथ लगे स्टोपकोक को खोल दिया जाता है तथा वाटर रिज़र्वायर में पानी डालकर उसे नीचे किया जाता है जब तक कि मध्य के बर्तन में पानी न आ जाय। अब वाटर रिजर्वायर को स्थिर कर देते तथा स्टोपकोक को बन्द कर देते हैं।

बोतल को थोड़ा हिलाया जाता है ताकि मूत्र तथा घोल दोनों एक दूसरे के सम्पर्क में आ जांय। मूत्र तथा घोल में रासायनिक क्रिया के फलस्वरूप बुदबुदे उठते हैं। रासायनिक क्रिया से उत्पन्न यह गैस रबर की नली में होकर मध्य के बर्तन में पहुँचती है तथा वहाँ पानी को नीचे हटाती हुई एकत्रित होती जाती है। बोतल में की रसायनिक क्रिया के समाप्त हो जाने के दस मिनट पश्चात् रिजर्वा-

1. Water reservoir.

यर को थोड़ा नीचे करके उसमें तथा मध्य के बर्तन में पानी का तल एक स्तर पर लाया जाता है। अब परीक्षित मूत्र में यूरिया की प्रतिशत मात्रा सीधी पढ़ी जा सकती है क्योंकि यह बर्तन उसी के अनुसार चिह्नित होता है।

यहाँ यह भी ध्यान रखना है कि केवल ९२ प्रतिशत नायट्रोजन ही निकल पाती है और उसी के अनुसार यन्त्र में चिह्न होते हैं। किन्तु मूत्र में शर्करा की उपस्थिति होने पर ९९ प्रतिशत तक नायट्रोजन निकल जाती है, अतः यदि मूत्र शर्करायुक्त है तो इस यन्त्र द्वारा प्राप्त फल को $\frac{९९}{९२}$ = ९३ से गुणा कर दिया जाना चाहिए। गैरार्ड के यूरिया मापक द्वारा प्राप्त फल में १० प्रतिशत तक अशुद्धि की सम्भावना रहती है।

(२) क्लोरायड—मूत्र में प्रधानतः सोडियम क्लोरायड ही इस प्रकार पाया जाता है। कुछ अंश पोटेशियम क्लोरायड के भी मिल सकते हैं। प्रकृतितः सोडियम क्लोरायड की मात्रा २४ घंटे के मूत्र में ११–१४ ग्राम रहती है जो भोजन की प्रकृति के अनुसार घट-बढ़ भी सकती है। विकृति के रूप में ज्वरों के पश्चात् ठीक होते समय जलीयांश के शोषण के समय तथा बहुमूत्र की अवस्था में यह मात्रा बढ़ जाती है तथा मलेरिया के अतिरिक्त अन्य ज्वरों के समय, गुर्दे के रोगों में जब मूत्र में एलब्यूमिन की भी उपस्थिति रहती है, वमन तथा रक्ताल्पता की अवस्था में तथा कुछ मानसिक रोगों में यह मात्रा घट जाती है।

परीक्षा—(१) एक परखनली में थोड़ा मूत्र लेकर उसमें कुछ बूंदे शोरे के तेज़ाब की डालें तथा बराबर मात्रा में सिल्वर नायट्रेट का ३ प्रतिशत घोल मिलायें। अवक्षेप का निर्मित हो जाना इस बात का द्योतक है कि मूत्र में क्लोरायड उचित मात्रा में उपस्थित है। किन्तु यदि मूत्र केवल दूधिया बन जाता है तो समझना चाहिए कि मात्रा कम है।

(२) एक छोटी परखनली में पिपट या ड्रौपर की सहायता से दस बूंद मूत्र नाप लिया जाता है। पिपट को धो लिया जाता है तथा बाद में उसीसे एक बूंद पोटेशियम क्रोमेट के २० प्रतिशत सोल्यूशन को मिला देते हैं। पिपट को पुनः धोकर उसमें सिल्वर नायट्रेट का २·९ प्रतिशत घोल भर लेते हैं। अब इस घोल की ठीक एक एक बूंद डालकर परखनली को हिलाते हैं। ध्यान रखना चाहिए कि प्रत्येक बूंद डालने के बाद परखनली को हिलाया जाय। बूंद तब तक

मिलाते रहना चाहिए जब तक कि मूत्र का रंग पीले से एकदम बादामी हो जाय। बूंदों की संख्या प्रति लिटर मूत्र में ग्राम क्लोरायड की सूचक है। इस बात का ध्यान रखना चाहिए तथा परीक्षा भी करनी जानी चाहिए कि पोटेशियम क्रोमेट घोल में क्लोरायड के कुछ भी अंश न हों। इस परीक्षा में अशुद्धि हो जाने की बहुत सम्भावना रहती है।

प्रकृतितः मूत्र में फोस्फेट एवं सल्फेट भी पाये जा सकते हैं।

पोटास परमेंगनेट द्वारा विशेष परीक्षा—इस परीक्षा का अधिकांश पुस्तकों में उल्लेख नहीं पाया जाता किन्तु इसकी ओर एएटी सेप्टिक सन् १९४९ पृष्ठ ८५६ में संकेत किया गया है। परीक्षा महत्वपूर्ण होने के साथ ही साथ बहुत आसान है, अतः यहाँ भी उसका वर्णन करना पाठकों के लिए लाभप्रद होगा:—

दो परखनलियाँ ४½ इंच लम्बी तथा ½ इंच डायमीटर की ली जाती हैं। दोनों में आधी-आधी इंच की दूरी पर एक दूसरे के समानान्तर रेखाएं खींच दी जाती हैं। रेखा खींचने के लिए विशेष प्रकार की पेंसिल होनी चाहिए जिससे कांच पर रेखा खींची जा सके अथवा परखनली पर तीन इंच लम्बाई तक एक कागज चिपका दिया जाता है जिसके ऊपर इसी प्रकार रेखाएं खिंची होती हैं। अब प्रथम निशान तक दोनों परखनलियों में मूत्र भर देते हैं। अन्तिम निशान तक शुद्ध परिश्रुत जल भरकर परखनली को ऊपर नीचे करके मूत्र तथा जल को भली प्रकार मिला देते हैं। अब पोटास परमेंगनेट का १:१००० ताजा घोल तैयार किया जाता है। घोल को एक पिपट या ड्रापर में भरकर एक परखनली में बूँद बूँद छोड़ते हैं। दूसरी परखनली को रंग के मुकाबले के लिए पास ही रक्खा जाता है। यदि मूत्र टायफायड के लिए ऋणात्मक अर्थात् रोगी, जिसके मूत्र की परीक्षा की जा रही है, टायफायड से पीड़ित नहीं तो बूंद मूत्र में डूबते समय अपने पीछे लोहित गुलाबी-सा रंग छोड़ता जाता है किन्तु यदि रोगी टायफायड से पीड़ित है तो प्रत्येक बूंद के आस-पास ऊन सदृश धुंधलापन आता जाता है। पांच बूंद मिला देने के पश्चात् परखनली को ऊपर नीचे करके हिला दिया जाता है तथा दूसरी परखनली के साथ मिलान करके देखा जाता है। यदि रोगी टायफायड से पीड़ित है तो मूत्र का वर्ण मैपाक्रायन सदृश पीला हो जाता है। यदि केवल पांच बूंद पोटास परमेंगनेट घोल डालने से ही वर्ण पीला न होने

पावे तो पांच बूंद और मिलाया जा सकता है तथा इसके दो तीन मिनट पश्चात् रंग देखा जा सकता है। पीला वर्ण जितना ही अधिक स्पष्ट होता है परीक्षा को उतना ही अधिक व्यक्त समझना चाहिए। जिन अवस्थाओं में परीक्षा क्षीण व्यक्त होती है उनसे उपान्त्र ज्वर अर्थात् पैराटायफायड ज्वर समझना चाहिए।

यह परीक्षा सामान्यतया ज्वर के तीसरे दिन से ही व्यक्त होने लगती है, सातवें दिन से बहुधा व्यक्त हो जाती है तथा ज्वर समाप्त होने के कुछ दिन बाद तक व्यक्त रहती है।

वृक्क कार्यक्षमता परीक्षा

शरीर की कुछ विशेष अशुद्धियों को मूत्र के रूप में उत्सर्गित करते रहना ही वृक्कों का कार्य है। वृक्क अपने इस कार्य को कहाँ तक करते रह सकने में समर्थ हैं इस प्रकार की परीक्षा को ही वृक्क कार्यक्षमता परीक्षा[1] कहा जाता है। यह परीक्षा निम्न तीन बहुत सामान्य विधियों से की जा सकती है—

१. इस बात की ओर पीछे ही संकेत किया जा चुका है कि जब गुर्दे अकार्यक्षम बनते जाते हैं तो मूत्र का आपेक्षिक घनत्व कम हो जाता है यहाँ तक कि वह १०१० पर ही स्थिर हो जाता है तथा प्रारम्भ में रात्रि के मूत्र की मात्रा भी बढ़ती जाती है।

२. **यूरिया कन्सेंट्रेशन परीक्षा**[2]—सामान्यतया मूत्र में यूरिया की प्रतिशत मात्रा नाप कर वृक्कों की कार्यक्षमता का कुछ भी अनुमान नहीं लगाया जा सकता क्योंकि स्वास्थ्यावस्था में भी यदि मूत्र में यूरिया की मात्रा कम है अथवा जलीयांश की मात्रा अधिक है तो यूरिया की प्रतिशत मात्रा कम होगी। इसलिए रोगी को यूरिया की एक निश्चित मात्रा मुख द्वारा दी जाती है और इस अवस्था में यदि वृक्क स्वस्थ है तो मूत्र में उत्सर्गित होनेवाली यूरिया की मात्रा भी बढ़ जानी चाहिये। इसी सिद्धान्त के ऊपर परीक्षा आधारित है।

मूत्राशय में से मूत्र निकालने के पश्चात् रोगी को १५ ग्राम यूरिया १०० सी. सी. जल में घोल कर तथा उसको सुस्वादु बनाकर दी जाती है। इससे पूर्व कुछ घंटों तक रोगी को कुछ भी पान नहीं किया होना चाहिए। इसके बाद

1. Kidney Efficiency Test. 2. Urea Concentration Test.

प्रत्येक घंटे पर मूत्र लिया जाता है तथा उसमें यूरिया की मात्रा को नापा जाता है। अच्छा हो दूसरे तथा तीसरे घंटे के मूत्र में ही यह मात्रा नापी जाय।

यदि वृक्क स्वस्थ हैं तो दूसरे तीसरे घंटे के मूत्र में यह मात्रा २·५ प्रतिशत से कुछ अधिक या २ प्रतिशत से अधिक तो होनी ही चाहिए। यदि थोड़ी सी विकृति है तो १·५ से २·५ प्रतिशत तक हो सकती है तथा यदि अधिक विकृति है तो १·५ प्रतिशत से भी कम होगी। किन्तु निश्चित धारणा बनाने से पूर्व कुछ और भी बातें ध्यान में रखने की आवश्यकता है। यथा—यदि रक्त में यूरिया की मात्रा प्रारम्भतः कम (·०२० प्रतिशत) है तो मूत्र में भी यूरिया की इतनी अधिक प्रतिशत मात्रा की आशा नहीं की जा सकती, जब कि रक्त में यूरिया की मात्रा अधिक (·४५ प्रतिशत) होने पर मूत्र में भी अधिक आशा की जा सकती है। इसी प्रकार मूत्र की मात्रा अधिक (१५० सी. सी.) होने पर यूरिया की प्रतिशत मात्रा कम तथा मूत्र की मात्रा कम (५० सी. सी.) होने पर मूत्र में यूरिया की प्रतिशत मात्रा अधिक होगी।

३. **फिनोल सल्फोन थ्यैलीन परीक्षा**[1]—फिनोल-सल्फोन-थ्यैलीन एक रंग का पदार्थ है जिसको इञ्जेक्शन द्वारा रोगी को दिया जाता है तथा इसके बाद दो घंटे में यह अनुमान लगाया जाता है कि कितना रक्त पदार्थ मूत्र द्वारा उत्सर्गित हो गया। यही परीक्षा का सिद्धान्त है।

मूत्र का स्राव बढ़ाने की दृष्टि से रोगी को ४०० सी. सी. पानी पीने के लिए दिया जाता है तथा १५ मिनट पश्चात् उसके मूत्राशय को मूत्र कराकर या मूत्र नलिका का प्रयोग करके खाली कर दिया जाता है। अब ६ मिलीग्राम रंग पदार्थ पदार्थ १ सी. सी. शुद्ध परिश्रुत जलमें घोल कर पेशी में इञ्जेक्सन द्वारा दिया जाता है। इसके ठीक एक घंटे और फिर दो घंटे पश्चात् मूत्र-परीक्षा के लिए एकत्र कर लिया जाता है। वर्णमापक[2] की सहायता से परीक्षा द्वारा यह अनुमान लगाया जाता है कि इसमें कितना वर्ण पदार्थ वृक्कों द्वारा उत्सर्गित हुआ।

मूत्र अम्लीय होने के कारण वर्ण द्वारा रंजित न हो यह सम्भव है, इसलिए उसमें ४० प्रतिशत कास्टिक सोडा का घोल मिलाया जाता है तथा बाद में और शुद्ध जल मिलाकर मूत्र की मात्रा ५०० सी० सी० (यदि रंग गहरा हो) अथवा २५०

1. Phenol-sulphone phthlein Test. 2. Colorimeter.

सी० सी० (यदि रंग हल्का हो) कर ली जाती है। साथ ही उस को फिल्टर भी कर लिया जाता है।

अब मुकाबिला करने के लिए इसी वर्ण पदार्थ का दूसरा घोल तैयार किया जाता है। ·०२ प्रतिशत घोल के १·५ सी० सी० लिए जाते हैं। उसमें क्षारीयता लाने के लिए कास्टिक सोडा का घोल मिला देते हैं तथा पानी मिलाकर कुल ५० सी० सी० कर देते हैं। यथार्थ में यह १००० सी० सी० में ६ मिलीग्राम शक्ति का घोल तैयार हो जाता है। इसी रंग से मूत्र में के रंग का मुकाबिला करना है। यहाँ एक कठिनाई और भी है और वह यह कि मूत्र का वर्ण कुछ हल्का पीला होता है अतः इस पीलेपन का भी थोड़ा बहुत प्रभाव पड़ना ही चाहिए। इसके लिए सर्वोत्तम उपाय यह है कि मुकाबिले वाला घोल तैयार करते समय शुद्ध जल के स्थान पर रोगी का मूत्र ही जो पहिले निकाला गया था मिलाकर ५० सी० सी० कर दिया जाय।

इस स्थल पर मूत्र में के वर्ण को जिसकी परीक्षा करनी है 'प' तथा उसके घोल को जिस से मुकाबिला करना है 'म' नाम से सम्बोधित करेंगे।

वर्ण मापक के दो वर्तनों में प तथा म घोलों को अलग अलग किया जाता तथा म घोल को एक निश्चित गहराई २० मिलीमीटर पर स्थिर कर देते हैं। प घोल को आगे पीछे करके देखा जाता है कि किस गहराई पर वह म घोल के सदृश ही दीखता है। मान लें यह गहराई 'क' है तो—

$$\text{प घोल में रंग की गहराई} \times \frac{\text{क}}{२०} = \text{ने घोल में के रंग की गहराई।}$$

प घोल के २५० सी० सी० में रंग की मात्रा × क = म घोल के २५० सी० सी० में रंग की मात्रा = $\frac{२५०}{१०००}$ × ६ मिली ग्राम अर्थात् मूल मात्रा का २६ प्रतिशत।

$$\text{इसलिये प घोल में रंग की मात्रा} = २५ \text{ प्रतिशत} \times \frac{२०}{\text{क}}$$

इस प्रकार रंग की प्रतिशत मात्रा मालूम पड़ जाती है। इसी विधि से दूसरे घंटे के मूत्र में भी रंग की प्रतिशत मात्रा मालूम कर ली जानी चाहिए। यदि परीक्षित मूत्र को २५० सी० सी० के स्थान पर ५०० सी० सी० बनाया गया है तो २५ प्रतिशत के स्थान पर ५० प्रतिशत लेना पड़ेगा।

यदि वर्ण-मापक उपलब्ध नहीं है तो निम्न प्रकार से परीक्षा की जा सकती है:—

पूर्णतः समान आकार की दो परखनलियों में अलग-अलग १०,१० सी० ष एवं म घोल ले लिए जाते हैं। मान लें प घोल का वर्ण अधिक गहरा है तो म घोल में एक ब्यूरेट में से थोड़ा थोड़ा पानी मिलाते हैं तथा हिलाते जाते हैं यहाँ तक कि दोनों की परख नलियों में रंग की गहराई एक सी हो जाती है। मानलो क सी० सी० पानी मिलाना पड़ा तो—

$$\text{प में रंग की गहराई} \times \frac{१०+क}{१०} = \text{म में रंग की गहराई}$$

$$\text{प घोल के २५० सी० सी० में रंग की मात्रा} \times \frac{१०+क}{क} = \text{म घोल के २५० सी० सी० मे रंग की मात्रा} = २५ \text{ प्रतिशत (मूल मात्रा का)}—$$

$$\text{इसलिए प घोल में वर्ण की प्रतिशत मात्रा} = २५ \times \frac{१०}{१०+क}$$

ध्यान रखना चाहिए कि वृक्कों के स्वस्थ होने पर प्रथम घंटे पश्चात् वाले मूत्र में रंग की मात्रा ४० प्रतिशत तथा दूसरे घंटे वाले मूत्र में २० प्रतिशत-इस प्रकार २ घंटे में कुल ६० प्रतिशत रंग उत्सर्गित हो जाता है।

यदि मूत्र में रक्त जा रहा है तो इस परीक्षा से कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता।

उपरोक्त परीक्षा बहुत साधारण है तथा विशेष विश्वसनीय नहीं। तीनों ही परीक्षाओं को मिलित रूप से देखने पर अवश्य कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

वृक्कों की स्थिति का ठीक-ठीक अनुमान लगाने के लिए रक्त के विभिन्न लवणों का रक्त परीक्षा द्वारा अनुमान लगाना आवश्यक है जो एक अच्छी कोटि की प्रयोगशाला में ही सम्भव है। इसको रक्त परीक्षा प्रकरण में देखिए।

सूक्ष्म दर्शकात्मक परीक्षा

सूक्ष्म दर्शक द्वारा सदैव तलछट[1] की परीक्षा की जाती है। सेण्ट्रीफ्यूज मशीन[2] की सहायता से तलछट एकत्रित कर लिया जाता है। इस तलछट की एक बूंद

1. Deposit. 2. Centrifeuge Machine.

स्लाइड के मध्य में रक्खी जाती है तथा कवर ग्लास से उसको आच्छादित करके सूक्ष्म दर्शक द्वारा निम्न[1] एवं उच्च[2] दोनों ही शक्तियों द्वारा परीक्षा की जा सकती है।

तलच्छट में निरेन्द्रिय[3] पदार्थ-विशेष लवणों के कण तथा सेन्द्रिय[4] पदार्थ रक्त कण पूय आदि हो सकते हैं जिनका कि यहाँ क्रमशः वर्णन किया जायगा।

निरेन्द्रिय पदार्थ

तलछट में पाई जाने वाली पहली चीज होती है। भिन्न भिन्न लवणों के कण जो ताजे मूत्र या कुछ देर रक्खे हुए मूत्र में देखे जा सकते हैं। अम्लीय मूत्र में निम्न कण देखे जा सकते हैं—

१. **यूरेट्स**—ये सोडियम पोटेशियम या एमोनियम यूरेट हो सकते हैं। इनमें यह विशेषता होती है कि ये मूत्र में के वर्णद्रव को ले लेते हैं अतः इनका वर्ण पीलिमा युक्त लाल होता है। सोडियम यूरेट कभी कभी बच्चों के मूत्र में देखा जा सकता है। यूरेट्स बिना रवेदार[5] या गोलाकार रवों[6] के रूप में यह हो सकते हैं। कुछ गोलाकार रवों में यह विशेषता भी देखी जाती है कि उनमें इधर उधर कहीं कहीं श्रृंग निकले होते हैं। (चित्र ८)

२. **यूरिक एसिड**—रेत सदृश रवों के रूप में होते हैं जिनका वर्ण पीलिमा युक्त लाल होता है। सूक्ष्म दर्शक द्वारा भिन्न भिन्न विशेष आकारों के रवे देखे जा सकते हैं। (चित्र ९)

मूत्र में इनका पाया जाना इस बात का परिचायक है कि मूत्र अम्लीय तथा अधिक घनीभूत[7] है जैसा कि ज्वरावस्था या अधिक व्यायाम आदि के कारण हो सकता है।

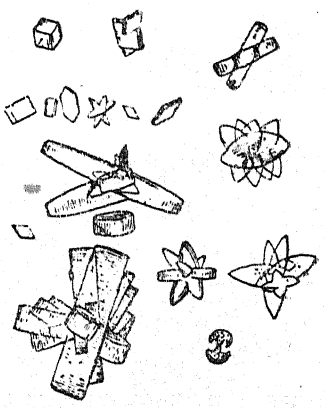

चित्र सं० ९

1. Low and 2. High power. 3. Inorganic and 4. Organic. 5. Amorphons. 6. Circular crystels. 7. Concentrated.

३. **केल्सियम ओक्सेलेट**—इसके अष्टभित्तीय या डम्बल के आकार के रवे देखे जा सकते हैं (चित्र १०)

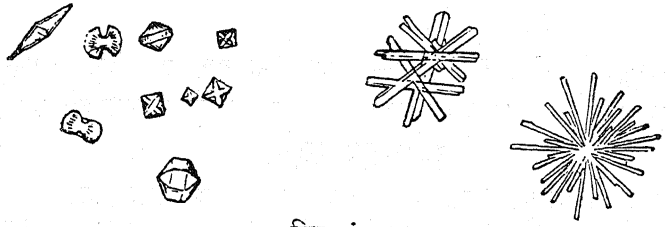

चित्र सं० १०

मूत्र में इनका पाया जाना इस बात का परिचायक है कि आँतों के अन्दर बसा[1] कर्बोज[2] तथा प्रोटीन के अन्तर्गत भी जीवाणुजनित सड़ने[3] की क्रिया होती है जिसके फलस्वरूप चिरकालीन निबन्ध एवं दुर्बलता आदि के लक्षण मिलते हैं इसके साथ ही आमाशयिक रस में अम्ल की कमी भी हो सकती है।

४. **ल्यूसिन, टायरोसिन तथा सिस्टिन** भी देखे जा सकते हैं। इनमें से प्रथम दो तीव्र यकृत क्षय[4] तथा तृतीय प्रोटीन की विकृत रसपाकावस्था[5] में देखे जाते हैं। क्षारीय मूत्र में निम्न कण देखे जा सकते है—

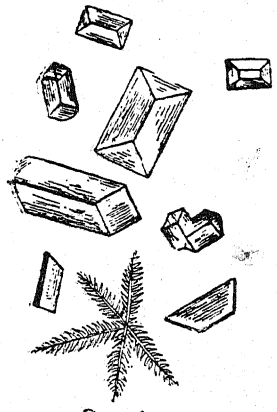

चित्र सं० ११

१. **ट्रिपिल फोस्फेट**—इनके कण जैसा कि चित्र ११ में दिखाया गया है, पाये जा सकते हैं। प्राकृत अवस्था में सोडियम, पोटेशियम, केल्सियम तथा मैग्नेशियम फोस्फेट के लवण मूत्र में घुले हुए ही निकलते रहते हैं। किन्तु जब मूत्र की अम्लीयता कम हो जाती है अथवा मूत्र निष्क्रिय हो जाता है तब केल्सियम एवं मैग्नेसियम फोस्फेट अवक्षेपित हो जाते हैं। मूत्र में सड़ने की क्रिया होने से एमोनिया गैस उत्पन्न होकर मूत्र को क्षारीय बना देती है जिससे अन्य फोस्फेट भी अवक्षेपित हो जाते हैं। मूत्र को थोड़ा एसीटिक एसिड डालकर गर्म करने से फोस्फेट शीघ्र ही मूत्र में घुल जाया करते हैं।

1. Fat. 2. Carbohydrate. 3. Bacterial decomposition. 4. Acute yellow atrophy, of liver 5. Pereeried protein Metabolism.

मूत्र में फोस्फेट का जाना मूत्र मार्ग के शोथ, विशेषकर मूत्राशय शोथ का परिचायक हो सकता है। सामान्यतया यह देखा जाता है कि मूत्र में फोस्फेट जाने से रोगी बहुत चिन्तित हो जाता है क्योंकि वह समझता है कि शरीर का एक विशेष आवश्यक अंश क्षीण हो जा रहा है। ऐसी अवस्था में उसको सन्तोष दिलाने की आवश्यकता है कि इस प्रकार की कोई बात नहीं। एसिड सोडियम फोस्फेट या नरसार मुख द्वारा देने से यह अवस्था सुधारी भी जा सकती है। यदि मूत्रमार्ग में कहीं शोथ के लक्षण मिलें तो उनका उचित प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

२. केल्सियम कार्बोनेट—यदि मूत्र में केल्सियम कार्बोनेट उपस्थित हैं तो अम्ल डालने से कार्बन डाय आक्सायड निकलने के कारण झाग से उठते हैं। केल्सियम कार्बोनेट बिना रवे या रवों के रूप में तल में बैठ सकते हैं। इनका मूत्र में पाया जाना इस बात का परिचायक है कि मूत्राशय में मूत्र सड़ने की क्रिया होती है।

३. एमोनियम यूरेट—ये घनीभूत मूत्र में, यदि उसको थोड़ी देर रक्खा रहने दिया जाता है तो, पाये जाते हैं। कणों का एक विशेष आकार होता है जैसा कि चित्र १२ में दिखाया गया है।

ट्रिपुल फोस्फेट के साथ इनका भी मूत्र में पाया जाना मूत्राशय शोथ का द्योतक समझा जाता है।

४. सल्फनोमायड कण—ये कण ऐसे व्यक्ति के मूत्र में जो सल्फनोमायड विभाग की औषधियों का सेवन कर रहा है पाये जा सकते हैं। इनका आकार जो भी सल्फनोमायड लिया जा रहा है उसके अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकता है। चित्र १३ में सल्फाथियेज़ोल कण तथा चित्र १३ में सल्फ परीडीन कण दिखाये गये हैं। मूत्र में इन कणों का पाया जाना स्पष्टतः इस बात का द्योतक है कि सल्फा विभाग की औषधियों को शीघ्र ही बन्द कर दिया जाना चाहिए।

ध्यान रखना चाहिए कि मूत्राशय या वृक्क में पथरी की उत्पत्ति इन उपरोक्त लवणों (सल्फनोमायड को छोड़कर) के द्वारा ही हो जाया करती है। लवणों के ही जमते जाने से एक बहुत बड़ा कण बन जाता है जो मूत्रमार्ग में

बाधा उत्पन्न करने लगता है। साधारणतया पथरी निम्न लवणों से बन जाया करती है—

अ—यूरिक एसिड तथा यूरेट मिलकर मूत्राशय में एक बड़ी पथरी बना दे सकते हैं। ब—केल्सियम ओक्सेलेट स्वतः अकेला अथवा यूरिक एसिड के साथ मिलकर। स—फोस्फेट, मिश्रफोस्फेट तथा कार्बोनेट द्वारा बहुत कम अवस्थाओं में पथरी का निर्माण होता है।

सेन्द्रिय पदार्थ

मूत्र में उपरोक्त अनैन्द्रिक पदार्थों की अपेक्षा सेन्द्रिक पदार्थों का पाया जाना अधिक महत्त्व का है क्योंकि इस प्रकार की स्थिति साफ-साफ रूप से विकृत की परिचायका होती है। मूत्र तलछट में पाये जाने वाले सेन्द्रिय पदार्थों को हम तीन भाग में बाँट सकते हैं यथा निर्मोक,[1] विभिन्न आकार प्रकार के जीवकोष[2] तथा विभिन्न जीवाणु[3]।

निर्मोक—निर्मोक से तात्पर्य मूत्रमार्गीय अन्तराच्छादक कला से है जो स्थल के अनुसार तथा अन्य परिस्थितियों के कारण भिन्न-भिन्न आकार प्रकार की हो सकती है। मूत्र में निर्मोक जब काफी मात्रा में होते हैं तो सूक्ष्मदर्शक द्वारा उनका देखा जाना आसान है किन्तु जब बहुत कम होते हैं तब उनका देखा जाना कठिन होता है। ऐसी स्थिति में बहुत सावधानी लगन तथा परिश्रम के साथ मूत्र के तलच्छट में इनका पता लगाया जाना चाहिए। यह हो सकता है कि एक से अधिक स्लायड बनानी पड़े तथा विशेष सावधानी के साथ परीक्षा करनी पड़े। इनको भली प्रकार स्पष्ट करने के लिए यह भी आवश्यक हो सकता है कि मूत्र को सेण्ट्रीफ्यूज करने से पहले उसमें कुछ बूंदें मेथीलीन ब्ल्यू की डाल दी जाय। इससे निर्मोकों पर कोई भी वर्ण नहीं आता किन्तु जीवकोषों (यदि निर्मोक पर उपस्थित हैं) के केन्द्र रंजित हो जाते हैं तथा कुछ हलके पीले से नीले धरातल[4] पर निर्मोक साफ साफ दिखाई देने लगते हैं।

निर्मोक मालूम करने के लिए सदैव ताजी मूत्र की परीक्षा की जानी चाहिए क्योंकि रक्खा रहने पर सड़ने की क्रिया के कारण निर्मोक पूर्णतः नष्ट या विकृत हो जा सकते हैं।

1. Cast 2. Cells 3. Parasites & Bacteria. 4. Pale blue Back ground.

निर्मोक निम्न प्रकार के हो सकते हैं—

अ—**एपीथिलियल निर्मोक**[1]—इसमें एपीथीलियल जीवकोष जिनके केन्द्र भी रहते हैं देखे जा सकते हैं (चित्र १४ अ)

ब—**रक्ताणु निर्मोक**—वर्ण लाल होता है तथा रक्तकण निर्मोक से लगे हुए देखे जा सकते हैं (चित्र १४ ब)

स—**श्वेताणु निर्मोक**—रक्त कणों के स्थान पर श्वेत कणों द्वारा इस श्रेणी के निर्मोक बने रहते हैं।

ध्यान रखना चाहिए कि रक्ताणु या श्वेताणु निर्मोक से तात्पर्य यह है कि निर्मोकों के तल पर इसके लगे रहने के कारण निर्मोकों में तदनुकूल भिन्नता आजाती है।

द—**कणदार निर्मोक**[2]—हायलायन तल पर कण लगे रहते हैं (चित्र १४ स)।

य—**हायलायन कास्ट**[3]—जीव कोषों की अनुपस्थिति के कारण विशिष्ट रचना न रहकर केवल हायलायन तल रह जाता है (चित्र १४ द)।

फ—**बसा निर्मोक**—हायलायन तल पर बसा कण उपस्थित रहते हैं। (चित्र १४ म)

र—**सिलेण्ड्रोयड**[4]—यह लम्बी फ़ीते के आकार की रचना है जो हलकी पीली या बिना वर्ण की होती है। उपर्युक्त निर्मोकों की अपेक्षा इस की लम्बाई अधिक होती है तथा उसके साथ में किसी प्रकार के जीवकोष नहीं लगे रहते। मूत्र में इनका पाया जाना विकृति का परिचायक नहीं।

मूत्र में निर्मोकों का पाया जाना सदैव तीव्र या चिरकालीन वृक्कशोथ का परिचायक है।

जीवकोष—

अ—**एपीथीलियल जीवकोष**—ये जीवकोष भिन्न-भिन्न आकार के हो सकते हैं। जैसे कि चित्र १५ में दिखाये गये हैं तथा वृक्क प्रदेश, वृक्क कटि[5] या मूत्राशय से आ सकते हैं। वृक्क से आने वाले जीवकोष तीव्र वृक्कशोथ की अवस्था

1. Epithelial cast 2. Granular cash. 3. Hyaline carts. 4. Cylindroid 5. Pelvis of the capidney.

में स्वस्थ होते हैं किन्तु चिरकालीन वक्क शोथ की अवस्था में बिगड़े हुए अथवा वसाकणों से युक्त हो सकते हैं जैसा कि चित्र में है। वृक्क कटि से आने वाले जीवकोष तर्कवाकार हैं तथा ये वृक्क छोटे शोथ के परिचायक समझने चाहिए। मूत्राशय से आने वाले जीवकोष मूत्राशय शोथ की अवस्था में आते हैं। कभी कभी यह भी होता है कि मूत्राशय में उत्पन्न किसी अर्बुद की उपस्थिति का अनुमान मूत्र में आने वाले रेशों या विशेष आकार-प्रकार के जीव-कोषों से लगाया जा सके। पुरुषों में पौरुष ग्रन्थिशोथ की अवस्था में तर्कवाकार जीवकोषों से मिलते जुलते जीवकोष देखे जाते हैं। स्त्रियों में योनिमार्ग के स्राव के मूत्र के साथ मिल जाने से योनिमार्गीय कला के जीवकोष भी मिल सकता है।

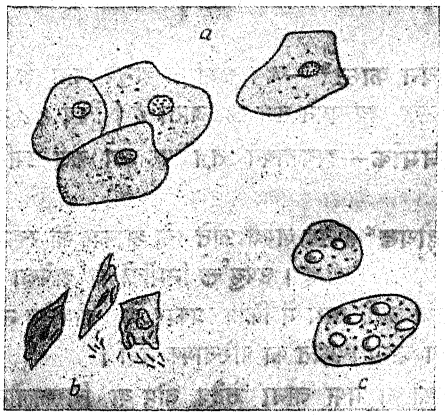

चित्र १६ अ, ब, स

ब—**रक्तकण**—मूत्र तलछट में रक्तकणों का पाया जाना स्पष्टतः इस बात का परिचायक है कि मूत्र में रक्त की उपस्थिति है। थोड़ी संख्या में रक्तकणों के होने पर यह सम्भव है कि सूक्ष्म दर्शक द्वारा तो उनको देखा जा सके किन्तु रासायनिक परीक्षा व्यक्त न हो। यह भी ध्यान रखना चाहिए की ताजे मूत्र में उनको प्राकृतिक रूप में ही देखा जा सकता है किन्तु यह भी सम्भव है कि उनकी आकृति में भिन्नता आ जाय जैसा कि चित्र १६ में अ, ब, स करके दर्शित है।

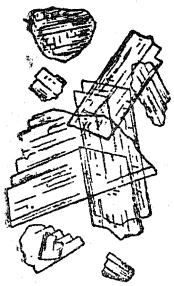

चित्र १७ य

पूय जीवकोष[1]—सूक्ष्म दर्शक द्वारा देखे जाने पर इनका आकार रक्त कणों के आकार का लगभग १½ होता है। सामान्यतया ये अपारदर्शक तथा कणदार होते हैं। (चित्र १८ द) किन्तु एसीटिक एसिड की बूंद डालने से ये साफ हो जाते हैं तथा केन्द्र भी दिखाई पड़ने लगता है। (चित्र १७ य)। यह आवश्यक नहीं कि जीवकोषों के साथ ही साथ मूत्र में जीवाणु भी उपस्थित हों।

शुक्राणु[2]—कभी कभी मूत्र-तलछट में शुक्राणु भी दिखाई पड़ जाते हैं। शीर्ष एवं पुच्छ सहित विशेष आकार के कारण इन को आसानी से पहचाना जा सकता है।

जीवाणु—मूत्र तलछट की जीवाणु विषयक परीक्षा अन्य पदार्थों की जीवाणु विषयक परीक्षा की तरह ही है जिसका कि वर्णन द्वितीय अध्याय में ही किया जा चुका है। मूत्र में जीवाणुओं का पाया जाना इस बात का स्पष्ट परिचायक है कि उस जीवाणु के कारण मूत्र संस्थान में विकृत आ चुकी है।

मूत्र में बी० कोलाई पाया जा सकता है तथा जीवाणुमेह[3] की बहुधा कारण हुआ करता है। गोनोकोकाई, स्ट्रप्टोकोकाई, तथा स्टैफ्लोकोकाई भी पाये जा सकते हैं। आन्त्रज्वर की अवस्था में मूत्र में टायफोयड वेसिलाई (आन्त्रज्वर का जीवाणु) भी बहुधा पाया जाता है जो रोग के ठीक हो जाने पर भी मूत्र में उत्सर्गित होता रहता है तथा रोग के प्रसार में सहायता देता है। मूत्र में क्षय के जीवाणु का पाया जाना भी सम्भव है जो इस बात का द्योतक है कि मूत्राशय में या वृक्क कटि मे क्षय जन्य विकृति है।

इसके अतिरिक्त मूत्राशय में मूत्र सड़ने की क्रिया होने के कारण कुछ अन्य बेसीलस सब्टिलिस आदि जीवाणु पाये जा सकते हैं जो किसी विकृति के परिचायक नहीं होते।

---

1. Pus-cells 2. Spermetozoa 3. Bacilluria.

तृतीय अध्याय

मल-परीक्षा

हम जो कुछ भी मुख द्वारा सेवन करते हैं उसमें से अधिकांश जो शरीर पोषण के लिये आवश्यक होता है पचकर रस के रूप में छोटी आँतों में होकर रक्त में शोषित हो जाता है। पाचन का अर्थ हैं भोजन को आमाशयिक या अन्य पाचक रसों द्वारा द्रव रूप में (रस) में ले आना ताकि रक्त में उसका शोषण हो जा सके। पाचन एवं शोषण के पश्चात् भोजन के जो अनावश्यक अंश रहते हैं वे मल के रूप में शरीर से उत्सर्गित हो जाते हैं।

इसीलिए पाचन संस्थानसम्बन्धी अधिकांश रोगों के निश्चित निदान के लिए मल परीक्षा नितान्त आवश्यक है। इतना ही नहीं कभी कभी मल परीक्षा दूसरे रोगों की ठीक ठीक प्रकृति समझने में भी सहायक होती है। मल की पूर्ण परीक्षा द्वारा अग्न्याशय एवं आन्त्र सम्बन्धी रोगों के प्रारम्भिक निदान में भी बहुत कुछ सहायता मिल सकती है। मल परीक्षा के सम्बन्ध में एक बात यह भी ध्यान में रखने की है कि रोगी द्वारा दी गई सूचना पर चाहे वह मल के रूप, मात्रा आदि के सम्बन्ध में ही क्यों न हो विशेष विश्वास नहीं किया जा सकता अतः चिकित्सक को चाहिए कि वह स्वतः मल को देखे। मल का थोड़ा सा अंश रोगी एक टिन पात्र में ला सकता है किन्तु अच्छा यह है कि सम्पूर्ण मल को ही रोगी के घर पर या उससे मंगाकर देखा जाय। मल चौड़े मुख के कांच पात्र में लाया जा सकता है। यह भी ध्यान रक्खा जाना चाहिए कि उसके साथ में मूत्र न मिल जाय।

मल की परीक्षा भौतिक, रासायनिक तथा सूक्ष्म दर्शक द्वारा हो सकती है। मल में मिलने वाले विभिन्न जीवाणुओं के लिए उसकी परीक्षा सूक्ष्म दर्शक द्वारा या वृद्धि करके की जानी चाहिए।

भौतिक परीक्षा

भौतिक परीक्षा का अर्थ है मल की मात्रा रूप, वर्ण, आकार तथा गन्ध का निर्णय करना और साथ ही साथ इस बात का भी अनुमान लगाना कि उसमें कोई अन्य अप्राकृतिक पदार्थ तो नहीं जा रहे हैं।

मात्रा[1]—इस सम्बन्ध में केवल इतना अनुमान लगाना ही पर्याप्त है कि मल कम मात्रा में आता है कि अधिक मात्रा में क्योंकि स्वस्थावस्था में भी केवल भिन्न भिन्न व्यक्तियों में ही नहीं बल्कि एक ही व्यक्ति में यह भिन्न भिन्न हो सकता है। अतिसार तथा भोज्य पदार्थ का आँतों द्वारा ठीक शोषण न हो सकने की अवस्था में यह मात्रा बढ़ जाती है।

रोगी मल-त्याग के लिए कितनी बार जाता है यह भी व्यक्ति विशेष की प्रकृति पर निर्भर करता है। प्रातः सायं दो बार अथवा केवल एक बार जाना ही नियम सा है। अतिसार का अर्थ ही बार-बार मल-त्याग के लिए जाना है। क्षुद्र आँतों में विकृति होने पर रोगी बार-बार मल त्याग करता है तथा मल पर्याप्त मात्रा में आता है किन्तु वृहद् आँतों में विकृति होने पर रोगी को मल त्याग के लिए बार बार जाना पड़ता है और मल पीड़ा के साथ साथ थोड़ा निकलता है।

रूप—मल का रूप[2] मल के निकलने की गति अर्थात् दस्तों की संख्या तथा वृहद् आँतों में जलीयांश के शोषण की अवस्था पर निर्भर करता है। आँतों की विकृति के कारण उसके रूप में अन्तर आ जाना तो स्वाभाविक है ही।

साधारणतया मल घन या अर्द्धघन अवस्था में होता है तथा गोलाकार बेलन के रूप में निकलता रहता है। सूखी गांठों के रूप में मल का निकलना इस बात का परिचायक है कि मलाशय में जलीयांश का शोषण अधिक हो जाता है अथवा रोगी पानी उचित मात्रा में नहीं लेता। पतले बेलन के रूप में मल का निकलना मलाशय संकोचक पेशी[3] की उत्तेजना[4] का द्योतक हैं जिसका कारण मलाशय में कोई विदार[5] हो सकता है। पतले फीते सदृश मल का निकलना इस बात का परिचायक है कि मलद्वार कैंसर, सिफ़िलिस या गनोरिया व्रण के कारण संकुचिक हो गया है। आन्त्रज्वर, ग्रहणी तथा क्षयज या सामान्य आन्त्रशोथ की अवस्था में द्रवरूप में मल निकलता है। वृहद आन्त्र की विकृति के कारण उत्पन्न मल चिपचिपा होता है तथा उसमें मल[6] की मात्रा अधिक रहती है।

वर्ण—स्वस्थावस्था में मल का वर्ण हलके बादामी से गहरा बादामी तक हो सकता है जिसका कारण स्टर्कोबिलिन, क्लोरोफिल तथा दूसरे वर्ण पदार्थ होते हैं।

1. Quantity 2. Consistency 3. Sphineterani 4. Spasm 5. Fissure 6. Faecal matter

स्टर्कोबिलिन यकृत के स्राव का वर्ण पदार्थ है जो आन्त्रों में यकृत से आकार मिलता रहता है और इसलिए यह ध्यान रखना चाहिए कि मल के वर्ण की गहराई इस बात पर निर्भर है कि आँतों में कितना पित्त आकर मिलता है। अतिसार की अवस्था में मल का रंग रंग-द्रव की कमी तथा मल की अधिकता के कारण हलका पड़ता जाता है। मल के वर्ण परिवर्तन के सम्बन्ध में निम्न तालिका अधिक सहायक होगी :—

वर्ण	कारण
१. हलका पीला या बादामी वर्ण	अ—पित्त के आँतों तक आने में रुकावट जैसा कि कामला की अवस्था में। ब—अशोषित वसा की मल में अधिकता स—वर्ण द्रव स्टर्कोबिलिन का वर्ण रहित द्रव ल्यूको बिलिन में परिवर्तित हो जाना। द—वर्ण द्रव का मल की अधिकता के कारण हलका पड़ जाना जैसा कि विसूचिका में हो जाता है।
२. राखसदृश वर्ण रहित मल	अ—अवरोधक कामला पित्त मल में उत्सर्गित ही नहीं हो पाता। ब—मल में वसाका निकलना जिसका कारण अग्न्याशय की विकृति या ग्रहणी[1] रोग के कारण वसाका न शोषित होना हो सकता है।
३. काले रंग के मल का आना	अ. रक्तस्राव जो आन्त्र नलिका में ऊपर की ओर ही पक्वाशय या छोटी आंतो में होकर मल में मिल जाते हैं। ब. रोगी मुख द्वारा लौह, विस्मथ, मेंगनीज़ या चारकोलका कोई योग ले रहा हो।

1. Sprue.

४. मल के साथ रक्त शुद्ध अवस्था—अ. अर्श[1], सव्रण वृहद् आन्त्र शोथ[2] या कैंसर की उपस्थिति।
में जाना
ब. आमातिसार-मल के साथ ही साथ आम का आंत्र

५. हरे पीले दस्त — अ. आन्त्रशोथ या अपच के कारण बालातिसार

६. वर्ण एवं गन्ध रहित मांड सदृश—अ. विशूचिका-मल की प्रतिक्रिया क्षारीय मल

७. झागदार, पीले अम्लीय दस्त — अ. कार्बोहायड्रेट का आँतों में संधान[3]

८. मटर के सोवा सदृश हरे दस्त—अ. टायफ़ायड आन्त्रज्वर.

गन्ध—मल में गन्ध स्केटोल एवं इण्डोल के कारण होती है तथा प्रोटीन सेवन के ऊपर बहुत कुछ निर्भर करती है क्योंकि प्रोटीन के विघटन स्वरूप ही स्केटोल तथा इण्डोल का निर्माण होता है। किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि यह गन्ध असह्य तथा अधिक नहीं होती। आँतों में कार्बोहाइड्रेट सन्धान होने तथा बच्चों के अतिसार की अवस्था में कुछ खट्टी खट्टी बदबू आने लगती है। विशूचिका के दस्तों में भी एक विशेष प्रकार की गन्ध आती है। तीव्र स्वरूप का एमिबिक या बेसिलरी अतिसार, कैंसर आदि की उपस्थिति में भी कभी कभी मल बहुत खराब गन्धयुक्त हो जाता है। एमोनिया सदृश गन्ध का आने लगना इस बात का परिचायक है कि मल के साथ में मूत्र के अंश मिल गये हैं।

मल में पाये जाने वाले अन्य पदार्थ—मल में निम्न पदार्थ पाये जा सकते हैं जिनके देखने के लिए मल की सावधानी के साथ परीक्षा की जानी चाहिए :—

१. **भोजन के बिना पचे हुए अंश**—भोजन में इनका पाया जाना इस बात का द्योतक है कि भोजन का पचन अच्छी प्रकार नहीं हो रहा है। जिसका कारण अधिक मात्रा में भोजन हो सकता है अथवा आँतों या आमाशय की विकृति हो सकती है। बच्चों में इस प्रकार की स्थिति अधिक भोजन की परिचायक है। कार्बोहाइड्रेट, प्रोटीन या वसा जिसके भी अंश जा रहे हों भोजन में उनकी भी कम कर देनी चाहिए।

1. Piles-Haemorrhoids 2. Ulcerative colitis. 3. Fermentation

२. म्यूकस[1]—मल में इसको निश्चित करने के लिए कुछ अधिक परिश्रम की आवश्यकता है। यह हो सकता है कि मल में पानी मिला दिया जाय। ऐसा करने से म्यूकस पानी के ऊपर तैरने लगेगा। थोड़ी मात्रा में म्यूकस की उपस्थिति स्वस्थावस्था में भी हो सकती है। मलावरोध के कारण बहुधा ऐसा हो जाया करता है। जब म्यूकस मल के साथ ही भलीप्रकार मिला रहता है तथा अधिक मात्रा में आता है तो यह अनुमान लगाया जा सकता है कि विकृति छोटी आँतों के अन्तर्गत है। यदि म्यूकस मल में मिला हुआ नहीं बल्कि अलग से आता है तो समझना चाहिए कि वह वृहद् आँतों से आ रहा है। म्यूकस से तात्पर्य जैली सदृश पदार्थ से है जिसे आँव नाम से भी सम्बोधित किया जाता है।

३. पूय—मल में पूय का आना स्पष्टतः इस बात का द्योतक है कि मलाशय या वृहद् आन्त्र में कहीं व्रणोत्पत्ति है जिसका कारण क्षय, कैंसर या फिरंग हो सकता है। आमातिसार की अवस्था में भी पूय आने लगती है। एक दम अधिक मात्रा में पूय का आना इस बात का द्योतक है कि आँतों के निकट का कोई फोड़ा फूट गया है जिसकी पूय मल के साथ मिल गई है।

४. रक्त—मल के साथ रक्त दो रूप में आ सकता है शुद्ध रक्त के रूप में जब थोड़े धब्बे या अधिक मात्रा में आता हो इस प्रकार की स्थिति उसी अवस्था में हो सकती है जब मल वृहद् आँत या मलाशय से ही आ रहा हो जैसा कि अर्श, मलाशय का विकार या व्रण की अवस्था में सम्भव है। कभी कभी मलावरोध होने पर मल के अधिक कड़ा हो जाने से मल के साथ में ही थोड़े रक्त के धब्बे आ जाते हैं किन्तु वे किसी भी प्रकार की विकृति के परिचायक नहीं।

दूसरे परिवर्तित काले रंग के रूप में जब रक्त आन्त्रनलिका के ऊपरी भाग आन्त्रनलिका[2], आमाशय के व्रण, या कैंसर, या क्षुद्र आन्त्र के टायफायड व्रण आदि से आ रहा हो। इस स्थिति में रक्त शुद्ध लाल रंग का न रह कर काला पड़ जाता है क्यों कि पाचक रसों का उस पर प्रभाव पड़ता रहता है। कभी कभी रक्तचाप, कालाजार, मलेरिया के कारण भी रक्त आते देखा गया है। एमिबिक या बेसीलरी अतिसार में तो रक्त का आना निश्चित है ही।

1. Mucous. 2. Oesophagus

रक्त मल में कहीं से भी क्यों न आ रहा हो यदि मल को पानी में घोल दिया जाता है तो पानी का लाल रंग हो जाना निश्चित है। निश्चित निदान के लिए कि मल में रक्त आ रहा है या नहीं मल की रसायनिक या सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा की जा सकती है।

५. पित्ताश्मरी[1]—मल में पानी मिला कर फिर उसे किसी चलनी या कपड़े में छान कर अश्मरी का अनुमान लगाया जा सकता है। अश्मरी पानी के तल में बैठ जाती है किन्तु सूखी होने पर मल के ऊपर ही तैरती रहती है। सन्देह की अवस्था में सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा की जानी चाहिए जब कि कोलेस्ट्रीन के कण देखे जा सकेंगे (चित्र १७)

६ विभिन्न कृमि—मल के अन्तर्गत कई भिन्न भिन्न कृमि पाये जाते हैं जिनका कि स्पष्ट वर्णन आगे चलकर किया जायगा।

७ कीड़े—कीड़ों से तात्पर्य मक्खी के लार्वा से है जो मल में कभी कभी बहुत कम अवस्थाओं में देखे जाते हैं। यदि मल कुछ समय तक बाहर पड़ा रह जाता है तो यह निश्चित है कि मक्खी उस पर अण्डे दे देंगी कुछ समय पश्चात् जिनके लार्वा दिखाई पड़ने लगेंगे। कभी कभी ऐसा भी होता है कि मनुष्य मक्खी के अण्डों को भोजन के साथ में निगल जाता है तो आंतों में लार्वा उत्पन्न होकर मल के साथ निकलने लगते हैं। ऐसी हालत में आमाशय आन्त्र शोथ[2] के लक्षण प्रगट हो जाते हैं। केस्ट्रोयल देकर आन्त्रस्थ लार्वा को निकाल देने से काम चल जाता है। सत अजवायन[3], सेंटोनिन या टरपेंटायन की भी आवश्यकता पड़ सकती है।

रासायनिक परीक्षा

प्रतिक्रिया—मल साधारणतया स्वस्थ अवस्था में निष्क्रिय होता है किन्तु कार्बोहायड्रेट या वसा की उपस्थिति होने पर अम्लीय तथा प्रोटीन की उपस्थिति में क्षारीय हो सकता है। अमीबिक आमातिसार में मल की प्रतिक्रिया अम्लीय तथा बेसीलरी आमातिसार में क्षारीय होती है। प्रतिक्रिया की परीक्षा लिटमस पेपर की सहायता से की जानी चाहिए। लिटमस पेपर को पानी से भिगो लिया

1. Gall stones. 2. Gastro-enteritis 3. Thymol.

जाता है तथा उसके एक ओर मल के छोटे टुकड़े को मला जाता है। लिटमस के रंग परिवर्तन का अनुमान दूसरी ओर देख कर लगाया जा सकता है।

इसके अतिरिक्त मल की रासायनिक परीक्षा प्रधान रूप से रक्त की उपस्थिति का निश्चय करने के लिए की जाती है जिसकी विधि निम्न है—

चूर्ण के पैकिट तैयार करके रख लिए जाते हैं जो वेक्स पेपर में लपेट कर रक्खे जाने चाहिए ताकि कुछ समय तक खराब न होने पावें। प्रत्येक पैकिट में ·२ ग्राम वेरियम पर-ऑक्सायड तथा ·०२५ ग्राम शुद्ध बेंजडीन रहता है। परीक्षा करते समय ही एक पैकिट को ताजी तैयार की गयी ५० प्रतिशत एसीटिक एसिड के ५ सी. सी. घोल में मिला लेते हैं। एक काँच की राड से मल के मध्य में से थोड़ा मल का भाग लेकर एक कांच की स्लायड पर फैला लिया जाता है। इसके बाद स्लायड के ऊपर फैले हुए मल के भाग में कुछ बूंदे तैयार किये गये घोल की छोड़ दी जाती हैं। यदि मल में रक्त उपस्थित है तो एक मिनट के अन्दर ही नीला या नीला हरा वर्ण उत्पन्न हो जाता है। वर्ण की गहराई तथा उत्पन्न होने की शीघ्रता से रक्त की मात्रा का भी कुछ कुछ अनुमान लगाया जा सकता है।

इस परीक्षा को करने से पहले यह भी आवश्यक है कि रोगी को ४८ घंटे पहले से कोई लौह युक्त खाद्य पदार्थ जैसे मांस, मांस रस, यकृत, हरे साग आदि नही दिए गए हों। किन्तु यह भी ध्यान रखना चाहिए कि यदि घोल की बूंद डालने के ३० सेकिंड के अन्तर्गत ही नीला या नीला हरा रंग उत्पन्न हो जाता है तो मल में रक्त की उपस्थिति निश्चित है चाहे भोजन किसी प्रकार का रहा हो।

ग्वायक परीक्षा—एक सुपारी के बराबर मल लेकर ८–१० सी. सी. ग्लेसियल एसीटिक एसिड के साथ मिला दिया जाता है। भली प्रकार मिलाने के बाद कुल घोल के बराबर या उस से कुछ अधिक ही ईथर मिलावें तथा घोल को फिर हिलावें। ऊपर से निकारे हुए लगभग २ सी. सी. द्रव में ५ बूंद यानी टिंचर ग्वायकम् मिला दो तथा बाद में धीरे धीरे १० प्रतिशत ओजोनिक अल्कोहल मिलाओ। रक्त की उपस्थिति होने पर नीला या हरा वर्ण उत्पन्न हो जायगा। ओजोनिक अल्कोहल जिसका वर्णन मूत्र-परीक्षा के समय किया जा चुका है काफी मात्रा में मिलाया जाना चाहिए।

बसा की उपस्थिति के लिये भी मल की रसायनिक परीक्षा की जाती है किन्तु परीक्षा बहुत जटिल है और विशेष आवश्यक भी नहीं अतः उस का यहाँ वर्णन नहीं किया जाता।

सूक्ष्म दर्शक से परीक्षा

मल की सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा का प्रधान उद्देश्य मल के अन्तर्गत, प्रोटोज़ुआ, कृमि या जीवाणुओं की उपस्थिति का निश्चय करना है। मांसपेशी-सूत्र, स्टार्च कण, बसा के विभिन्न रूप, ट्रिपिल फौस्फेट या म्यूकस भी देखे जा सकते हैं किन्तु इनकी उपस्थिति अनुपस्थिति का कोई विशेष महत्व नहीं।

प्रोटोजुआ, जीवाणु या कृमियों के लिए मल की परीक्षा के सम्बन्ध में कुछ सामान्य बातें भी ध्यान में रखनी हैं यथा—

मल ताजा होना चाहिए क्योंकि दो घंटे के अन्तर्गत ही अमीबा आदि नष्ट हो जाते हैं तथा उनके सिस्ट भी नष्ट होने लगते हैं। मल में मूत्र या अन्य जीवाणु नाशक पदार्थ नहीं मिल जाना चाहिए तथा कुल का कुल मल परीक्षा के लिए भेज देना अच्छा है। सर्दी के दिनों में यदि ताजे ही मल की परीक्षा नहीं की जा सकती तो उसे इनक्यूबेटर में सुरक्षित रखना आवश्यक है। जिस दिन मल की परीक्षा करनी हो उससे एक दिन पूर्व रोगी को विरेचन नहीं दिया जाना चाहिए। यदि परीक्षा के लिए ताजा मल न मिल सके तो एक १२ नम्बर की मूत्र नलिका साफ करके ऊँचाई तक मलाशय में प्रविष्ट कर दी जाती है। निकालने पर उसके शिरे पर परीक्षा के लायक काफी मल लगा हुआ मिल जा सकता है। मल के साथ दो इमल्सन तैयार किए जाते हैं—प्रथम समबल लवण जल के साथ तथा दूसरा आयोडीन घोल के साथ। आयोडीन घोल में आयोडीन एक ग्राम, पोटास आयोडायड २ ग्राम तथा जल ३०० सी. सी. होता है। आयोडीन घोल को ल्यूगोल का आयोडीन घोल नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। यह घोल आवश्यकतानुसार थोड़ा ही तैयार किया जाना चाहिए। इमल्सन तैयार करने की आसान विधि यह है कि लगभग आधी मटर के बराबर मल लेकर स्लायड पर रख कर उस में समबल लवणजल या ल्यूगोल के आयोडीन घोल की कुछ बूंदे मिलाकर कांच की राड द्वारा या प्लेटीनम के तार द्वारा अच्छी प्रकार थोड़े स्थान

में फैला दी जाती है फिर कवरग्लास रख कर परीक्षा की जाती है। जीवाणुओं के लिए परीक्षा करते समय ग्राम विधि से भी रंजित किया जा सकता है।

प्रोटोजुआ—मल में बहुत से प्रोटोज़ुआ पाये जाते हैं जिनमें से बहुत से ऐसे होते हैं जो किसी भी प्रकार की विकृति उत्पन्न नहीं करते। विकृति उत्पन्न करने वाला प्रोटोज़ुआ एमीबा ही है। इसकी परीक्षा के लिए उपरोक्त विधि से ही मल लेकर प्लेटीनम तार से लालवर्ण म्यूकस का टुकड़ा और यदि यह न मिल सके तो मल का आधी मटर के बराबर अंश लेकर ही दो ग्लायडों पर या एक पर ही अलग अलग सम्बन्ध लवणजल तथा आयोडीन घोल से इमल्सन बनाकर परीक्षा की जानी चाहिए। आयोडीन मिला देने पर गतिशील अमीबा नहीं दिखाई पड़ सकता क्योंकि आयोडीन से उसकी मृत्यु हो जाती है किन्तु अमीबा सिस्ट विशेष प्रकार से रंजित हो जाता है। अमीबा या अमीबासिस्ट किसी का भी मिलना निश्चित निदान का द्योतक है। चिरकालीन स्वरूप की अवस्था में बहुधा अमीबा सिस्ट ही मिलते हैं।

विकृति उत्पादक अमीबा का पूरा नाम एण्टोमीबा हिस्टोलिटका है तथा अमीबा कोलाई[२] से, जो विकृति उत्पादक नहीं, इसका पृथक्करण आवश्यक है। यह पृथक्करण निम्नतालिका के आधार पर आसानी से किया जा सकता है—

एण्टोमीबा हिस्टोलिटिका (चित्र १८)

जब ये पाये जाते हैं काफी संख्या में पाये जाते हैं, बहुत गतिशील, एक्टोप्लाज्म को आसानी से पहचाना जा सकता है, एण्डोप्लाज्म साफ कणदार होता है तथा उसमें रक्त कण देखे जा सकते हैं। पतले उँगली सदृश मिथ्या पाद[३]।

एमीबाकोलाई (चित्र १६)

कभी-कभी आमातिसार की अवस्था में एकाध पाया जाता है, विशेष गतिशील नहीं तथा मिथ्यापाद मोटे होते हैं, एक्टोप्लाज्म स्पष्ट नहीं होता। एण्डोप्लाज़्म में कणों की अधिकता होती है तथा रक्तकण नहीं होते।

1. Entamoeba Histolytica 2. Amoeba coli 3 Pseudopodis.

केन्द्र विशेष स्पष्ट नहीं होता। यदि रंजित किया जाय तो क्रोमेटिन कम दिखाई पड़ता है।

सिस्ट—आवरण पतला तथा चार केन्द्र क्रोमेटिड बोडीज़ बड़े तथा संख्या में अधिक।

केन्द्र बड़ा तथा स्पष्ट देखा जा सकता है। आकार गोल या अण्डाकार।

सिस्ट—आवरण कुछ मोटा, गोलाकार या अण्डाकार, केन्द्र आठ, क्रोमेटिड बोडीज़ संख्या तथा आकार में कम।

एमीबिक आमातिसार का बेसिलरी आमातिसार से पृथक्करण भी नितान्त आवश्यक है। इस को भी संक्षेप में निम्न तालिका के रूप में दिया जा सकता है—

बेसिलरी आमातिसार

रक्तकणों के आकार में कोई भी परिवर्तन नहीं होता। यूसुनो फायल तथा पायक्नोटिक सैलों की अनुपस्थिति। चारकोटलीडन क्रस्टल भी नहीं पाये जा सकते। पोलीमोर्फ़न्यूक्लीयर भी अधिक संख्या में पाये जाते हैं।

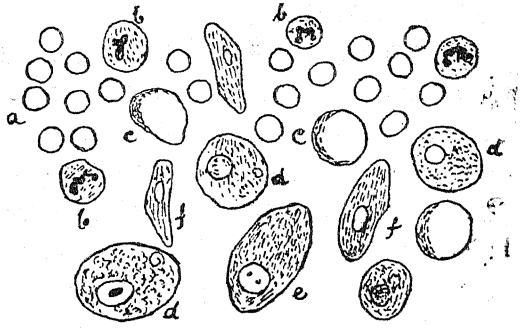

चित्र २०।

एमीबिक आमातिसार

अमीबा, अमीबासिस्ट तथा चार कोटलीडन क्रस्टल की उपस्थिति। रक्तकणों का इकट्ठा होना तथा आकार में विकृत हो जाना। पोलीमोर्फ न्यूक्लीअर, मेक्रोफेज तथा

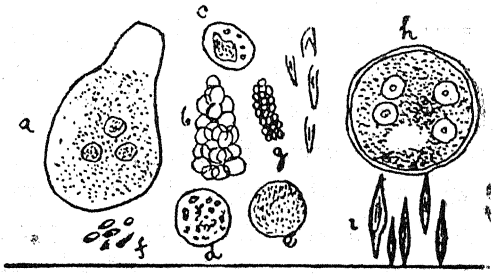

चित्र २१।

आन्त्रिक जीवकोषों की कमी। पायक्नोटिक सैलों तथा ३ यूसुनो फायल्स की अधिकता। रोग की तीव्रता घटने पर अमीबासिस्ट तथा चारकोट लीडन क्रस्टल्स मिलने लगते हैं। चित्र २१

नोट—बेसीलरी आमातिसार की सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा में मेक्रोफेल सेल पाये जाते हैं जिनके अन्तर्गत एक दो रक्तकण भी दिखाई दे सकते हैं। इनको मृतप्राय अमीबा समझा जा सकता है जिसकी गतियाँ बन्द हो गई हों, किन्तु ध्यान रखना चाहिए कि रंजन किये जाने पर मेक्रोफेज सेल रंजित हो जाती हैं जब कि अमीबा रंजित नहीं होते।

कृमि—कृमि बहुत प्रकार के होते हैं किन्तु इस स्थान पर केवल उन्हीं का वर्णन किया जायगा जो चिकित्सा की दृष्टि से महत्त्व के हैं। किसी व्यक्ति के कृमि से पीड़ित होने का निश्चय निदान मल में स्वतः कृमि, कृमि के लार्वा या ओबा देख कर ही किया जाता है।

यदि स्वतः कृमि को मल में देखना हो तो रात्रि को रोगी को विरेचक औषधि दे देना अच्छा है। प्रातः काल के मल को एक ६० नम्बर की चलनी में रख-कर पानी डाला जाता है। पानी डालने से मल का अधिकांश भाग चलनी में हो कर नीचे निकल जाता है तथा अन्न के बिना पचे कुछ अंश तथा कृमि यदि हों तो ऊपर रह जाते हैं। चलनी में इस बचे हुए भाग को किसी रंगीन कांच की या श्वेत काच की प्याली में रखने के बाद प्याली को काले कागज पर रख कर के भली प्रकार परीक्षा की जाती है। वृहद्दर्शक काच[1] की सहायता ली जा सकती है।

ओवा के लिए मल की सूक्ष्मदर्शक की सहायता से परीक्षा करने के लिए अच्छा हो यदि कोई विरेचन औषधि न दी जाय क्योंकि मल जितना ही ठोस होगा ओवा मिलने की उतनी ही सम्भावना अधिक रहेगी। इस उद्देश्य से निम्न विधियों द्वारा मल की परीक्षा की जा सकती है—

१.—सामान्य विधि थोड़े पानी की सहायता से एक काचपट्ट[2] पर मल का हलका प्रलेप[3] बनाओ। यह प्रलेप इतना पतला होना चाहिए कि उसमें हो कर पुस्तक के अक्षरों को पढ़ा जा सके। कुल प्रलेप क्षेत्र की सूक्ष्म दर्शक की हलकी शक्ति द्वारा परीक्षा करो। यदि ओवा क्लार्वा अधिक संख्या में होंगे तो स्पष्ट दिलाई पड़ने लगेंगे। यदि अधिक शक्ति द्वारा परीक्षा करना आवश्यक हो तो प्रलेप पर कवरग्लास रख कर पुनः देखो।

1. Magnifying lens 2. Slide 3. Smear.

मेकवेल की विधि[1]—काचपट्ट पर मल के पानी के साथ पहले की अपेक्षा कुछ मोटा प्रलेप बनायें तथा पांच मिनट के लिए छोड़ दें। इसके बाद काचपट्ट को थोड़े पानी के अन्दर डुबा दें। पानी में डुबाने से काचपट्ट के तल पर लगे व्यर्थ कण तथा रेशे आदि घुलकर अलग हो जायेंगे किन्तु चोवा लगे रहेंगे। सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करें।

विलिस की परीक्षा[2]—लगभग आधी औंस के एक टिन पात्र में आधी ग्राम के लगभग मल लेकर नमक के संतप्त घोल में उसका इमल्सन तयार करें। घोल बूंद बूंद डाला जाना चाहिए तथा उसको एक कांच की राड से हिलाते रहना चाहिए। इसी घोल से टिन पात्र को लबालब भर दें। अब एक साफ स्लायड लेकर बर्तन के मुख पर ढक दें ताकि वह घोल को छूती रहे तथा उसको ५–१० मिनट तक वहीं बनी रहने दें। इसके बाद स्लायड को उठायें तथा शीघ्र सावधानी के साथ उसको उलटा कर दें ताकि लगे हुए द्रव की बूंदें गिर न जायँ। सूक्ष्म दर्शक द्वारा द्रव के ऊपरी तलपर फोकस करते हुए परीक्षा करें। अधिकांश कृमि ओवा नमक के संतप्त घोल के ऊपर हलके होने के कारण तैर आते हैं तथा उनको स्लायड पर देखा जा सकता है।

इस स्थल पर एक बात सदैव ध्यान रखना चाहिए कि मल में ओवा का न पाया जाना इस बात का परिचायक नहीं कि रोगी कृमियों से पीड़ित नहीं। बहुत कुछ सम्भावना इस बात की है कि मल में ओवा न आ पाये हों। इस दृष्टि से मल की बार बार परीक्षा की जा सकती है।

चिकित्सा की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण कृमि निम्न होते हैं :—

1. Mcvail's Method 2. Willis method.

नाम	निवास स्थान	वर्णन	ओवा	लक्षण
१ टीनिया सोलियम (Tenia Solium Or Park Tapeworm स्फीत कृमि,	क्षुद्र आँत	युवा कृमि की लम्बाई ८–१२ फीट, सिर की मोटाई आल्पीन के शिर के बराबर, शिर पहले गोल तथा ऊपर चलकर कुछ चौकोर होता है जिसके ऊपर छत्र के समान एक अंग लगा रहता है। छत्र के साथ २६ अंकुश तथा ४ चूषक लगे रहते हैं। सिर के पश्चात् पतली ग्रीवा और बाद में शरीर जो लगभग ८०० पर्वों का बना होता है। (चित्र २३)	गोल, ३०–४० म्यू मोटे, मध्य में अधिक काले तथा मोटे कोषयुक्त होते हैं। कोष में चक्र के आरे के समान रेखाएं होती हैं तथा पूर्ण अण्डे के बीच में ६ अंकुश रहते हैं।	आन्त्रशूल, अतिसार तथा विबन्ध पर्याय क्रम से भूख का बढ़ जाना तथा रक्ताल्पता

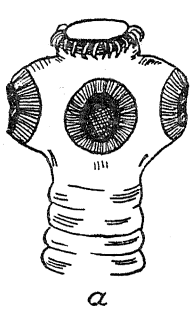

चित्र नं० २२–स्फीत कृमि का शिर ३०
गुना दर्शित (वर्णन पृ० ६१ पर)

चित्र नं० २३–टीनिया साजीनाटा
का शिर १० गुना दर्शित
(वर्णन पृ० ६५ पर)

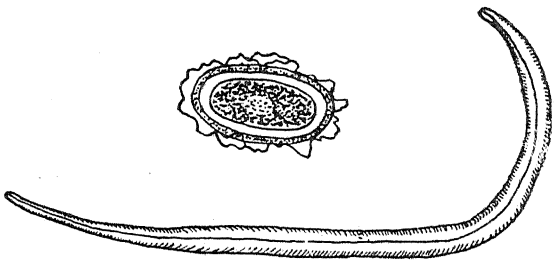

चित्र नं० २४—कृमि का
शिर १० गुना दर्शित
(वर्णन पृ० ६५ पर)

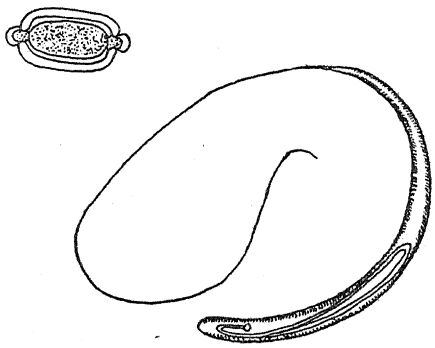

चित्र नं० २५–कृमि मुक्ति कारी एक
औषध (वर्णन पृ० ६५ पर)

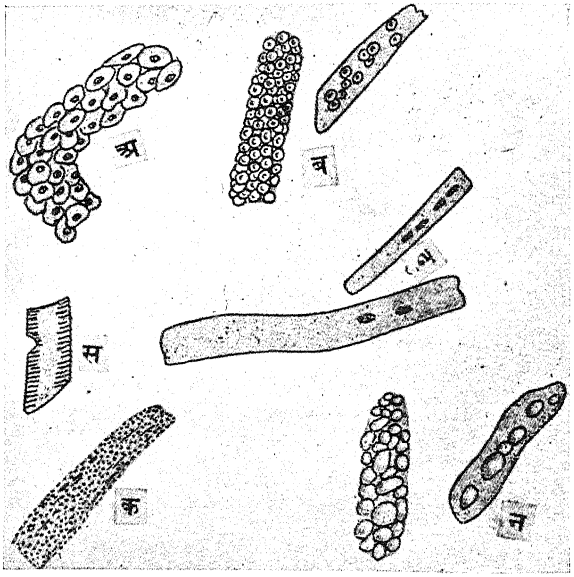

चित्र नं० १४–भिन्न भिन्न प्रकार के मूत्र निर्भोक(वर्णन पृ० ४६ पर)

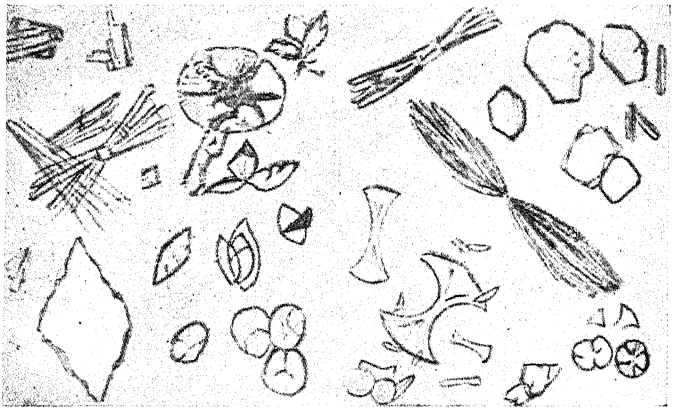

चित्र नं० १३–अ–सल्फाथियाजोल के कण । ब–सल्फापारीडिन के कण ।
(वर्णन पृ० ४७ पर)

नाम	निवास स्थान	वर्णन	ओवा	लक्षण
२. टीनिया साजीनाटा Taenia Saginata Beef Tapeworm स्फीत कृमि	२ क्षुद्र आन्त्र	२ टिनिया सोलियम के समान किन्तु उससे कुछ अधिक लम्बा (१०-२५ फुट) सिर छोटा, चोकोर बिना छत्र एवं अंकुश के। चार चूषक होते हैं। शरीर में पर्वों की संख्या लगभग २००० (चित्र २३)	२ टीनिया सोलियम की तरह ही किन्तु उससे कुछ छोटे मोटे तथा गोलाकार न होकर अण्डाकार	२ टीनिया सोलियम की तरह
3 Ascaris Lumbicoides Round worm केंचुए की बीमारी	३ क्षुद्र आन्त्र	३ पीतवर्ण। पुरुष कृमि ५-८ इंच लम्बा पूंछ टेढ़ी, स्त्री-कृमि ७-१४ इंच लम्बी पूंछ सीधी। (चित्र २४)	३ आकार ७० × ५० म्यू गोल अथवा अण्डाकार बाहर से गांठदार। पित्त से रंजित	३ इसके लक्षण बहुत तथा भिन्न भिन्न होते हैं जो अन्य चिकित्सा पुस्तक में देखे जाने चाहिए।
4 Trichuris Trichiura Whip worm प्रतोद कृमि	४ क्षुद्र आन्त्र का अन्तिम भाग स्थूलान्त्र तथा आन्त्रपुच्छ की कला	४ पुरुष कृमि लगभग २ इंच लम्बा चाबुक की तरह, स्त्री कृमि लगभग २½ इंच सीधा (चित्र २५)	४ आकार ५० × २५ म्यू अण्डाकार तथा गांठदार सिके, बादामी रंग	४ कभी कभी आन्त्र पुच्छ शोथ रक्ताल्पता बहुत कम आन्त्र शोथ तथा वातिक लक्षण

नाम	निवासस्थान	वर्णन	ओवा	लक्षण
5 Enterobiasis Thread worm तन्तुकृमि	५ क्षुद्र आन्त्र का अन्तिम भाग, स्थूलान्त्र में भी पहुँच जाता है	५ पुरुष कृमि $\frac{1}{2}$ इंच लम्बी, थोथी, गोल तथा कंटकयुक्त पूंछ स्त्री कृमि $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा पतली तथा नोकदार पूंछ सूत के धागे के सदृश सफेद वर्ण।	५ अण्डाकार, वर्णहीन, तस्तरी के समान जो एक ओर चमटे तथा दूसरी ओर उन्नतोदर, पतला कोष	५ आन्त्रशोक (अधिक संख्या में) होने पर। मलाशय, गुदा तथा भग प्रदेश (स्त्रियों) का क्षोभ जिसके कारण खुजली रहती है।
6 Ancylo starms duodenale Hook worm अंकुश मुखकृमि	६ क्षुद्र आन्त्र	६ गोल, लम्बा, श्वेत का धूसर वर्ण या कुछ पीला सा। पुरुष कृमि लगभग $\frac{1}{3}$ इंच लम्बा तथा स्त्री कृमि $\frac{1}{2}$ इंच लम्बा। मुख भाग नोकीला होता है जिसमें अंकुश तथा दांत होते हैं जिनकी सहायता से आतों की दला से यह चिपटा रहता है। पिछला भाग मोटा तथा थोथा, पुरुष कृमि का पिछला भाग छत्र के समान थोड़ा (चित्र २६)	६ आकार अण्डाकार ६०×४० म्यू। पतला कोष तथा चार भागों में विभक्त	६ सुस्ती, अग्नि की मन्दता, धीमा धीमा उदरशूल, हलका ज्वर, रक्ताल्पता तथा दुर्बलता एवं क्षीणता

जीवाणु—भिन्न-भिन्न जीवाणुओं की परीक्षा के लिए मल लेने के दो घंटे के अन्तर्गत ही उसकी परीक्षा कर ली जानी चाहिए। प्रत्येक पदार्थ की जीवाणु-संबंधी परीक्षा सप्तम अध्याय में दी गई है। मल में निम्न जीवाणु पाये जा सकते हैं—

(१) **कोलाई विभाग**[1]—यह जीवाणु स्वस्थावस्था के मल में भी पाया जा सकता है। कभी कभी बच्चों में इसके कारण अतिसार उत्पन्न होते भी देखा गया है। ध्यान रखना चाहिए कि यह जीवाणु मूत्र मार्ग में बहुधा विकृति का उत्पादक समझा जाता है। उदर में फोड़ों का उठना तथा आन्त्रपुच्छ शोथ बहुधा इसी के कारण होता है।

(२) **सेल्मोनेला विभाग**[2]—*अ-बी पैरा टायफायड*[3]—आन्त्रज्वर के सदृश हलका सतत ज्वर[4] इस के कारण आ जाया करता है—उपान्त्र ज्वर। कभी कभी आमाशयान्त्रिक शोथ तथा कामला का भी यह जीवाणु कारण बन जाता है।

कभी कभी बी. मोर्गन नं० १ तथा बी. एण्टराटायडिस भी देखे जा सकते हैं जो अतिसार अथवा आमातिसार के उत्पादक हो सकते हैं।

(३) **टायफायड विभाग**[5]—*बी. टायफासस*[6]—यह आन्त्रज्वर-टायफायडका उत्पादक जीवाणु है। रोग के प्रथम सप्ताह में जीवाणु रक्त में पाया जाता है किन्तु २-४ सप्ताह में मल में भी देखा जा सकता है। कभी कभी रोग के अन्तिम समय में मूत्र में भी यह मिल सकता है। इस जीवाणु के कारण पित्ताशय शोक की भी उत्पत्ति होती देखी गई है।

बी. डिसेंटरी[7]—इसी के अन्तर्गत शिगा, फ्लेक्सनर, स्मिट्ज़ तथा सोने विभाग के आमातिसार जीवाणु भी आते हैं। बेसीलरी आमातिसार का उत्पादक यही जीवाणु है। इसके कारण बालातिसार की भी उत्पत्ति हो सकती है।

बी. एल्कलीजेंस[8]—ये कभी कभी रक्त में भी पाये जाते हैं तथा इनके द्वारा उत्पन्न रोग के लक्षण लगभग टायफायड से मिलते जुलते हैं किन्तु उसकी अपेक्षा बहुत ही मृदु स्वरूप के रहते हैं।

---

1. Colo group 2. Salmonella group 3. Paretyphoid 4. Continuous. 5. Typhoid group 6. B. Typhosus 7. B. Dysenteree 8. B. Alkaligenes

(४) **कोमा बैसीलस**[1]—यह विशूचिका (हैजा) का जीवाणु है जो हैजा से पीड़ित व्यक्ति के मल में पाया जाता है। इसका आकार कामा (,) के सदृश अथवा S के समान होता है।

(५) एण्टरोकोकाई तथा हीमोलायटिक स्ट्रप्टोकोकाई भी मल में पाये जा सकते हैं तथा कभी कभी विद्रधि, सन्धि शोथ, वृक्क शोथ, श्वास या रक्ताल्पता के कारण होते हैं। आन्त्रज्वर, उपान्त्रज्वर, अमीबिक या बेसिलरी आमातिसार की अवस्था में मिश्र उपसर्ग के रूप में इनकी उपस्थिति भी सम्भव है।

अध्याय-चतुर्थ

श्लेष्मा-परीक्षा

श्वास मार्ग में विशेष प्रकार की ग्रन्थियाँ रहती हैं जिनके द्वारा इतना स्राव निर्मित होता रहता है जिससे श्वास मार्ग शुष्क न पड़ने पावे। प्राकृतावस्था में यह स्राव इतना कभी भी नहीं हो पाता कि उसको श्लेष्मा[2] (थूक या कफ) के रूप में बाहर निकालना पड़े। किन्तु श्वास मार्ग के प्रत्येक रोग में इसकी मात्रा बढ़ जाती है तथा खांसी के साथ ही साथ उसको बाहर निकालना आवश्यक होता है। इस श्लेष्मा की परीक्षा द्वारा श्वास मार्ग के रोगों की प्रकृति निर्णय करने में भी बहुत कुछ सहायता मिलती है।

श्लेष्मा की परीक्षा भी भौतिक रासायनिक तथा सूक्ष्म दर्शक की सहायता से की जा सकती है। भौतिक परीक्षा में कफ की प्रकृति, मात्रा, रचना, वर्ण एवं पारदर्शकता तथा गन्ध देखी जाती है। रासायनिक परीक्षा कफ में एल्ब्यूमिन की उपस्थिति या अनुपस्थिति के लिए की जाती है। सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करके कफ के अन्तर्गत विभिन्न जीवाणु तथा कुछ अन्य बातें देखी जाती हैं।

1. Comme Bacilli 2. Sputum.

भौतिक परीक्षा

प्रकृति[1]—इस दृष्टि से श्लेष्मा निम्न चार प्रकार का हो सकता है :—

जलसदृश[2]—पानी के सदृश बिलकुल पतला झागदार काफ़ी मात्रा में कफ निकलता है जो कभी कभी थोड़ी मात्रा में रक्त रहने के कारण लाल लाल भी हो जा सकता है। इस प्रकार की अवस्था फुफ्फुसगत द्रव संचय[3] की अवस्था में होती है। द्रव संचय होने के कारण रोगी अच्छी प्रकार सांस नहीं ले सकता तथा खाँसी के साथ बहुत आसानी से साबुन के झाग के समान काफी कफ निकलता है।

रसस्रावात्मक[4]—श्वास नलिका शोथ[5] की प्रारम्भिक अवस्था में बहुधा इसी प्रकार का कफ निकलता है जो मात्रा में थोड़ा चिपचिपा, दृढ़ तथा गाढ़ा एवं साफ होता है। श्वास नलिका शोथ पुराना पड़ जाने पर कफ में पूय के अंश भी आने लगते हैं। उस अवस्था में कफ की मात्रा बढ़ जाती है। यह इतना दृढ़ भी नहीं रहता तथा कुछ हरा पीला वर्ण हो जाता है।

सपूय रसस्रावात्मक[6]—इस प्रकार का कफ जिसमें म्यूकस के साथ ही साथ पूय के अंश भी मिले रहते हैं फुफ्फुस के कई भिन्न भिन्न विकारों में पाया जा सकता है। क्षय रोग की अवस्था में जब फुफ्फुस में विवर उत्पन्न हो जाते हैं तब कफ में म्यूकस एवं पूय के अंश आसानी से देखे जा सकते हैं। यदि इस प्रकार के कफ में जल सदृश अंश की अधिकता हो तो थोड़ी देर तक रखा रहने पर वह तीन स्तरों में विभक्त हो जायगा। सब से नीचे पूय के अंश उसके ऊपर, जल सदृश कफ तथा सबके ऊपर झागदार कफ रहेगा। श्वास नलिका विस्फार[7] की अवस्था में इसी प्रकार का कफ देखा जाता है।

श्वास-मार्ग के निकट की पूय श्वास मार्ग में आ जाने पर, जैसा कि सपूय फुफ्फुसावरण शोथ की अवस्था में हो सकता है, कफ में पूय की मात्रा बहुत बढ़ जाती है, यहाँ तक कि कफ में पूय ही पूय दिखाई पड़ती है।

रक्तिम कफ—इससे तात्पर्य रक्तमिश्रित कफ से है। कभी कभी यह भी हो सकता है कि केवल रक्त ही रक्त आवे। इस प्रकार की स्थिति में इस बात का

1. Nature 2. Serous 3. Pulmonary Oedems 4. Mucous 5. Bronchitis 6. Muco-purulent 7. Bronchiectasis.

निश्चित करना नितान्त आवश्यक है कि रक्त पचन संस्थान से आ रहा है अथवा श्वसन-संस्थान से पचन-संस्थान से रक्त आने की अवस्था का नाम रक्तवमन[1] तथा श्वसन-संस्थान से रक्त आने की अवस्था का नाम रक्तष्ठीवन[2] है। यह भी हो सकता है कि नासा से होनेवाला रक्तस्राव या दन्तवेष्टों[3]—मसूड़ों—से होने वाला रक्तस्राव मुंह में भी संचित होकर मुखमार्ग से बाहर निकला हो। पचन-संस्थान से आने वाला रक्तस्राव आमाशयिक व्रण तथा अन्न मार्ग की शिराओं से हो सकता है। पचन-संस्थान से आनेवाले रक्त के साथ जी मिचलाता है तथा शुद्ध लाल रंग का रक्त निकलता है।

श्वास मार्ग से आने वाला रक्तस्राव क्षय रोग में जब कोई रक्तनलिका फट गई हो, श्वास नलिका विस्फार तथा फुफ्फुस का कैंसर आदि अवस्थाओं में हो सकता है। श्वास मार्ग से आनेवाले रक्तस्राव के सम्बन्ध में एक बात यह भी ध्यान में रखनी चाहिए कि फुफ्फुस के रोग के अन्य लक्षण भी अवश्य ही मिलते हैं तथा दो चार दिन बाद तक कफ के साथ भी रक्त आता रहता है।

मात्रा—यद्यपि इस प्रकार का कोई विधान नहीं कि २४ घंटे में निकले हुए कफ की कुल मात्रा नापी जाती हो फिर भी इस बात का साधारण अनुमान लगाने से कि कितनी मात्रा में कफ निकलता है रोग का निदान तथा फुफ्फुसों की अवस्था समझने में बहुत कुछ सहायता मिलती है। इस सम्बन्ध में यह जानना भी आवश्यक है कि कफ आसानी से निकलता है अथवा नहीं तथा किसी विशेष आसन में लेटने या बैठने से कास तथा कफ के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है। क्षय की अवस्था में विवर उत्पन्न हो जाने पर रोगी को विकृत पार्श्व की ओर लेटने से अधिक कास तथा कफ आता है जब कि फुफ्फुसावरण शोथ की अवस्था में विकृत पार्श्व पर लेटने से रोगी को आराम मिलता है।

कफ के वर्ण आदि के सम्बन्ध में निम्न सांकेतिक दिग्दर्शन पर्याप्त होगा।

जंगसदृश, लालिमायुक्त, कालारंग,[4] कम मात्रा तथा चिपचिपा-निमोनिया

पतला म्यूकस मिश्रित—तीव्र श्वास नलिका शोथ[5]

सपूय रस स्रावात्मक—फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा, श्वासनलिका विस्फार

1. Haematemesis 2. Haemoptysis 3. Gums 4. Rusty 5. Acute Bronchites.

पतला लालिमा युक्त बादामी—यकृत विद्रधि की अवस्था में यदि वह फुफ्फुस में फूट गई हो।

पीला पीबयुक्त—उरः पूय[1] या अन्य स्थान की विद्रधि जो फुफ्फुस में फूट गई हो।

रक्तवर्ण जैली सदृश—फुफ्फुसीय कैंसर आदि।

रक्तवर्ण पतला कफ—प्लेग, फुफ्फुस का कैंसर और कभी कभी निमोनिया।

कालाकफ—कोयलों की खान में काम करनेवालों का धुंआ युक्त वायुमण्डल में अधिक समय तक रहने के कारण।

गन्ध—सामान्यतया कफ में किसी प्रकार की गन्ध नहीं आती किन्तु विद्रधि, कोथ,[2] लिवर तथा श्वासनलिका विस्फार की अवस्था में गन्ध भी आ सकती है।

रचना—लगभग प्रत्येक अवस्था में कफ एकरस[3] होता है तथा रक्खा रहने पर भी भिन्न भिन्न स्तरों में विभक्त नहीं हो जाता, किन्तु कोथ, विवर, श्वासनलिका विस्फार की अवस्था में बहुधा रक्खा रहने पर तीन स्तरों में विभक्त हो जाता है। सब से नीचे पूय के अंश रहते हैं जो जम जाया करते हैं।

रासायनिक परीक्षा

सामान्यतया कफ की रासायनिक परीक्षा नहीं की जाती। कभी-कभी विशेष अवस्थाओं में एल्ब्यूमिन के लिए इस परीक्षा की आवश्यकता पड़ जाती है। ताजा स्पूटम के १० सी० सी० लिए जाते हैं किन्तु यह ध्यान रखना चाहिए कि इसके साथ में लाला (थूक)[4] न मिल जाय। इसमें १० सी० सी० ही पानी तथा म्यूसिन[5] घोल देने के लिए एसोटिक एसिड के ३ प्रतिशत घोल के २ सी० सी० मिला दिये जाते हैं। अब मूत्र परीक्षा में वर्णित किसी विधि से एल्ब्यूमिन के लिए परीक्षा की जाती है। फुफ्फुसीय राजयक्ष्मा, कभी-कभी निमोनिया तथा सद्रव फुफ्फुसावरण शोथ की अवस्था में कफ में एल्ब्यूमिन पाई जाती है।

1. Empyema 2. Gangrene 3. Homogeneous 4. Saliva 5. Degeneration.

सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा

कफ की सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा कफ परीक्षा का प्रधान अंग है जो बहुधा क्षय जीवाणुओं को देखने के लिए की जाती है। कफ में इन क्षय जीवाणुओं का पाया जाना क्षय का निश्चयकर लक्षण समझा जाना चाहिए। इसके अतिरिक्त कुछ अन्य पदार्थ तथा जीवाणु भी देखे जा सकते हैं। सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा करने के लिए प्रथम ताजी कफ का कुछ अंश बिना रंजित किये ही देखा जाना चाहिए। इस के बाद विभिन्न विधियों से जैसा कि अध्याय सात में वर्णन किया गया है कफ को रंजित करके जीवाणुओं के लिए परीक्षा की जा सकती है। कफ के म्यूकसयुक्त गाढ़े स्राव में जिसको कि परीक्षा की जानी चाहिए निम्न भाग पाये जा सकते हैं—

१. **पूय जीवकोष**—जो विघटन[1] की भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में देखी जा सकती हैं।

२. **रक्तकण**—कफ में दो चार रक्तकणों का पाया जाना कोई महत्त्व का नहीं किन्तु अधिक संख्या में ये कण रक्तष्ठीव के द्योतक हैं।

३. **यूसोनोफायल**—श्वास की अवस्था में रक्त में देखे जा सकते हैं।

४. **एपीथीलियम**—मुख, वायुनलिकाएं अथवा वायुकोषों[1] से आया हुआ हो सकता है।

५. **एलास्टिक फायबर—*लचकीले तन्तु***—कफ में इनका उपस्थित होना इस बात का परिचायक है कि फुफ्फुस के अंश नष्ट होते जा रहे हैं जैसा कि क्षय, विद्रधि या शोथ की अवस्था में हो सकता है।

कफ की जीवाण्वात्मक परीक्षा का वर्णन आगे किया जायगा।

---

1. Alveoli

अध्याय पंचम

रक्त-परीक्षा

पूर्ण युवा व्यक्ति के शरीरमें लगभग १५ पौंड रक्त रहता है। रक्त जीवन के लिए नितान्त आवश्यक है क्योंकि शरीर के भिन्न भिन्न अवयवों को पोषण आदि की दृष्टि से एक दूसरे के सम्पर्क में रखने वाला यह प्रधान वाहक है जो फुफ्फुसों से आक्सीजन तथा पचन संस्थान से पोषक तत्त्वों को लेकर शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों तक पहुँचाता है तथा उन में उत्पन्न अनावश्यक पदार्थों को लाकर कार्बन डायओक्सायड के रूप में फुफ्फुसों द्वारा तथा अन्य रासायनिक पदार्थों के रूप में मूत्र मार्ग द्वारा मूत्र के रूप में या चर्म द्वारा पसीने के रूप में बाहर निकालता है। जीवित अंग एवं मृत अंग में एक प्रधान अन्तर यही है कि जीवित अंग में रक्त का संचार होते रहने के कारण उसको पोषक पदार्थ मिलते तथा अनावश्यक पदार्थ वहाँ से अलग होते रहते हैं। शरीर के प्रधान संचालन केन्द्र मष्तिष्क में यदि रक्त का संचार कुछ क्षणों के लिए भी बन्द हो जाय तो शरीर का नाश निश्चित है। इस के अतिरिक्त रक्त के कुछ घटक ऐसे भी होते हैं जो रोगोत्पादक जीवाणु आदि बाहरी आक्रमणकारियों से शरीर की रक्षा करने के लिए प्रतिक्षण तैयार रहते हैं तथा हर सम्भव उपाय द्वारा शरीर की रक्षा करने का प्रयत्न करते हैं।

ध्यान पूर्वक देखने से विदित होगा कि यह रक्त द्रव पदार्थ—रक्त, रस लसीका, या प्लाज्मा एवं रक्तकणों से मिलकर बना है। १०० भाग रक्त में ६०-६५ भाग रक्त रस तथा ३०-३५ भाग रक्त कण रहते हैं। रक्त कणों के अलावा कुछ आवश्यक रासायनिक प्रदार्थ भी रक्त रस में घुले रहते हैं। रक्तकण प्रधानतः दो प्रकार के होते हैं। यथा, लालकण एवं श्वेतकण। इनके अलावा कुछ प्लेटलेट और भी शामिल रहते हैं।

लालकण—इनको आगे चल कर कई स्थलों पर रक्तकण भी सम्बोधित किया गया है । इनका निर्माण अस्थि मज्जा[1] से होता है । अस्थि में प्रवेश करने पर पोषक धमनी कई एक दूसरे से सम्बधित गुहाओं[2] में विभाजित हो जाती है, गुहाओं की भित्तिका अन्तःकला से आच्छादित रहती हैं । यही रक्त निर्माण के स्थान हैं। रक्त निर्माण के समय अन्तःकला फूल जाती है तथा जीवकोष लालकण निर्माण करने के लिए विभाजित होने लगते हैं। ये जीवकोष लालकण बनने के लिए क्रमशः मेगेलोब्लास्ट,[3] इर्थोब्लास्ट[4], नोर्मोब्लास्ट,[5] प्रारम्भिक रक्तकण या रेटीक्युलोसायट[6] तथा पूर्ण रक्तकण या अर्थोसायट[7] नाम से सम्बोधित अवस्थाओं में होकर गुजरते हैं। मेलोब्लास्ट अन्तःकलीय कोषों[8] से निर्मित होते हैं तथा उनमें रक्त रंग[9] की भी किंचित् मात्रा होती है। ज्यों-ज्यों ये वृद्धि को प्राप्त होते जाते हैं रंग पदार्थ की मात्रा बढ़ती जाती है, जीवकोष का कण नष्ट होता जाता है तथा वह क्रमशः रक्तकण के आकार का बनता जाता है। अपूर्ण रक्तकण चिपचिपे होते हैं तथा एक दूसरे से चिपके रहते हैं । पूर्ण हो जाने पर वे अलग अलग हो जाते हैं तथा प्लाज्मा के अन्दर प्रवेश कर शिराओं में होकर उन सबको रक्तप्रवाह में पहुँचा देते हैं ।

प्राकृत अवस्था में अस्थि मज्जा में नोर्मोब्लास्ट के रूप में असंख्य लालकण रहते हैं, बहुत कम मिगोब्लास्ट या अर्थोब्लास्ट भी हो सकते हैं । दूरस्थ रक्तप्रवाह में केवल पूर्ण रक्तकणों का आकार भिन्न भिन्न हो सकता है । कुछ बहुत छोटे मायक्रोसायट[10] तथा कुछ बहुत बड़े तेगेलोसायट[11] जिसका व्यास क्रमशः ४ तथा ११ म्यू होता है देखे जा सकते हैं । कुछ का आकार ही विकृत होता है जिन को पोयदिलोसायट[12] कहते हैं ।

लाल कणों का आकार रुपये पैसे के सदृश गोल होता है किन्तु दोनों ओर मध्य में गहरे तथा किनारों पर होने के कारण इनको उभय नतोदर[13] कहा जाता है । इनकी परिधि $\frac{१}{३२००}$ इंच होती है तथा मोटाई इसकी $\frac{१}{४}$ रहती है । इन

1. Bone marrow 2. Intercommunicating sunusoids 3. Megaloblast 4. Erythro blast 5. Normoblast 6. Reticulocyte 7. Erythrocyte 8. Endothelial cells 9. Haemoglobin. 10. Microcyte 11. Megalocyte 12. Poikilocyte 13. Concave

जीवकोषों के अन्दर कोई केन्द्र नहीं होता। यदि एक कण को अलग से देखा जाय तो वह कुछ पीला सा मालूम पड़ेगा किन्तु सबको मिला कर देखने पर वे लाल ही दिखाते हैं। यह लाल रंग इन के अन्तर्गत रक्त रंग हिमोग्लोबिन के ऊपर निर्भर करता है। होमोग्लोबिन की यह विशेषता है कि वह फुफ्फुसों में पहुँचने पर कार्बन डायआक्सायड छोड़ कर आक्सीजन देकर कार्बन डाय-आक्सायड ले लेता है। लाल कणों का प्रधान कार्ब ओक्सीजन के फुफ्फुसों से अंगों तक ले जाना तथा कार्बन डायआक्सायड को अंगों से लाकर फुफ्फुसों के मार्ग से बाहर निकालना है।

श्वेत कण—इन को तीन भानों में बाँटा जा सकता है यथा—

(१) ग्रेन्यूलो सायट[1]—इनका निर्माण भी अस्थिमज्जा में ही होता है तथा ये तीन प्रकार के होते हैं न्यूट्रोफिल[2] यूसुनोफिल[3] तथा बेसोफिल[4]। प्राकृता-वस्था में रक्त के अन्तर्गत ५०–६० प्रतिशत न्यूट्रोफिल, १–४ प्रतिशत युसुनोफिल तथा ½–१ प्रतिशत बेसोफिल रहते हैं।

(२) लिम्फोसायट[5]—इनका निर्माण शरीर की लसी का धातु में ही अर्थात् लसिका ग्रन्थियाँ, गल ग्रन्थियां[6] प्लीहा, थायमस आदि में होता है। ये भी ह्रस्व लिम्फोसायट एवं दीर्घ लिम्फोसायट इस प्रकार दो तरह के होते हैं। प्रथम १५–२५ प्रतिशत तथा द्वितीय ५–१५ प्रतिशत रहते हैं। रोग—लसीकाणु स्वेत कण वृद्धि[7] की अवस्था में इनका निर्माण अस्थिमज्जा में भी होने लगता है।

(३) मोनो सायट[8]—इनका निर्माण भी अस्थिमज्जा में ही होता है तथा ये रक्त में ४–६ प्रतिशत पाये जाते हैं। श्वेताणुओं का प्रधान कार्य रोगों से शरीर की रक्षा करना है।

रक्तप्लेट लेट[9]

रक्त कण या रक्ताणुओं की तरह इनका भी अस्थिमज्जा से ही निर्माण होता है। आकार में ये रक्त कण के ⅓ (२–३ म्यू) होते हैं तथा रक्त में इनकी संख्या २½ – ४ लाख प्रति सी० सी० होती है। जब किसी स्थान से रक्त

1. Gramlscyte 2 Neutrophil 3 Eosinophil 4 Basophil 5 Lyphocyte 6 Tensils 7 Lymphatic Leukaemie. 8. Monocyte 9. Blood plateletes.

निकलता है तो रक्त प्लेट लेटों में विघटन की क्रिया होकर ओम्बोकायनेज की उत्पत्ति होती है जिससे रक्त जम जाता है। इनका प्रधान कार्य रक्त नलिकाओं में टूट फूट रोकना तथा रक्त को जमाना है।

इस प्रकार रक्त रचना सम्बन्धी उपरोक्त संक्षिप्त वर्णन में हमने देखा कि रक्त में विभिन्न रासायनिक पदार्थों के घुले हुए होने के अलावा रक्त कण, श्वेत कण तथा रक्त प्लेट लेट होते हैं। अतः रक्त परीक्षा का वर्णन भी निम्न शीर्षकों के अन्दर किया जायगा—

१. रासायनिक परीक्षा—यह परीक्षा रक्त में भिन्न भिन्न लवणों की मात्रा जानने के लिए की जाती है।

२. कण परीक्षा—इस में रक्त कण, श्वेत कण तथा रक्त प्लेट लेटों की संख्या, आकार आदि सम्बन्धी परीक्षा की जाती है।

३. जीवाण्वात्मक परीक्षा—जिसमें रक्त में कुछ खास खास जीवाणुओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति का निर्णय किया जाता है। तथा—

४. कुछ विशिष्ट परीक्षाएं

रक्त की रासायनिक परीक्षा

आपेक्षिक घनत्व—यद्यपि यह रासायनिक परीक्षा नहीं भौतिक परीक्षा है फिर भी इसका इसी शीर्षकके अन्तर्गत वर्णन किया जा रहा है। रक्त के आपेक्षिक घनत्त्व[1] नापने की आवश्यकता प्रायः विशूचिका में पड़ जाती है क्योंकि आपेक्षिक घनत्त्व के आधार पर ही नमक जल देने की राशि निश्चित की जाती है। छः अलग अलग परख नलियों में अलग अलग क्रमशः १०५४, १०५६, १०५८, १०६०, १०६२, तथा १०६४ आपेक्षिक घनत्त्व का ग्लेसरीन एवं पानी का मिश्रण लिया जाता है। इस के बाद रोगी की उँगली में शूत्री वेध कर के अपने आप बिना दबाए निकलने वाली पहली बूंद को साफ कर के बाद का रक्त एक केश नलिका[2] में लेकर उसी की सहायता से प्रत्येक परख नली में धीरे से एक एक बूंद डाल दिया जाता है। रक्त का आपेक्षिक घनत्त्व जिस घोल के आपेक्षिक घनत्त्व से अधिक होगा उसमें वह डूब जायगा तथा जिस से कम होना उसमें वह

1. Relative Density 2. Capillary Tube.

तैरता रहेगा। जिस घोल में एक दो सेकिंड ऊपर रह कर धीरे धीरे बाद में डूबने लगता है उसी के आपेक्षिक घनत्व के बराबर रक्त का आपेक्षिक घनत्व माना जाता है।

प्रकृतितः रक्त का आपेक्षिक घनत्व १०५४–१०५६ होना चाहिए। वमन तथा अतिसार की अवस्था में रक्त का जलीयांश कम हो जाने से यह बढ़ जाता है तथा कई प्रकार की रक्ताल्पता में घट जाता है।

रक्त में पाये जाने वाले भिन्न भिन्न लवण—रक्त की रासायनिक परीक्षा के लिए रोगी की शिरा से १०–१५ सी० सी० रक्त लेकर पोटेशियम ओग्सलेट के कुछ कण मिला कर उसे परीक्षार्थ भेज दिया जाता है जहाँ उसकी निम्न पदार्थों के लिए परीक्षा की जा सकती है। ये पदार्थ एक स्वस्थ भारतीय के रक्त में निम्न हिसाब से मिलीग्राम प्रति १०० सी० सी० रक्त में पाए जाते हैं।

शर्करा (अनाहार)	...	८०–१२०
सीरम एल्ब्यूमिन (Serum Albumin)	...	४·५–५·३ प्रतिशत
सीरम ग्लोब्यूलिन (Serum Globulin)	...	१·८–२·७ ,,
यूरिया ...	...	१५–३० (औसत २२·५)
नान् प्रोटीन नायट्रोजन (Nonprotein Nitrogen)		१८–३५ (,, २५·५)
क्रीएटिनीन (Creatinin)	...	१–१·५ (,, १·२)
यूरिक एसिड (Uric Acid)	...	१·९८–३·५६(,, २·०२)
कोलेस्टरोल (Cholesterol)	...	९०–१५० (,, ११९·३)
क्लोरायड (Chlorides)	...	५१८–६७०(,, ५९३·५)
केल्सियम (Calecium)	...	८·९–१०·२ (,, ९·६)
फोस्फेट (Phosphates)	...	२–२·५ (,, २·२)
कार्बन डाय आक्सायड शोषण शक्ति[1]	...	५३–७७ प्रतिशत्।

इनमें से कोलेस्टरोल तथा क्लोरायड प्रधानतः हायड्रीमिक पेरेंकायमेटस नेफ्रायटिस[2] की अवस्था में बढ़ जाते हैं। मूत्र विषमता[3] की अवस्था में दूसरे

1. Co_2 absorbing power 2. Hydraemic parenchymatons Nephrites
3. Uraemia

लवण भी वृक्कों द्वारा उत्सर्गित न हो सकने के कारण रक्त में बढ़ जाते हैं। इनका विशेष महत्व चिरकालीन वृक्क शोथ[1] की अवस्था में हैं।

क्रीएटिनीन सब के बाद में रुकता है अतः रक्त के अन्दर इसका अधिक मात्रा में होना रोग की भयंकरता का द्योतक है। ४ मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. से अधिक मात्रा रोग की असम्भवता की सूचक है।

चिरकालीन वृक्कशोथ में केल्सियम घटते तथा फोस्फेट बढ़ जाते हैं। मूत्र विषमता की अवस्था में कार्बनडाय ओक्सायड शोषण-शक्ति भी घट जाती है।

शरीर से अधिक जलीयांश निकलने, प्रोटीन युक्त अधिक भोजन लेने या उदर की भीषण अवस्था में रक्त के अन्तर्गत यूरिया की मात्रा बढ़ जाती है। वृक्कशोथ की अवस्था में भी इस मात्रा का बढ़ जाना अवश्यम्भाव्य है। ध्यान रखना चाहिए कि रक्त में यूरिया की मात्रा अधिक होना तथा मूत्र में कम होना ही इस बात का परिचायक है कि वृक्कों में खराबी है। रक्त में यूरिया की मात्रा अधिक होने के साथ ही साथ यदि मूत्र में भी उसका उत्सर्ग बढ़ जाता है तो समझना चाहिए कि यूरिया की मात्रा जो किसी कारण बढ़ गई थी स्वस्थ वृक्कों द्वारा उत्सर्गित की जा रही है। गाउट, वृक्कशोथ, शोफ या ल्यूकेमिया में रक्त में यूरिक एसिड की मात्रा बढ़ जाती है।

घातक रक्ताल्पता[2] तथा कुष्ठ की अवस्था में रक्त के अन्तर्गत कोलेस्टरोल की मात्रा घटती एवं हायड्रोमिक वृक्कशोथ, गर्भ, घातक अर्बुद, मधुमेह, धमनी-दाढ्य[3], अवरोधक कामला[4] आदि की अवस्था में बढ़ जाती है।

वाण्डेन वर्ग परीक्षा[5]—रक्त रंग की टूट फूट होकर उससे बिलीरूबिन[6] का निर्माण होता है जो एक प्रोटीन से मिलकर हिमो बिलीस्यूबिन[7] के रूप में रक्तरस के साथ भ्रमण करता रहता है। यकृत द्वारा यह हीमोबिलीस्यूबिन कोली बिलीस्यूबिन[8] के रूप में परिवर्तित कर दी जाती है। पित्ताशय से निकलने वाले

1. Chronic Interstitial nephritis 2. Pernicious Anacmis 3. Arterisch-erosis 4. Obstrectire gaundice. 5. Vanden Bergh's rcaction 6. Bilirubin 7. Haemobilirubin 8. Choli bilirubin

कोली बिलीरूबिन युक्त पित्त को यदि एहर्लिच[1] के डियाज़ो रिएजेण्ट से मिलाया जाय तो शीघ्र ही जामुनी[2] वर्ण उत्पन्न हो जाता है। अवरोधक कामला[3] की अवस्था में पित्त रक्त में ही पुनः शोषित होता रहता है अतः अवरोधक कामला से पीड़ित व्यक्ति के रक्त-रस को यदि उसी रिएजेण्ट से मिलाया जाय तब भी यही क्रिया होती है अर्थात् दोनों के मिलाने पर जामुनी वर्ण उत्पन्न हो जाता है क्योंकि कोली बिलीरूबिन युक्त पित्त रक्त में ही मिला रहता है। किन्तु यदि किसी स्वस्थ रक्तकण नाश जन्य कामला[4] से पीड़ित व्यक्ति के रक्त-रस को इस प्रकार मिलाया जाय तो इस प्रकार की क्रिया नहीं उत्पन्न हो सकती जब तक कि उसी में हीमो बिलोरूबिन प्रोटीन को अवक्षेपित करने के लिए एल्कोहल और न मिलाया जाय।

वाएडेन बर्ग परीक्षा का यही सिद्धान्त है तथा इसका प्रयोग प्रधानतया कामला का प्रकार निश्चित करने के लिए किया जाता है।

परीक्षा के लिए साधारणतया ५–१० सी. सी. रक्त एक परखनली में लिया जाता है तथा उसमें थोड़ा पोटेसियम ओक्सेलेट डालकर हिला देते हैं ताकि रक्त जमने न पावे।

सेण्ट्रीफ्यूज करने के बाद रक्त रस परीक्षा के लिए ले लिया जाता है।

आवश्यक सामान–१. एहर्लिच का रिएजेण्ट–अ–सल्फनिलिक एसिड १ ग्राम

नमक का तेज़ाब शुद्ध–१५ सी.सी.

परिश्रुत जल १०० सी. सी.

ब–सेडियम नायट्रायट ०·५ ग्राम

परिश्रुत जल १०० सी. सी.

उपरोक्त दोनों 'अ', 'ब' घोल को अलग अलग बना कर रख दिया जाता है; दोनों को मिलाकर नहीं रखा जा सकता क्योंकि मिलाकर रखने से खराब हो जा सकते हैं। प्रयोग के समय 'अ' घोल का २५ सी. सी. तथा 'ब' घोल का $\frac{3}{4}$ सी. सी. मिलना चाहिए।

२. कुछ साधारण परख नलियाँ

३. शुद्ध एल्कोहल (९० प्रतिशत)

1 Ehrlich's 2 Purple 3 Obstructive gaundice 4. Haemolytic geaundice

४. एक चिह्नित १ सी. सी. पिपट

५. सेण्ट्रीफ्यूज मशीन तथा नलिकाएँ।

एक परखनली में एक सी. सी. रक्तरस जिसकी कि परीक्षा करनी है ले लिया जाता है तथा उसमें $\frac{१}{२}$ सी. सी. रिएजेण्ट मिला देते हैं। अब निम्न तीन में से कोई भी स्थिति बन सकती है।

अ—तत्क्षण प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया[1]—दोनों के मिलाते मिलाते नील लोहित[2] वर्ण की उत्पत्ति हो जाती है जो आधा से एक मिनट के अन्दर अन्दर पूर्ण हो जाती है। रंग की गहराई रक्त रस में उपस्थित बिलीस्यूबिन की मात्रा पर निर्भर करती है। इस प्रकार की प्रतिक्रिया स्पष्टतः अवरोधक कामला की परिचायक है।

ब—विलम्बित प्रतिक्रिया[3]—यह प्रतिक्रिया २-१५ मिनट या इस से भी देर से प्रारम्भ होती है, वर्ण लाल सा पड़ जाता है जो धीरे धीरे अधिक लोहित होता जाता है।

स—द्विअर्थी प्रतिक्रिया[4]—रक्त रस तथा रिएजेण्ट के मिलाते ही लाल रंग उत्पन्न हो जाता है जो धीरे धीरे ५-१५ लोहित होता जाता है।

ब तथा स दोनों ही प्रतिक्रियायें इस बात की द्योतक हैं कि कामला यकृत शोथ (विषजन्य या औषसर्गिक)[5] के कारण उत्पन्न हुई है किन्तु इनका कोई विशेष महत्त्व नहीं।

अप्रत्यक्ष परीक्षा[6]—इस के द्वारा रक्त के अन्तर्गत हीमो बिलीस्यूबिन की मात्रा का अनुमान लगया जाता है। यदि रक्त रस एवं रिएजेण्ट युक्त परखनली में २०-२५ मिनट के अन्तर्गत भी कोई प्रतिक्रिया नहीं होती तो उस में एमोनिया सल्फेट के संतृप्त घोल का एक सी. सी. तथा शुद्ध एल्कोहल का २ $\frac{१}{२}$ सी. सी. और मिलाओ। अब सेण्ट्रीफ्यूज करने के पश्चात् ऊपर के द्रव को एक प्याली में निकाल लो। उस द्रव के रंग की शुद्ध कोबल्ट सल्फेट घोल (२.१६ ग्राम १०० सी. सी. जल में) के वर्ण के साथ तुलना करनी है जो वर्णमापक[7] की सहायता

1. Immediate direct reaction 2. Blue-violet. 3. Delayed reaction 4. Bi-phasis reaction 5. Toxic or infective hepatitis 6. Indircet Test 7. Colorianeter

से की जानी चाहिए। कोबल्ट मिश्रण को १० मिली मीटर की दूरी पर रक्खा जाता है। अब उसके मुकाबिले में परीक्ष्य घोल को रख कर देखा जाता है कि कितनी दूरी पर रखना आवश्यक है। मान लो क दूरी पर रखना आवश्यक है तो $\frac{१०}{क}$ = मिली ग्राम बिलीस्यूबिन प्रति १०० सी. सी.।

प्रकृतितः रक्तरस में ०–$\frac{१}{२}$ मिलीग्राम बिलीस्यूबिन प्रति १०० सी. सी. के प्रमाण में रहती है। $\frac{१}{२}$ से २$\frac{१}{२}$ मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. पाये जाने का अर्थ गुप्त कामला है अर्थात् कामला जो प्रत्यक्ष नेत्रों से नहीं देखी जा सकती। यदि प्रत्यक्ष प्रतिक्रिया के अभाव में अप्रत्यक्ष प्रतिक्रिया द्वारा परीक्षा करने पर २$\frac{१}{२}$ मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. से अधिक बिलीस्यूबिन की मात्रा मिले तो रक्त-नाशजन्य कामला (घातक रक्ताल्पता यकोल्यूरिक कामला) समझना चाहिए।

शर्करा सह्यता परीक्षा[1]—वानडेन वर्ग परीक्षा द्वारा यकृत की कार्यक्षमता तथा कामला के प्रकार का अनुमान लगाया जाता है तो शर्करासह्यता परीक्षा द्वारा अग्न्याशय[2] की कार्यक्षमता का अनुमान लगाया जाता है। दूसरे शब्दों में हम इसको इस प्रकार भी कह सकते हैं कि इस परीक्षा द्वारा यह देखा जाता है कि रोगी के अन्दर कार्बोहाइड्रेट का रसपाक[3] करने की कितनी शक्ति है।

प्रथम दिन शाम को रोगी को कुछ भी भोजन नहीं दिया जाता। दूसरे दिन उसका रक्तशर्करा[4] का अनुमान लगाने के लिए लिया जाता है तथा मूत्र भी ले लिया जाता है। इसके बाद ही उसको ५० ग्राम ग्लूकोज़ जल में मिलाकर पिला देते हैं। इस के $\frac{३}{४}$ घंटे तथा २ घंटे पश्चात् रक्त, रक्तशर्करा देखने तथा मूत्र शर्करा देखने के लिए ले लिया जाता है।

स्वस्थावस्था में अनाहारकालीन रक्त शर्करा[5] ८-१२० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. होनी चाहिए। $\frac{३}{४}$ घंटे पश्चात् लिये गये रक्त में यह १३०-१८० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. तक हो सकती है। दो घंटे पश्चात् लिये गये रक्त में यह मात्रा फिर प्राकृतिक ही होनी चाहिए क्योंकि इतने समय में शरीर द्वारा सम्पूर्ण शर्करा प्रयुक्त कर ली जाती है। मूत्र में शर्करा होनी ही नहीं

1. Glucose Tolerance Test 2. Pancreas 3. Metabolise 4. Blood sugar. 5. Fasting Blood sugar

चाहिए क्यों कि रक्तशर्करा जब १८० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. से भी अधिक हो जाती है तभी मूत्र में आती है अन्यथा नहीं। १८० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. शर्करा वृक्क शक्ति के अन्तर्गत[1] कही जाती है क्योंकि इतनी शर्करा तक को वृक्क रक्त में रख सकते हैं। यदि रक्तशर्करा उपरोक्त शर्करा सीमाओं के अन्दर ही रहती है किन्तु फिर भी मूत्र में शर्करा आती है। इसका अर्थ वृक्क-दुर्बलता है। इस स्थिति में मूत्र शर्करा आने को वृक्कीय इक्षु मेह[2] मधुमेह कहना चाहिए।

इक्षु मेह की अवस्था में अग्न्याशय के अन्तः स्राव[3] इन्स्यूलिन[4] की कमी हो जाने के कारण रक्तशर्करा की मात्रा भी बढ़ जाती है। अनाहार कालीन रक्त शर्करा की मात्रा भी १२० से बहुत अधिक २००, ३०० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. हो जाती है। ग्लूकोज़ देने के पश्चात् भी वह अपनी पूर्वावस्था में नहीं आती। यदि रक्त शर्करा की एक बार की परीक्षा द्वारा ही मधुमेह का निर्णय करना हो तो ग्लूकोज़ देने के एक घंटे पश्चात् रक्त शर्करा नापने के लिए रक्त ले लिया जाना चाहिए। इस में २५० मिलीग्राम प्रति १०० सी. सी. से कुछ अधिक ही रक्त शर्करा मिलेगी।

नोट—भिन्न-भिन्न लवणों की मात्रा नापने के लिए रक्त की रसायनिक परीक्षा कुछ कठिन विषय है अतः इस स्थल पर उसकी ओर केवल संकेत किया गया है ताकि जब भी आवश्यकता हो तो रोगी इस प्रकार की परीक्षा के लिए उचित स्थान पर भेजा जा सके तथा परीक्षा की रिपोर्ट से रोग का अनुमान लगाया जा सके। इस के अतिरिक्त यह भी सत्य है कि चिकित्सा में इस परीक्षा की बहुत ही कम आवश्यकता पड़ा करती है, अतः परीक्षा-विधि का पूरा-पूरा वर्णन महत्वपूर्ण नहीं मालूम पड़ता।

1. Renal Taresh hold 2. or hormone 4. Insulin

रक्त कण-गणना

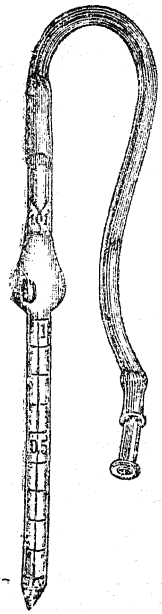

(चित्र संख्या २७) थोमाजिस विधि से रक्तकण-मापक पिपट

कई रोगों, विशेष कर रक्ताल्पता में इस बात की आवश्यकता पड़ जाया करती है कि एक सी० सी० रक्त में कितने रक्त कण हैं, इस बात का अनुमान लगाया जाय। यह थोमा जीस के रक्तकण मापक[1] की सहायता से सिया जाता है। इस रक्त कण मापक में एक विशेष प्रकार का पिपट (चित्र २७) तथा एक कण-गणना काचपट्ट[2] होता है।

ईथर से रोगी की उँगली का अन्तिम पोरवा या कर्ण पाली का निम्न शीर्ष[3] साफ कर दिया जाता है तथा सुखाने के बाद एक सुई से छेद देते हैं। यह ध्यान रहे कि धीरे धीरे न छेदा जाय बल्कि एक दम गहराई तक छेद दिया जाय ताकि स्वतः रक्त निकलने लगे। प्रथम आई हुई रक्त की बूंद को अलग कर दिया जाता है तथा बाद में आई हुई बूंद को पिपट में ·५ चिह्न तक खींच लिया जाता है। ध्यान रहे कि ठीक ·५ चिह्न तक ही लिया जाय कम या अधिक नहीं। साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि उँगली को दबा कर रक्त न निकाला जाय क्योंकि ऐसा करने से उस में जलीयांश अधिक आ जाने की सम्भावना है। यदि पिपटके शिरे पर कुछ रक्त लगा रह गया हो तो उसको अलग कर दें किन्तु यह ध्यान रहे कि पिपट में का रक्त ·५ चिन्ह से कम न हो जाय। अब तुरंत ही पिपट को मिश्रण द्रव[4] में डुबा दें तथा मिश्रण द्रव पिपट में १०१ चिह्न तक खींच लें। मिश्रण द्रव से तात्पर्य हेपर के द्रव से है जिस में सोडियम क्लोरायड १ ग्राम, सोडियम सल्फेट ५ ग्राम, कोरोसिव सब्लीयेट $\frac{1}{2}$ ग्राम तथा परिश्रुत जल २०० सी० सी० होना चाहिए।

1. Thoma-zeiss haemocytometer 2. Counting slide 3. Lobe of the ear 4. Diluting fluid

अब पिपट के दोनों शिरों को अंगूठे तथा तर्जनी उँगली से बन्द करके खूब हिलाया जाता है ताकि रक्त एवं मिश्रण द्रव भली प्रकार मिलकर एक रस हो जायं। चित्र में मिश्रण करते समय मिश्रण द्रव चूस कर भरने के लिए आवश्यक रबर की नली दिखाई गई है। वह अलग कर दी जाती है। इस प्रकार रक्त का यह १:२०० मिश्रण तयार हो जाता है। पिपेट में ५ चिह्न तक केवल मिश्रण द्रव ही रहेगा जिसे मिश्रण हो चुकने पर बाद में दो चार बूंद रक्त मिश्रण के साथ ही निकाल दिया जाता है। अब एक छोटी बूंद विशिष्ट काँच पट्ट के गणना क्षेत्र पर छोड़ दी जाती है (चित्र२८)

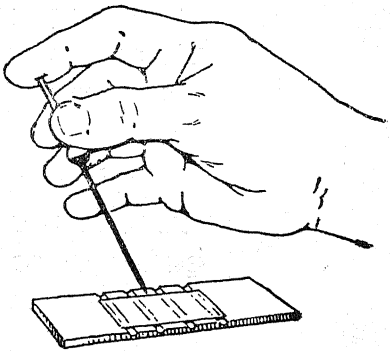

गणना पट पर बूंद छोड़ना (चित्र संख्या २८)

तथा सावधानी के साथ उस पर कवर ग्लास लगा कर काच पट्ट को २–३ मिनट के लिए शान्त छोड़ देते हैं ताकि रक्तकण स्थिर तथा सम्पूर्ण क्षेत्र में वितरित हो जायं। काचपट्ट के साथ ही एक विशेष प्रकार का कवर ग्लास आता है, उसी का प्रयोग करना चाहिए। साधारण कवर ग्लास का नहीं। कवर ग्लास रखते समय वायु का बुद्बुद् या अन्य बाह्य पदार्थ प्रवेश न कर जाय इस बात की भी सावधानी रखना नितान्त आवश्यक है। साथ ही रक्त मिश्रण इतना ही छोड़ना चाहिए कि वह गणना क्षेत्र को ठीक प्रकार भर दे यह नहीं हो कि कवर ग्लास रखते समय रक्त मिश्रण इधर उधर झलकता दिखाई पड़े। यदि वायु के बुद्बुद् या अन्य बाह्य पदार्थ कवर ग्लास के नीचे प्रवेश कर जाता है या रक्त मिश्रण कवर ग्लास लगाने पर इधर उधर फैलतादिखाई पड़ता है तो काचपट्ट को भली प्रकार साफ कर के फिर से रक्त मिश्रण डालकर कवर ग्लास रखना चाहिए।

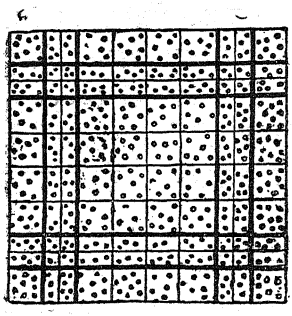

इसी स्थल पर गणना क्षेत्र का जो काचपट्ट के मध्य में ठीक प्रकार बनाया गया होता है वर्णन कर देना आवश्यक है। यह क्षेत्र १६ या २५ बड़े वर्गों में जो एक दूसरे दुहेरी रेखा से अलग होते हैं (चित्र २६) विभाजित होता है; अर्थात् चार-चार बड़े वर्गों की चार या पांच-पांच बड़े वर्गों की पांच पंक्तियाँ होती हैं। प्रत्येक बड़े वर्ग के अन्तर्गत १६ छोटे छोटे वर्ग होते हैं।

(चित्र संख्या २६) सूक्ष्म दर्शक द्वारा दर्शित गणना क्षेत्र

एक छोटे वर्ग का क्षेत्रफल $\frac{१}{४०}$ वर्ग मिलीमीटर होता है। कवर ग्लास रख देने पर इस क्षेत्र की गहराई $\frac{१}{१०}$ मीलीमीटर होती है और इस प्रकार छोटे वर्ग का घन फल $\frac{१}{४०} \times \frac{१}{१०} = \frac{१}{४००}$ घन मिली मीटर हुआ।

अब इस क्षेत्र को सूक्ष्म दर्शक द्वारा देखा जाता है। प्रथम हवा की शक्ति से देखकर इस बात का निश्चय किया जाता है कि कोई वायु बुद्बुद् अथवा अन्य बाह्य पदार्थ तो नहीं है तथा रक्त कण एक से फैले हुए हैं अथवा नहीं।

अब $\frac{१}{६}$ इञ्च ओब्जेक्टिव लगा कर रक्त कणों की गणना की जाती है। कम से कम चार बड़े वर्गों अर्थात् $१६ \times ४ = ६४$ छोटे वर्गों में वितरित रक्त कणों को गिना जाता है। रेखाओं पर पड़े हुए रक्तकणों को गिनते समय यह ध्यान रखना चाहिए कि ऊपर वाली तथा बांई ओर की रेखा पर पड़े कणों को गिन लिया जाय तथा नीचे या दांई ओर वाली रेखा पर पड़े कणों को छोड़ दिया जाय। गणना एक क्रम से की जानी चाहिए ताकि भूल न पड़ने पावे।

हिसाब लगाने की सुविधा के लिए पांच बड़े वर्गों अर्थात् $५ \times १६ = ८०$ छोटे वर्गों के रक्तकणों को गिन लिया जाता है। मान लो कि इतने वर्गों में कुल ४८० रक्तकण गिने गये हैं। एक छोटे वर्ग में $४८० \div ८० = ६$ रक्तकण हुए एक छोटे वर्गका घन फल १।४००० घन मिलीमीटर है अतः एक घन मिली मीटर में $४००० \times ६ = २४,०००$ रक्तकण हुए। यह अवस्था रक्त मिश्रण की

है जो २०० गुना हलका किया गया है। अतः एक घन मिलीमीटर रक्त में २४,०००×२००=४८,००००० रक्तकण हुए। इस प्रकार सामान्य नियम यह बना कि ५ बड़े वर्गों में पाई जाने वाली रक्तकणों की संख्या को १०००० से गुणा कर देना अर्थात् चार विन्दु बढ़ा देना चाहिए। यदि केवल चार वर्गों के रक्तकणों को ही गिना जाता है तो संख्या को १२५०० से गुणा करना आवश्यक होगा।

स्वस्थावस्था में रक्तकणों की संख्या मनुष्य में ५० लाख से ६५ लाख[1] औसत ५५ लाख प्रति घन मिली मीटर तथा स्त्री में ४० लाख से ५५ लाख औसतन ४८ लाख होती है। जन्म के समय यह संख्या ६० से ७० लाख तक होती है किन्तु प्रथम सप्ताह में ही गिरकर ४०–५० लाख तक हो जाती है। रंग निर्देशक[2] निकालने के लिए सुविधा की दृष्टि से यह संख्या ५० लाख मान ली जाती है। यह भी ध्यान रखना चाहिए कि गिनने में ५ लाख तक की गलती हो सकती है अतः दो बार की परीक्षा में ५ लाख या इससे कम का अन्तर होना कोई महत्त्व नहीं रखता। प्रत्येक गणना फल निकटतम ५ लाख तक लिखा जाना चाहिए।

रक्तकणों की वृद्धि व ह्रास—साधारणतया रक्तकण ५५ लाख प्रति घन मिलीमीटर के हिसाब से पाये जाते हैं। यह संख्या प्रायः रक्ताल्पता की अवस्था में घट जाती है।

यह संख्या बढ़ भी जा सकती है किन्तु यह बढ़ना दो प्रकार का हो सकता है–प्रथम तो क्षणिक[3] दूसरा स्थाई[4]। क्षणिक वृद्धि का कारण रक्त की मात्रा घट जाना है जैसा कि अधिक वमन, विरेचन आदि के कारण हो सकता है। स्पष्ट है कि इसमें रक्त की मात्रा तो घट जाती है किन्तु रक्तकणों की संख्या उतनी ही रहती है अतः प्रति घन मिलीमीटर रक्त में अधिक रक्तकण मालूम पड़ते हैं।

दूसरी रक्त निर्माणक अंग अस्थि मज्जा की वृद्धि है। यह अवस्था भी दो प्रकार की हो सकती है–प्रथम तो प्राथमिक जिसके कारणों का कोई पता नहीं

१. एक मिलियन=१० लाख, 2. Colour index 3. Temporary or relative 4. Permanent or absolute

लगाया जा सकता तथा दूसरी द्वितीयक जो आक्सीजन की कमी पूर्ति के लिए होती है। साधारणतया ऊँचाई पर चढ़ना, फुफ्फुसीय हृत्कपाटों की विकृति, फुफ्फुस का अर्बुद या श्वास रोग तथा सोमल, फास्फोरस या कार्बन मोनो आक्सायड द्वारा विष परिणाम इस प्रकार की रक्तकण वृद्धि के कारण हो सकते हैं।

श्वेत कण

श्वेत कणों की गणना भी थोमाज़ीस के रक्त मापक की सहायता से की जाती है। इसकी विधि भी ठीक रक्तकण गणना की तरह ही है। रक्तगणना पिपट के अतिरिक्त दूसरा पिपट होता है जिसमें ५ तक रक्त चूस लिया जाता है तथा ११ चिन्ह तक मिश्रण द्रव लिया जाता है। यह मिश्रण द्रव १०० सी. सी. जल में १ सी. सी. एसीटिक एसिड तथा थोड़ा सा मीथायल ग्रीन या जेंसियन वायलेट के जलीय घोल के मिलाने से तैयार होता है। इस मिश्रण द्रव की यह विशेषता है कि इसकी सहायता से सभी रक्तकण घुल जाते हैं तथा श्वेत कणों के केन्द्र रंजित हो जाते हैं।

श्वेत कण गणना पिपट में अधिक रक्त लेना आवश्यक होता है अतः बड़ी बूंद आ जाने पर ही रक्त चूसना प्रारम्भ करना चाहिए साथ ही यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रक्त भर चुकने के बाद पिपट को झुका दिया जाय क्योंकि रक्त के निकल जाने का भय है। मिश्रण द्रव लेने के बाद रक्त तथा मिश्रण द्रव को भली प्रकार ऊपर लिखी विधि से ही मिला लिया जाता है तथा उन सभी बातों का ध्यान रखते हुए जो रक्तकण गणना के सम्बन्ध में वर्णन की जा चुकी हैं एक बूंद मिश्रण गणना क्षेत्र पर छोड़ दिया जाता है। इसके बाद उसी विधि से श्वेत कणों की गणना की जाती है। पूरे गणना क्षेत्र के २५ या १६ वर्गों में के सभी श्वेतकण गिन लिए जाने चाहिए।

यदि २५ बड़े वर्गों की गणना की गई है तो इसमें कुल २५ × १६ = ४०० छोटे वर्ग हुए जिनका घन फल $४०० \times \frac{१}{४००} \times \frac{१}{१०} = \frac{१}{१०}$ घन मिली मीटर हुआ। रक्त का मिश्रण बीस गुना हलका किया गया है। इसलिये गणना में जो संख्या मिलती है एक घन मिली मीटर में सम्मिलित श्वेत कणों की संख्या

निकालने के लिए उसको २०×१० अर्थात् २०० से गुणा कर दिया जाना चाहिए। यदि २५ बड़े वर्गों में ५० श्वेतकण हुए तो प्रति घन मिलीमिटर ५०×२००=१०,००० श्वेत कण हुए अर्थात् गणना के अंकों को दुगना करके दो विन्दु और बढ़ा दिए। यदि १६ वर्गों में के श्वेतकण गिने गए हैं तो संख्या को ३१८·५ से गुणा करना आवश्यक होगा।

यह हो सकता है कि गणना को दो तीन बार कर के औसत फल निकाला जाय।

ल्यूकेमिया की अवस्था में जब श्वेतकणों की संख्या बहुत बढ़ जाती है रक्त कण तथा श्वेतकणों की गणना भी साथ ही साथ रक्तकण गणना बिधि से कर ली जाती है। इस अवस्था में मिश्रण द्रव के रूप में सोडा सायाट्रास का ३ प्रतिशत घोल जिस में थोड़ा जैंसियन वायलेट मिला दिया गया हो ठीक रहता है। इस में रक्त कण भी सुरक्षित बने रहते हैं तथा श्वेतकणों के केन्द्र भी रंजित हो जाते हैं। गणना कर चुकने पर हिसाब रक्तकण गणना विधि से ही लगाया जाता है अर्थात् पाँच बड़े बड़े वर्गों में पाई गई दोनों की संख्या को अलग अलग १००० से गुणा कर के फल निकाल लिया जाता है।

श्वेत कणों की संख्या का महत्त्व—प्रकृतितः श्वेत कणों की संख्या ३०००–१२००० प्रति घन मिलीमीटर होती है; बहुधा ६५०० श्वेत कण प्रति घन मिलीमीटर के हिसाब से एक युवा व्यक्ति के रक्त में पाये जाते हैं। प्रारम्भिक बाल्यावस्था में यह संख्या बहुत अधिक १०–१२ हजार तक होती है। संख्या बढ़ने को श्वेतकण वृद्धि[1] तथा घटने को श्वेतकण ह्रास[2] कहा जाता है।

श्वेतकण वृद्धि के कारण—भोजन के पश्चात् २,३ हजार प्रति घन मिलीमीटर संख्या बढ़ जाती है। गर्भावस्था के अन्तिम दिनों, रक्त स्राव या कठिन परिश्रम के पश्चात् भी संख्या बढ़ जाती है।

हर प्रकार के शोथ विशेष कर पूयोत्पादक जीवाणु जन्म के समय संख्या बढ़ जाती है। पूयोत्पत्ति के समय यह संख्या २५–४० हजार तक पहुँच सकती है। उदरावरण शोथ, निमोनिया, मस्तिष्क सुषुम्ना वरणशोथ, गल ग्रन्थि शोथ, गर्भाशय शोथ आदि की अवस्था में संख्या का बढ़ जाना निश्चित है।

1. Lencocytosis 2. Lencopenia

मूत्र विषमयता, मधुमेह जन्य सन्यास[1] शीश विष जन्य शूल[2], सन्धिवात[3] तथा दूसरे प्रकार की कुछ विषमता के कारण भी श्वेतकण वृद्धि हो सकती है।

अमीबाजन्य यकृत विद्रधि, यकृत का घातक अर्बुद, होजदिन का रोग[4], अस्थिमज्जा का घातक अर्बुद की अवस्था में भी ऐसा हो जाता है।

ल्यूकेमिया[5] जिस में लसीकाणुओं[6] की-सी खास प्रकार से वृद्धि होती है स्वतंत्ररूप से एक रोग है।

श्वेतकण ह्रास के कारण—कालाज़ार, घातक रक्ताल्पता,[7] बन्ती का रोग[8] में संख्या बहुत कम हो जाती है। मलेरिया, टायफायड, विस्फोटज्वर माता आदि की प्रारम्भिक अवस्था, इन्फ्लूएंजा, बेसीलरी आमातिसार, शीशा, सोमल, या पारद जन्य चिर कालीन विषमयता[9] व क्किरण या रेडियम का अधिक काल तक प्रयोग।

रक्त प्लेटलेट

इनकी गणना की सामान्य विधि यह है कि पहले उंगली या कर्णपालीशीर्ष को ईथर एवं स्पिरिट से साफ कर देते हैं तथा इस स्थान पर एक बड़ी सी बूंद सोडा साय्ट्रास के ३ प्रतिशत घोल की या मेग्नेसियम सल्फेट के १४ प्रतिशत घोल की छोड़ देते हैं ताकि रक्त सीधा इस घोल में ही निकले और जमने न पावे। इसके बाद सुई से उस स्थान पर छिद्र कर देते हैं। रक्त निकलने पर उसको लेटी-नम तार की सहायता से एक काच पट्ट पर ले लिया जाता है तथा कवर ग्लास लगा कर कवर ग्लास के किनारों पर वेसलीन लगा दिया जाता है। रक्त ठीक मात्रा में इतना ही लिया जाय कि वह कवर ग्लास के पूरे नीचे-नीचे फैल जाय अधिक न हो कि कवर ग्लास ही उस पर तैरने सा लगे। अब $\frac{1}{12}$ इंच ओयल इम्मर्सन द्वारा उसकी परीक्षा की जाती है तथा रक्ताणु तथा रक्तकण गिन लिये जाते हैं। इस प्रकार रक्ताणु तथार क्तकणों का पारस्परिक अनुपात निकाल लिया

1. Diabetic coma 2. Lead colic 3. Gout 4. Hodgikin's Disease 5. Lenkaemia 6. Lymphocytes 7. Pernicious Anaemia 8. Bant's Disease 9. Chronic Poisoning.

जाता है। इस अनुपात के आधार पर ही रक्तकणों की संख्या मालूम होने पर रक्ताणुओं की संख्या का भी हिसाब लगा लिया जाता है।

रक्ताणुसंख्या का महत्व—स्वस्थावस्था में रक्ताणुओं की संख्या २½ लाख से ५ लाख प्रति घन मिलीमीटर होती है तथा रक्ताणु एवं रक्तकणों का सम्बन्ध १:१८ होता है अर्थात् रक्तकण अठारह गुना होते हैं। रक्ताणुओं का प्रधान कार्य रक्त को जमा देना है अतः रक्ताणुह्रास[1] के कारण चर्म के नीचे या म्यूकस मेम्ब्रेन से रक्तस्राव की प्रवृत्ति हो सकती है। परप्यूरा रोग में इस प्रकार की स्थिति अवश्य ही पाई जाती है। इस रोग में रक्तस्राव की प्रवृत्ति होती है। रक्ताणु वृद्धि[2] के कारण रक्तनलिकान्तर्गत रक्तस्थापन[3] हो सकता है। यह अवस्था प्लीहा को अलग कर देने[4] के पश्चात् देखी जाती है।

रक्त रंग

यह पहले ही व्यक्त किया जा चुका है कि रक्त कणों के लालरंग का कारण यह रक्त रंग ही होता है जिसे हीमोग्लोबिन[5] नाम से सम्बोधित किया जाता है। यही पदार्थ है जो ओक्सीजन को लाने तथा कार्बनडाय आक्सायड को बाहर निकालने का कार्य करता है। रक्त के अन्तर्गत रक्तरंग कितनी मात्रा में है इसका अनुमान लगाने के लिए आधुनिक युग में फोटो एलेक्ट्रिक विधि की सहायता ली जाती है। इसके लिए साधारणतया निम्न विधि का सहारा लिया जा सकता है—

(१) टैलक्विस्ट की विधि[6]—इस विधि में रक्त की भिन्न भिन्न आभाओं से रंजित कागज होता है जिसको मापदण्ड[7] के रूप में लिया जाता है। रोगी की उँगली अथवा कर्णपानी शीर्ष को छेदित करके रक्त की बूंद निकाली जाती है। यहाँ भी ध्यान रहे कि रक्त दबाकर न निकाला जाय। इस रक्त की बूंद को मसीशोषक[8] (स्याही सोख्ता) के ऊपर ले लिया जाता है। यह स्याही सोख्ता भी विशेष प्रकार का ही होना चाहिए जो इस परीक्षा सम्बन्धी सारे सामान के साथ ही मिलता है। सूख जाने पर स्याही सोख्ता पर के रंग का

1. Turombocy to penia 2. Turombocytosis 3. Intravascular clotting 4. Splenactormy 5 Haemoglobin. 6. Tallquish's Method. 7. Standard 8. Blotting paper

रंजित मापदण्ड कागज से मुकाबिला किया जाता है। जिस आभा से यह रंग मिल जाता है उसके सामने ही अंकित रक्त रंग का प्रतिशत प्रमाण परीक्षित व्यक्ति के रक्त का प्रतिशत प्रमाण मान लिया जाना चाहिए। परीक्षा दिन के प्रकाश में ही करना ठीक है।

परीक्षा विशेष विश्वसनीय नहीं फिर भी बहुत सरल तथा साधारण होने के कारण रक्ताल्पता की चिकित्सा करते समय इस बात का अनुमान लगाने के लिए कि रोगी की अवस्था में कुछ सुधार हो रहा है अथवा नहीं प्रयुक्त की जा सकती है।

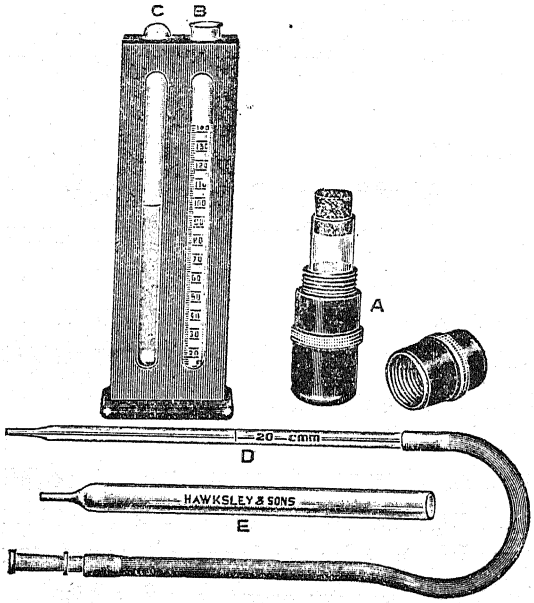

(चित्र सं० ३०) साहिली का रक्त रंग मापक।

(२) साहिली का रक्त रंग मापक[1]— उपर्युक्त की अपेक्षा यह अधिक विश्वसनीय है। खास प्रकार के पिपट (चित्र ३०) की सहायता से रोगी की उँगली या कर्ण पाली शीर्ष में से पूर्व वर्णित विधि से ही २० सेंटीमीटर चिह्न तक रक्त ले लिया जाता है। इसे रक्त को चिह्नित नली में छोड़ दिया जाता है। चिह्नित नली में १० चिह्न तक नमक के तेजाब का $\frac{N}{10}$ घोल पहले से ही ले लिया जाना चाहिए। पिपट का रक्त इस घोल में छोड़ने के साथ ही साथ पिपट

1. Sahli's Haemoglobinometer

को दो चार बार रक्त खींचकर और फिर निकाल निकाल कर इसी घोल में धो दिया जाता है। अब मापदण्ड[1] के साथ जो इस चिह्नित नली के साथ ही लगा होता है जैसा कि चित्र में दिखाया गया है परीक्षित रक्त के रंग की समानता करनी है। चिह्नित नली में थोड़ा थोड़ा पानी मिलाकर उसे काच की ठोस नली की सहायता से पानी भली प्रकार मिलाने के लिए हिलाते तथा माप दण्ड से मिलाते हैं। जब यह मालूम पड़ने लगे कि दोंनों का रंग एक सा मिल गया तभी वह अंक जहाँ तक कि चिह्नित नली में द्रव है देख लिया जाता है। यह अंक सीधा ही रक्त में के रक्त रंग के प्रतिशत प्रमाण का द्योतक होता है क्योंकि वह इसी आधार पर चिह्नित किया गया होता है। कुछ परीक्षक इस बात के पक्ष में हैं कि वह अंक जिस पर दोनों रंग मिलते दिखाई पड़ें देखने के पश्चात् थोड़ा और पानी मिलाकर वह अंक भी जिस पर कि दोनों रंग न मिलते हुए दिखाई पड़ें देखने चाहिए। दोनों का औसत परीक्षा फल माना जाना अधिक ठीक है।

फल लिखते समय प्रायः हीमोग्लोबिन का प्रतिशत प्रमाण लिख दिया जाता है जिसका तात्पर्य यह है कि मापदण्ड के स्वस्थ रक्त का इतने प्रतिशत हीमोग्लोबिन परीक्षित रक्त में है। किन्तु इस के साथ ही यह लिख देना भी नितान्त आवश्यक है कि प्रति १०० सी० सी० रक्त में कितने ग्राम रक्त रंग (हिमोग्लोबिन) है। प्रारम्भ में जो भी साहिली के रक्त रंग मापक आते थे उनमें लगे हुए चिह्नों का आधार १७·३ ग्राम रक्त रंग प्रति १०० सी० सी० रहता था किन्तु आधुनिक रंग मापकों में ये चिह्न १४·५ ग्राम प्रति १०० सी० सी० के आधार पर होते हैं। अतः ७५ प्रतिशत रक्त रंग का अर्थ है लगभग ११ ग्राम प्रति १०० सी० सी०। कभी कभी ग्राम प्रति १०० सी० सी ० में ही फल व्यक्त किया जाता है। फल लिखने से पहले प्रत्येक यंत्र के सम्बन्ध में यह भली प्रकार समझ लिया जाना चाहिए कि उसमें चिह्न किस आधार पर लगाये गये हैं।

रक्त रंग का ह्रास व वृद्धि—स्वस्थावस्था में हीमोग्लोबिन की मात्रा पुरुष में १४·५ ग्राम प्रति १०० सी० सी० तथा स्त्री में इस से कुछ कम हुआ करती है। आधुनिक समय के निर्मित साहिली यन्त्र में जिसका आधार १४·५ ग्राम

1. Standard.

प्रति १०० सी० सी० हो उसका अर्थ १०० प्रतिशत पुरुषों में तथा इससे कुछ कम स्त्रियों में हुआ। रक्त रंग का ह्रास प्रत्येक प्रकार की रक्ताल्पता में सम्भव है, किन्तु यह देखना भी रह जाता है कि रक्ताल्पता का कारण रक्त कणों में रक्त रंग की कमी है अथवा रक्त कणों की संख्या में ही कमी आ गई है। प्रथम प्रकार की अवस्था क्लोरोसिस तथा ह्रस्व रक्त कण रक्ताल्पता[1] में होती है जिसमें रक्त कणों की संख्या तो उतनी ही रहती हैं किन्तु उनमें रक्त रंग की कमी हो जाती है। इस प्रकार की रक्ताल्पता की चिकित्सा के लिए लौह के योगों का रोगी को सेवन करना आवश्यक है। दूसरे प्रकार की स्थिति घातक रक्ताल्पता[2] में होती है जिसमें रक्त कणों की संख्या में ही कमी आ जाती है, यद्यपि अलग-अलग रक्तकणों में रक्त रंग की मात्रा कम नहीं हो जाती।

रक्त रंग निदर्शक[3]—रक्तरंग के प्रतिशत प्रमाण तथा रक्त कण गणना के आधार पर रक्त रंग निदर्शक का हिसाब लगाया जा सकता है जिसका अर्थ है कि एक स्वस्थ रक्त कण के अनुपात में परीक्षित रक्त कण में रक्त रंग की मात्रा कितनी है। इसके लिये—

$$\text{रक्त रंग निदर्शक} = \frac{\text{रक्त रंग का प्रतिशत प्रमाण}}{\text{रक्त कण गणना स्वस्थावस्था की संख्या की प्रतिशत}}$$

इसके लिए स्वस्थावस्था की रक्त कण गणना ५०,००,००० मानी जाती है। अब मान लीजिये रक्त रंग ६० प्रतिशत तथा रक्त कण गणना ४०,००,००० है तो रक्त रंग निदर्शक $= \frac{६०}{८०} = ·७५$ हुई। नीचे के ८० का अर्थ है कि ४० लाख रक्तकण गणना ५० लाख स्वस्थावस्था की रक्त कण गणना का ८० प्रतिशत है।

सामान्य नियम यह हुआ कि रक्त कण गणना के प्रथम दो अंकों को दूना करके उससे रक्त रंग के प्रतिशत प्रमाण को विभाजित कर दे।

स्वस्थावस्था का रंग निदर्शक १ माना जाता है किन्तु ·८५ से १·१५ तक को भी अप्राकृत नहीं कह सकते। साधारणतया रक्तरंग निदर्शक के आधार पर रक्ताल्पता को तीन भागों में बाँटा जा सकता है। घातक या उसी तरह की दूसरी रक्ताल्पता में रक्तरंग निदर्शक एक से अधिक, अधिक रक्तस्राव जन्य रक्ताल्पता में

1. Microcytic Anaemia 2. Pernicious anaemia 3. Colour index.

रक्तरंग निदर्शक एक तथा लौह की कमी के कारण उत्पन्न रक्ताल्पता में रंग निदर्शक एक से कम रहता है। ध्यान रखना चाहिए कि रक्तरंग का निर्माण ही लौह से होता है अतः प्रथम अवस्था का अर्थ यह हुआ कि रक्तकणों की कमी है रक्तकणों में रक्त रंग की कमी नहीं। दूसरी अवस्था का अर्थ यह हुआ कि शरीर के पूर्ण रक्त की मात्रा में कमी आ गई है अन्यथा प्रति घन मिलीमीटर रक्तकणों की संख्या उतनी ही है तथा प्रत्येक रक्तकण में रक्तरंग भी कम नहीं। तृतीय अवस्था का अर्थ यह हुआ कि रक्तकणों की संख्या उतनी ही होते हुए भी प्रत्येक रक्तकण में रक्तरंग की कमी है।

रक्त परीक्षा के सम्बन्ध में उपर्युक्त आधारों पर कुछ अन्य आवश्यक फल भी निकाले जाते हैं यथा—

(१) संघटित रक्तकणों का आयतन[1]—इसका अर्थ है कि यदि रक्तकणों को एक ही स्थल पर संघटित कर दिया जाय तो उनका आयतन कुल रक्त के आयतन का कितना प्रतिशत होगा। परीक्षा का सिद्धांत यह है कि बिना जमे हुए रक्त को लेकर एक काचनली में सेण्ट्रफ्यूज किया जाता है ताकि वे एक एक निश्चित स्थाई आयतन तक संघटित हो जाय। संघटित किये गये इन रक्त-कणों का आयतन लिये गये कुल रक्त के आयतन के प्रतिशत के रूप लिखा जाता है।

रोगी की शिरा में से ५ सी. सी. रक्त एक नली में लिया जाता है। नली में ४ मिलीग्राम पोटेसियम ओक्सेलेट तथा ६ मिलीग्राम एमोनियम ओक्सेलेट डाल देना चाहिए ताकि रक्त जमने न पावे तथा रक्तकण भी संकुचित न हो सकें। अब एक विशेष प्रकार की विण्ट्रोब का हिमेटोक्रिट ट्यूब[2] लेकर उसमें १०० चिह्न तक यह रक्त केवलरी पिपट की सहायता से भर देते हैं। इस को २५०० चक्र प्रति मिनट की गति से ३० मिनट तक सेण्ट्रीफ्यूज किया जाता है। इसके बाद क्योंकि रक्त १०० चिह्न तक लिया गया था अतः अब जिस चिह्न तक रक्तकण हैं उसीको सीधा प्रतिशत प्रमाण के रूप में लिया जाना चाहिए। मान लें कि इस प्रकार केन्द्रित[3] किये जाने के कारण संघटित रक्तकण ५० चिह्न पर हैं तो इसका अर्थ U. P. C. =५० प्रतिशत हुआ।

1. Volume of packed cells (U. P. C.) 2. Wintrobe's Haematocrit Tube 3. Centrifuge

इसके बाद रक्तकण गणना दस लक्ष प्रति घन मिलीमीटर, रक्तरंग ग्राम प्रति १०० सी. सी. तथा संघटित रक्तकणों का आयतन मालूम होने पर निम्न फल और भी निकाले जा सकते हैं—

(२) औसतन प्रति रक्तकण रक्तरंग की[1] मात्रा—

$$\text{M. C. H. मायक्रो मायक्रो ग्राम (} \gamma\gamma \text{)} = \frac{\text{रक्त रंग प्रति १००० सी. सी. रक्त}}{\text{रक्त कण दसलक्ष प्रति घन मिलीमीटर}}$$

(३) औसतन प्रति रक्तकण का आयतन[2]—

$$\text{M. C. V. (घनम्यू)} = \frac{\text{१०० ° सी. सी. रक्त में संघटित रक्तकणों का आयतन}}{\text{रक्त कण दसलक्ष प्रति घन मिलीमीटर}}$$

(४) औसतन प्रति रक्त कण रक्तरङ्ग संचय[3]—

$$\text{M. C. H. C.\%} = \frac{\text{रक्तरंग ग्राम प्रति १०० सी. सी.}}{\text{प्रति १०० घनमिलीमीटर में संघटित रक्त कणों का आयतन}}$$

उपरोक्त फलों में से अन्तिम दो अधिक महत्त्व के हैं। यदि M. C. V. ९४ घनम्यू से अधिक है तो रक्ताल्पता दीर्घ रक्तकणीय[4], यदि ७८ एवं ९४ घनम्यू के मध्य में है तो स्वस्थाकार रक्तकणीय[5] तथा यदि ७८ घनम्यू से भी कम है तो ह्रस्व रक्त कणीय[6] रक्ताल्पता समझा जाना चाहिए। M. C. H. C. रक्तरङ्ग प्रति १०० सी. सी. रक्त नहीं बल्कि प्रति १०० सी. सी. रक्तकण का परिचायक है अतः इससे यह पता चल जाता है कि रक्तकणों के अन्तर्गत रक्तरङ्ग किस प्रकार संचित है। यदि मात्रा ३२ प्रतिशत से कम है तो समझना चाहिए कि रक्तरङ्ग का रक्तकणों में संचय कम है अतः रोगी को लौह के योग देना आवश्यक है। M. C. H. C. प्राकृत से अधिक किसी भी अवस्था में नहीं हो सकती क्योंकि रक्तकण जितना रक्तरङ्ग संचित कर सकते हैं उससे अधिक संचित नहीं कर सकते।

सूक्ष्मदर्शक द्वारा रक्त-परीक्षा

सूक्ष्मदर्शक द्वारा रक्त परीक्षा भिन्न-भिन्न तीन उद्देश्यों से की जाती है (१) रक्तकणों का आकार देखना (२) भिन्न भिन्न श्वेतकणों की गणना करना तथा

1. Mean Corpuscular-Haemoglobin (M. C. H.) 2. Mean Corpuscular volume (M. C. V.) 3. Mean Corpusenlas Haemoglobin (M. C. H. C.) 4. Macrocytic 5. Normocytic 6. Microcytic

(३) रक्त के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवाणुओं की उपस्थिति या अनुपस्थिति का ज्ञान करना।

प्रलेप तैयार करना—सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करने के लिए सबसे पहली आवश्यकता है रक्त को काचपट्ट पर फैलाकर तैयार करना[1] ताकि उसकी परीक्षा की जा सके। यह प्रलेप काचपट्ट पर या कवर ग्लास पर भी तैयार किया जा सकता है। काचपट्ट पर प्रलेप तयार करना सरल है तथा बहुधा यही किया भी जाता है अतः इस स्थल पर उसी की ओर संकेत किया जायगा। यह ध्यान रहे कि कवर ग्लास या काचपट्ट चिकनाई से पूर्ण रहित तथा शुद्ध एवं साफ हो। साथ ही यह भी आवश्यक है कि काचपट्ट पतले काच का तथा वर्ण रहित हो। प्रथम इसको एलीटिक एसिड से साफ करने के बाद पानी से धोकर फिर स्पिरिट से साफ किया जा सकता है। स्पिरिठ को स्पिरिट लैंप की लौ के ऊपर सुखाया जा सकता है।

अब काचपट्ट के पूर्णतः ठण्डा हो जाने पर उसके एक शिरे को उँगली के या कर्णपाली शीर्ष से निकल रहे रक्तबिन्दु से स्पर्श मात्र करा दिया जाता है ताकि रक्त का विन्दु काचपट्ट पर लग जाय। अब इसको मेजपर रखकर बाँए हाथ की तर्जनी तथा अंगूठे से पकड़ कर स्थिर रक्खा जाता है। इसी समय दाएँ हाथ में दूसरा पहले की तरह ही साफ किया गया काचपट्ट लिया जाता है तथा उसको पहले काचपट्ट के साथ ४५ अंश का कोण बनाते हुए रक्त के बिन्दु से स्पर्श करा दिया जाता है। कुछ क्षण में ही रक्त इस काचपट्ट की पूरी चौड़ाई तक फैल जायगा। दूसरे काचपट्ट को पहले के साथ ४५ अंश का कोण बनाते हुए ही आगे की ओर बढ़ाया जाता है और इस प्रकार पहले काचपट्ट पर दूसरे की सहायता से रक्त का एक पतला एकरस प्रलेप तैयार हो जाता है। सारी विधि चित्र ३१ में स्पष्ट दिखाई गई है। यह सम्पूर्ण क्रिया शीघ्रता के साथ की जानी चाहिए ताकि रक्त काचपट्ट पर प्रलेप बनने से पूर्व ही जम न जाय।

रजन—रक्त कणों का आकार परिवर्तन, पीलपांव का जीवाणु, आवर्तकज्वर का जीवाणु आदि कुछ सामान्य बातें बिना रंजन किये भी ताजे रक्त प्रलेप में

1. Preparation of slide. 2. Staiving.

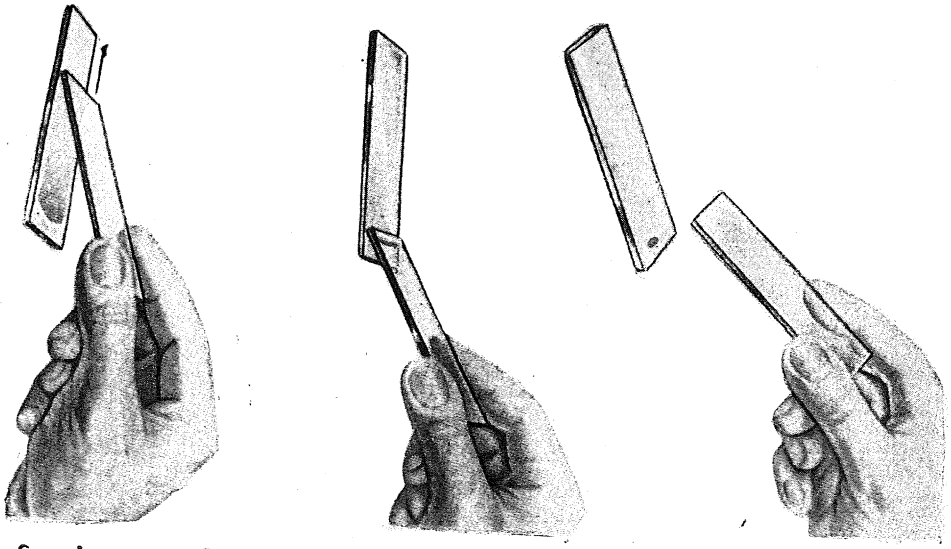

चित्र सं० ३१—१ चिकनाई रहित साफ काच पट्ट (स्लाइड) पर रक्त एक बूंद लें।
२—बूँद के सहारे एक दूसरे काच पट्ट को ४५° (डिग्रीकोण) पर रखते हुए लगायें।
बूँद, दूसरी काच पट्ट के किनारे के सहारे फैल जायेगी।
३—बूँद को फैल जाने पर दूसरी कॉच पट्ट को जैसा कि चित्र में दिखलाया गया है, चलायें। इस प्रकार करने से रक्त का पहले के काच पट्ट के लगभग आधे भाग पर पहला प्रलेप बनाया जायेगा जो शिघ्र सुखा दिया जाना चाहिए (वर्णन पृ० ६६ पर)।

देखी जा सकती हैं। इस प्रकार की परीक्षा के लिए उपरोक्तविधि से ही काचपट्ट के मध्य में रक्तबिन्दु लेकर उसके ऊपर कवर ग्लास रखकर प्रलेप की $\frac{1}{6}$ या $\frac{1}{8}$ ओब्जेक्टिव से ही परीक्षा की जा सकती है।

श्वेत कणों की पृथक-पृथक गणना आदि के लिए उपरोक्त विधि से तैयार की गई फिल्म का रंजन करना आवश्यक है। रक्त प्रलेप के रंजन के सम्बन्ध में कुछ खास बातें ध्यान में रखने की हैं। यथा—

(१) रक्तकणों का प्रोटोप्लाज़्म केवल अम्लीय रङ्गों को ही ग्रहण करता है। भिन्न-भिन्न श्वेतकणों के प्रोटोप्लाज़्म में सम्मिलित कण भिन्न रङ्ग ग्रहण करते हैं। जैसे—

(२) कुछ केवल ईओसिन सदृश अम्लीय रङ्ग को ग्रहण करते हैं और इसीलिए इनको इओसोनोफिल कहा जाता है।

(३) कुछ केवल क्षारीय रङ्ग को ग्रहण करते हैं तथा इनको बेसोफिल कहा जाता है।

(४) पोली न्यूक्लीयर (बहुकेन्द्रीय) श्वेतकण अम्लीय अथवा क्षारीय दोनों प्रकार के रङ्गों से रंजित हो जाते हैं अतः इनको न्यूट्रोफिल कहा जाता है। किन्तु अब यह धारणा बदल गई है क्योंकि यह देखा जाता है कि ये श्वेत कण भी हलका अम्लीय रङ्ग ही ग्रहण करते हैं। फिर भी नाम न्यूट्रोफिल ही चला आ रहा है उसको बदला नहीं गया।

ऐसी स्थिति में एक क्षारीय एवं अम्लीय रङ्गों के मिश्र रङ्ग का प्रयोग किया जाता है ताकि रक्त का प्रत्येक अंग अपनी अपनी इच्छा का रङ्ग ग्रहण कर सके।

अत लीशमैन के रंग[1] का प्रयोग किया जाता है। यह रंग क्षारीय मीथायलब्लू तथा ईओसिन का यौगिक है जिसे ·५ प्रतिशत की मात्रा में शुद्ध मीथायल एल्कोहल में घोल लिया जाता है। प्रलेप के सूख जाने पर उसको रंग से ढंक दिया जाता है। रंग पूरे प्रलेप पर एक-सा रहना चाहिए तथा उसको फिल्म पर एक मिनट तक पड़ा रहने दें। इस एक मिनट के बाद रंग में दूनी मात्रा परिश्रुत जल को डाल कर एक काच पिपट की सहायता से रंग के साथ मिला

1 Leishman's stain

दें। लगभग ७-८ मिनट पश्चात् जल तथा रंग का मिश्रण फेंक दिया जाता है तथा केवल पानी डालकर दो मिनट के लिए छोड़ दिया जाता है। इसके बाद काचपट्ट को पानी से भली प्रकार धो दिया जाता है तथा हवा में उस को सुखा देते हैं। स्पिरिट लैंप की लौ पर भी काचपट्ट को काफी ऊँचा रखते हुए सुखा सकते हैं। शुष्क हो जाने के पश्चात् जायलोल बल्जाम[1] डालकर या सीधे ही $\frac{1}{12}$ ओयल इम्मर्सन लेंस द्वारा परीक्षा की जाती है।

रक्तकणों में परिवर्तन—रक्तकणों में परिवर्तन (१) आकार (२) आयाम (३) वर्ण भिन्नता (४) कणमयता तथा (५) केन्द्रयुक्त रक्तकण के रूप में हो सकती है। ध्यान रखना चाहिए कि स्वस्थ रक्तकण गोल उभय नतोदर केन्द्र रहित रचना है। जिसका आकार ६-८ म्यू या $\frac{1}{3000}$ इंच होता है। लीशमन के रंग द्वारा ये चमकीली लाल रङ्ग की हो जाती हैं। (चित्र ३२)

१. आकार में परिवर्तन की अवस्था को आकार-भिन्नता[2] नाम से सम्बोधित किया जा सकता है। आकार में रक्तकण एक बिन्दु या वृक्क के सदृश हो सकते हैं। इस प्रकार का परिवर्तन प्रायः हर प्रकार की तीव्र रक्ताल्पता में देखा जा सकता है किन्तु बहुधा घातक रक्ताल्पता में ही अधिक देखा जाता है।

२. आयाम में परिवतन का अर्थ है रक्तकणों का छोटा-बड़ा हो जाना। इसको आयाम-भिन्नता[3] कह सकते हैं। यह अवस्था भी घातक रक्ताल्पता में साफ साफ देखी जा सकती है। दीर्घाकार रक्तकण होने पर रङ्गनिदर्शन एक से अधिक होता है (दीर्घ कणीय या रक्तरङ्ग वृद्धि सह रक्ताल्पता[4]) तथा ह्रस्वाकार रक्त-कण होने पर रङ्ग निदर्शन भी एक से कम होता है (ह्रस्वकणीय या रक्तरङ्ग ह्रास सहरक्ताल्पता[5])

३. वर्ण में परिवर्तन का अर्थ है वर्ण भिन्नता[6]—जैसा की ऊपर ही संकेत किया गया है। प्राकृत रक्तकण चमकीले लाल रङ्ग का होता है किन्तु इसका मध्य भाग किनारों की अपेक्षा कुछ पतला होने के कारण हलका पीला हो सकता है। तीव्र स्वरूप की रक्ताल्पता होने पर वर्ण भिन्नता होने पर कुछ रक्तकण नीले, नीले से

1 Xylol Balsam 2 Poikilocyte 3 Anisocytozis 4 Macrocytic or Hyperchromic Anaemia 5 Microcytic or Hypochromis Anaemia 6 Polichromat philia

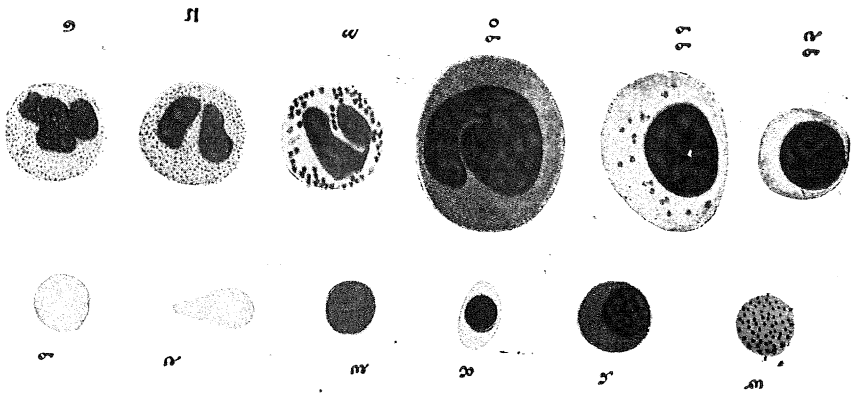

चित्र सं० ३२—रक्तकणों का भिन्न २ विकृत रूप तथा भिन्न २ प्रकार के श्वेत कण।
१—प्राकृत रक्तकण, २—आकार भिन्नता, ३—वर्ण भिन्नता (वोली क्रोमेटोलिक), ४—सकेन्द्र रक्तकण नोर्मोब्लास्ट, ५—सकेन्द्र रक्तकण-मिगैलो ब्लास्ट, ६—कण सहित रक्तकण -पंक्टेट वेसोलिक ७—पौलीमोर्फ न्यूक्लीयर न्यूट्रोफिल, ८—यूसोनोफिल, ९—बेसो लिक, १०—मोनोसायट, ११—लार्ज लिम्फोसायट, १२—स्मौल लिम्फोसायट,

(वर्णन पृ० ६८ पर)

लाल हो सकते हैं। ये रक्तकण पदार्थ में अविकसित रक्त कण[1] होते हैं जो रक्त-रङ्ग की कमी के कारण पूरी तरह रंजित न होकर इस प्रकार रञ्जित हो जाते हैं।

४. कणमयता[2] से तात्पर्य रक्तकण के अन्तर्गत नीलवर्ण कणों का छितरे हुए पाया जाना है। इस अवस्था में रक्तकण के अन्तर्गत ऐसी विकृति हो जाती है कि वह क्षारीय रङ्ग को इस विशिष्ट रूप में ग्रहण कर लेती हैं। यह अवस्था शीश विषजन्य रक्ताल्पता में अधिक पाई जाती है।

५. केन्द्रयुक्त रक्तकण[3]—मे नोर्मोब्लास्ट[4] तथा मेगोलोब्लास्ट[5] के रूप में हो सकते हैं। नोर्मोब्लास्ट तथा लिम्फोसायट बहुत कुछ मिलते हैं अतः सावधानी के साथ दोनों का पृथक्करण किया जाना चाहिए। नोर्मोब्लास्ट का केन्द्र एकरस[6] होता है तथा अधिक साफ रञ्जित हो जाता है। इसके चारो ओर लालवर्ण प्रोटो-प्लाज़्म भी रहता है। नेगोलोब्लास्ट बड़े आकार के केन्द्रयुक्त लालकण हैं जिनका केन्द्र बिन्दाकार रंजित हो जाता है। ये दोनों ही प्रकार के केन्द्रयुक्त रक्तकण घातक रक्ताल्पता में पाये जाते हैं।

रक्ताल्पता

रक्त, रक्तकण तथा रक्तरङ्ग के सम्बन्ध में सब कुछ वर्णन कर देने के पश्चात् रक्ताल्पता के सम्बन्ध में भी थोड़ा प्रकाश डालना यद्यपि विषयान्तर होगा फिर भी उपयुक्त ही है क्योंकि उसको आसानी से समझा जा सकेगा।

स्वस्थावस्था में रक्तकणों का नाश तथा निर्माण दोनों साथ-साथ चलते रहते हैं और इसीलिए रक्तकण अपनी प्राकृत संख्या लगभग ५० लाख (५ दश-लक्ष या ५ मिलियन) प्रति घन मिलीमीटर तथा रक्तरङ्ग लगभग ६० प्रतिशत बना रहता है। यह पहले ही संकेत किया जा चुका है कि रक्तकणोंका निर्माण अस्थिमज्जा के द्वारा होता रहता है। सर्वप्रथम मिगेलोब्लास्ट की उत्पत्ति होती है। किन्तु अस्थिमज्जा से मिगेलोब्लास्ट किस प्रकार तैयार हो जाते हैं यह अभी तक ज्ञात नहीं। यह अवश्य निर्णय दिया जा चुका है कि इसके पश्चात् नोर्मोब्लास्ट बनने तक

1 Immature red cells 2 Punctate Basophilia 3 Nucleated Red cells 4 Hormore 5 Extrinsic Factor 6 Intriusic Factor

के लिए एक विशेष प्रकार के अन्तःस्राव[1] की आवश्यकता पड़ती है जो प्रोटीनपचन के समय आमाशय में निर्मित होता है तथा आन्त्रों से शोषित होकर सीधा यकृत में रक्षित रहता है। कहा जाता है कि कुछ अंश मस्तिष्क तथा वृक्क में भी सुरक्षित रहते हैं। यहाँ हमने देखा कि इस हार्मोन के भी दो घटक हैं यथा बाह्य[2] घटक जो भोजन द्वारा आता है तथा अन्तः घटक जो आमाशय से प्राप्त होता है। इस हार्मोन के अतिरिक्त लौह जिसकी रक्तरङ्ग के लिए खास आवश्यकता है, जीवनीय गण बी के कुछ साथी, जीवनीय गण सी, ताम्र के अंश, कोबल्ट थायरोक्सीन आदि भी रक्त-निर्माण में सहयोग देते हैं। यकृत रक्त-निर्माण को एक विशिष्ट जना देता है इसलिए रक्ताल्पता की चिकित्सा में यकृत सत्व तथा उसके प्रधान घटक जीवनीय गण बी १२ तथा फौलिक एसिड का रक्ताल्पता की चिकित्सा में एक खास महत्त्वपूर्ण स्थान है। इन सभी उपर्युक्त पदार्थों की सहायता व उत्तेजना से उचित आकार तथा उचित मात्रा में रङ्गद्रवयुक्त रक्त कण अस्थिमज्जा से निकल कर रक्त प्रवाह में आते रहते हैं।

उपर्युक्त किन्हीं भी चीजों की कमी होने पर रक्त निर्माण में बाधा पड़ने का अर्थ ही रक्ताल्पता है। उपरोक्त चीजों की पूर्ति होने पर भी अनावश्यक रक्त नाश के कारण भी रक्ताल्पता उत्पन्न हो सकती है। इस प्रकार रक्ताल्पता के तीन मूल कारण हुए यथा (१) रक्त निर्माणक अंग अपने कार्य को ठीक तरह से न कर सकें (२) रक्त निर्माण के लिए आवश्यक पदार्थ प्राप्त न हो सकते हों तथा (३) रक्त कणों का अनावश्यक रूप से नाश हो रहा हो जिसकी पूर्ति न हो सकती हो।

यकृत आमाशयिक हार्मोन की कमी होने पर अस्थि-मज्जा में ठीक प्रकार रक्त कण निर्माण नहीं हो सकता जिसके फलस्वरूप अपूर्ण अल्पस्थायी रक्त कण रक्तप्रवाह में आने लगते हैं जिनमें से बहुत से प्राकृत से बड़े होते हैं तथा अधिक रंग द्रव युक्त होते हैं इसलिए इसको दीर्घकणीय अथवा रक्त रंग वृद्धि सह रक्ताल्पता कहते हैं। इसके अन्तर्गत प्रधान रूप से घातक रक्ताल्पता, गर्भकालिक रक्ताल्पता, आमाशयिक व्रणजन्य रक्ताल्पता आती है। आन्त्रिक विकार जैसे-

1 Liver Extract 2 Ingredients

ग्रहणी, अंकुशमुख कृमि, अमीबाजन्य अतिसार आदि अवस्थाएं भी इसमें शामिल की जा सकती हैं क्योंकि इनके होने पर भी आतों से हार्मोन का शोषण नहीं हो सकता। इस प्रकार की रक्ताल्पता की चिकित्सा में यकृतसत्व, विटामिन बी १२ फौलिक एसिड आदि का विशेष महत्त्व है। अस्थिमज्जा की अकार्यक्षमता के कारण उत्पन्न रक्ताल्पता भी इसी विभाग के अन्दर आनी चाहिए। अस्थिमज्जा की अकार्य क्षमता प्रारम्भिक अथवा क्ष-किरण, रेडियमजन्य या शीश, पारद बेंज़ोल आदि विषों के कारण हो सकती है।

दूसरे प्रकार की रक्ताल्पता में लौह, ताम्र आदि भली प्रकार प्राप्त न हो सकने के कारण रक्त-निर्माण में बाधा पड़ती है जिसके फलस्वरूप रक्त कण आकार में छोटे तथा रक्त रंग की कमी भी होती है। इस प्रकार की रक्ताल्पता को ह्रस्व कणीय अथवा रक्त रंग ह्रास युक्त रक्ताल्पता कहना चाहिए। बालकों की पोषण की कमीजन्य रक्ताल्पता, क्लोरोसिस आदि अवस्थायें इसी में सम्मिलित की जानी चाहिए। आन्त्रामाशयिक शोथ, भोजन की कमी, बालक को अधिक दुग्ध पान, आमाशयिक अम्ल की अल्पता आदि अवस्थाएं भी इसी में सम्मिलित हैं। इस कोटि की रक्ताल्पता की चिकित्सा में लौह के विभिन्न योग कोबल्ट आदि का विशेष महत्त्व है—मूल कारण को दूर करना तो आवश्यक है ही।

अन्य अवस्थाओं में रक्तस्राव की, चाहे वह धीरे धीरे होता हो अथवा एकदम हो गया हो, रक्त-निर्माणक अंगों द्वारा पूर्ति न हो सकने के कारण ही रक्ताल्पता उत्पन्न होती है। रक्त कणों का आकार तथा रक्तरंग की मात्रा ठीक रहती है। क्योंकि रक्ताल्पता का कारण रक्त का ह्रास है। रक्त कण या रक्त रङ्ग की विकृति नहीं। रक्तस्राव चिरकालीन धीमा धीमा या तीव्र हो सकता है तथा बहुधा पचन-संस्थान या गर्भाशय से होता है। ल्यूकेमिया, घातक अर्बुद तथा विभिन्न स्थानों के शोथ की अवस्था में भी इसी प्रकार की स्थित बन जाती है। कुछ अवस्थाएं ऐसी भी होती हैं जिनमें रक्त कणों का आकार घट जाता है किन्तु रक्तरङ्ग की मात्रा उतनी ही रहती है। इस प्रकार की स्थिति को सामान्य ह्रस्व कणीय रक्ताल्पता[1] कहा जा सकता है।

1 Simple Microcytic Anremia

षष्ठ अध्याय

रक्त-परीक्षा

श्वेत कणों की पृथक् पृथक् गणना[1]

इससे तात्पर्य है भिन्न-भिन्न प्रकार के श्वेत कणों को अलग-अलग से गिनना तथा प्रतिशत प्रमाण के रूप में व्यक्त करना। इस सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि श्वेत कणों की प्रति घनमिलीमीटर पूर्ण गणना करना भी आवश्यक है क्योंकि तभी यह अनुमान लगाया जा सकता है कि किसी खास प्रकार के जीवाणुओं की यथार्थ में वृद्धि हुई अथवा नहीं, क्योंकि केवल प्रतिशत प्रमाण देखने से यह हो सकता है कि विशिष्ट श्वेत कणों की प्रतिशत संख्या बढ़ गई हो किन्तु श्वेत कणवृद्धि न होने पर यथार्थ में उनकी संख्या में वृद्धि न हुई हो।

इस प्रकार की गणना के लिए कुल लगभग २००–५०० श्वेत कण एक ही क्षेत्र में देखे जाते हैं तथा फिर उनकी प्रतिशत संख्या निश्चित करके व्यक्त की जाती है। यह भी हो सकता है कि थोड़े क्षेत्र में ही प्रलेप तैयार किया जाय और फिर सम्पूर्ण प्रलेप के श्वेत कणों की अलग-अलग गणना कर ली जाय।

निम्न प्रकार के श्वेतकण पाये जा सकते हैं—

१. पौलीमोर्फन्यूक्लियर न्यूट्रोफिल[2]—कुल संख्याका लगभग ६०-७० प्रतिशत होते हैं। औसतन इनका आकार १२ म्यू होता है, केन्द्र लम्बा आकार में बड़ा तथा गोल न होकर इधर उधर निकला हुआ होता है[3] जिससे ऐसा मालूम पड़ता है कि उसके कई भाग हैं। प्रोटोप्लाज़्म में कण होते हैं। प्रारम्भ में इनके लिए यह समझा जाता था कि वे अम्लीय या क्षारीय कोई भी रङ्ग ग्रहण कर सकते हैं इसीलिए इनका नाम न्यूट्रोफिल रखा गया। किन्तु यथार्थ में ये कण अम्लीय रङ्ग ही ग्रहण करते हैं। इन श्वेत कणों का निर्माण अस्थिमज्जा से ही

2 Differential W. B. C. Count 3 Polimorphnuclear Neutrophil

होता है तथा इनमें अमीबा की तरह गति होती है तथा भक्षण करने की शक्ति[1] भी।

२. यूसोनाफिल[2]—इनकी संख्या लगभग १–४ प्रतिशत होती है। ईओ-ठिन से भली प्रकार रंजित लाल वर्ण कण प्रोटोप्लाज़्म में होते हैं तथा केन्द्र लगभग दो या अधिक भागों में विभक्त मालूम पड़ता है। इनका निर्माण भी अस्थि-मज्जा से होता है तथा अमीबा की तरह इनमें गति भी होती है, किन्तु बहुत कम। भक्षण करने की शक्ति बिलकुल नहीं होती।

३. दीर्घाकार लिम्फोसायट[3] **तथा ४. ह्रस्व लिम्फोसायट**[4]—इनमें से प्रथम की संख्या ५–१० प्रतिशत तथा द्वितीय को २०–२५ प्रतिशत होती है। मध्य में क्षारीय रङ्ग से रञ्जित नील वर्ण बड़ा-सा एक केन्द्र होता है तथा उसके चारो ओर सायटोप्लाज़्म रहता है जो हलका नीला ही रञ्जित होता है। सायटोप्लाज़्म के अन्तर्गत कभी-कभी कुछ कण भी देखे जा सकते हैं। दोनों में केन्द्र का आकार एक-सा होता है, किन्तु दीर्घाकार लिम्फोसायट में सायटोप्लाज़्म की मात्रा अधिक होती है अतः वह बड़ा दिखता है जब कि ह्रस्व लिम्फोसायट में सायटोप्लाज़्म की मात्रा कम रहती है अत. वह छोटा दिखता है। इनका निर्माण लसीका धातु से होता है तथा इनमें थोड़ी सी अमीबा की तरह गति करने की शक्ति होती है किन्तु भक्षण शक्ति नहीं।

५. बेसोफिल[5]—इनका प्रतिशत प्रमाण बहुत कम ०–५ प्रतिशत होता है। इनको हीं मास्ट सेल[6] भी कहते हैं। इनका सायटोप्लाज़्म पीत वर्ण होता है तथा इनमें दो भागों में विभाजित सा केन्द्र एवं इधर उधर बिखरे हुए बेसोफिल (नीलवर्ण) कण रहते हैं।

६. मोनोसायट[7] **अथवा लार्ज हायलायन**[8]—ये रक्त में पाये जाने वाले जीवकोषों में सबसे बड़े जीवकोष होते हैं। इनके अन्तर्गत एक बड़ा वृक्काकार केन्द्र रहता है तथा चारो ओर हलका नीलवर्ण सायटोप्लाज़्म होता है जिसमें रक्तवर्ण कुछ कण भी हो सकते हैं। इनकी संख्या २–४ प्रतिशत रहती है।

इन उपरोक्त भिन्न-भिन्न प्रकार के श्वेतकणों की वृद्धि व ह्रास के कारणों को समझने के लिए निम्न तालिका अधिक सहायक सिद्ध होगी—

1 Lobed 5 Phagocytic 2 Eosinophil 3 Large Lymphocyte 4 Small Lymphocyte 5 Baso- phils 6 Mastcell 7 Monocyte 8 Large Hyaline

नाम श्वेत कण	प्राकृत प्रतिशत प्रमाण	वृद्धि के कारण	ह्रास के कारण
१. पोलीमोर्फन्यूक्लियर	६०–७०	हर प्रकार के उपसर्ग, शोथ विशेषतः पूयोत्पादक जीवाणुओं द्वारा उत्पन्न । मायलोयड ल्यूकेमिका में विशेष वृद्धि	कालाज़ार, मलेरिया (कम) आन्त्र ज्वर, कुकुर खाँसी, क्षय घातक रक्ताल्पता आदि
२. यूसोनोफिल	१–४	चर्म रोग, कृमि, पूयमेह, श्वाँस, मायलोयड ल्यूकेमिया, विस्फोट ज्वरों से मुक्तिकाल, होजडिन का रोग आदि	कालाज़ार आदि बहुत से ज्वरों की प्रारम्भिक अवस्था, पूयमयता की बिगड़ती हुई अवस्था
३. दीर्घ लिम्फोसायट	५–१०	माता[1], बड़ी माता[2], खसरा, कुकुर खांसी, टायफस ज्वर, मलेरिया आदि की प्रारम्भिक अवस्था ।	उन अवस्थाओं में जब पोली मार्फन्यूक्लीयर की विशेष वृद्धि हो गई हो
४. ह्रस्व लिम्फोसायट	२०–२५	लिम्फेटिक ल्यूकेमिया, कालाज्वर (बहुत वृद्धि), कर्णमूल, क्षय, बेसीलरी, आमातिसार, आन्त्र ज्वर, कुकुर खांसी तथा आतशक की द्वितीय अवस्था	केवल उपरोक्त अवस्था ही ।

1 Small Pox 2 Chicken Pox

नाम	प्राकृत प्रतिशत प्रमाण	वृद्धि के कारण	ह्रास के कारण
५. बेसोफिल	०–१	मापलोयड ल्यूकेमिया (१०–२५%) तथा कामला।	... ...
६. मोनो सायट	२–४	औपसर्गिक हृदयन्तः शोथ[3], सर्वांगक्षय[4], गल शोथ, अण्ड्यूलेंट फीवर आदि।	तीव्र शोथ की अवस्था जब पोलीमोर्फन्यूक्लीयर की संख्या बढ़ गई हो।
७. मोनोसायटहायलायन सेल	नहीं पाया जाता	मायलोयड ल्यूकेमिया २०–३० प्रतिशत तक।	... ...

3 Infecive entdocardotis 4 Miyairl Tuberculeses

नोट—श्वास रोग की अवस्था में यूसुनोफिल की वृद्धि के लिए रक्त-परीक्षा कराना एक महत्त्व की बात है क्योंकि बहुत सी ऐसी अवस्थाएं होती हैं जिनमें यूसुनोफिल की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार की अवस्था को फुसफुस की यूसोनोफायलिया[1] या क्षयाभास[2] भी कहते हैं क्योंकि लक्षण क्षय रोग से बहुत कुछ मिलते हैं। सोमल के योगों का इंजेक्सन द्वारा प्रयोग करने पर तत्क्षण लाभ होता है।

रक्तकण अथवा श्वेतकण के भिन्न-भिन्न रूपों के देखने के लिए चित्र नं० ३२ देखो।

रक्तगत जीवाणु

सभी प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणु में नहीं पाये जा सकते किन्तु कुछ ऐसे हैं जो केवल रक्त में ही पाये जाते हैं। मलेरिया, फायलेरिया, कालाजार आवर्तक ज्वर के जीवाणुओं को देखने के लिए सदैव रक्त की ही परीक्षा की जाती है। अफ्रीका में पाये जाने वाले निद्राज्वर का जीवाणु भी रक्त में ही देखा जा सकता है।

जीवाणुओं के लिए रक्तपरीक्षा ताजी प्रलेप के रूप में की जा सकती है जब कि फायलेरिया का जीवाणु या निद्राज्वर का जीवाणु चलता फिरता जीवित अवस्था में देखा जा सकता है अथवा रक्त प्रलेप को स्थापित एवं रञ्जित करके की जा सकती है। रक्त प्रलेप दो प्रकार का हो सकता है, यथा—तनुप्रलेप[3] एवं स्थूल प्रलेप[4]। तनुप्रलेप बनाने की विधि का वर्णन ऊपर किया जा चुका है।

ताजी प्रलेप—ध्यान रखना है कि रक्त प्रलेप तैयार करने के लिए काचपट्ट और कवर ग्लास साफ तथा चिकनाई से रहित होने चाहिए तथा इनको सदैव किनारों पर ही पकड़ना उचित है ताकि उनका धरातल उंगलियों से खराब न हो जाय। ताजी प्रलेप तैयार करने के लिए रक्त की बूंद उँगली या कर्णपाली शीर्ष से ही ली जाती है जैसा कि पीछे कई स्थलों पर वर्णन किया जा चुका है।

1 Eosonophilis of the lung 2 Thin film 3 Thick Film

प्रथम बूँद को अलग करने के बाद आनेवाली दूसरी बूंद को कवर स्लिप के मध्य में स्पर्श कराने से वह कवर स्लिप से लग जायगी। अब इस कवर स्लिप को रक्त की बूँद नीचे की ओर रखते हुए काचपट्ट के मध्य में रख दिया जाता है। यदि उचित आकार की ही बूंद ली गई है तो रक्त प्रलेप के रूप में फैल जायगा तथा उसका मध्यस्थ भाग रक्त वर्ण का नहीं मालूम पड़ेगा। यदि मध्यस्थ भाग रक्त वर्ण का मालूम पड़ता है तो कवर स्लिप को थोड़ा दबाया जा सकता है। यदि कुछ घंटों के लिए इसको सुरक्षित रखना हो तो कवर स्लिप के किनारों से वैसलीन लगा दी जानी चाहिए ताकि प्रलेप शुष्क न होने पावे। काचपट्ट की मायक्रोस्कोप द्वारा मध्यम प्रकाश में क्रमशः $\frac{2}{3}$, $\frac{1}{2}$ और यदि आवश्यक हो तो $\frac{1}{12}$ ओब्जेक्टिव द्वारा परीक्षा की जाती है।

स्थूल प्रलेप—तनुप्रलेप में स्थूल प्रलेप की अपेक्षा यह विशेषता है कि इस विधि में एक ही समय में तनुप्रलेप की अपेक्षा अधिक रक्त की परीक्षा की जा सकती है। इसीलिए यह विधि जीवाणुओं की उस अवस्था में परीक्षा करने के लिए अच्छी है जब रक्त में उनकी संख्या कम हो। काचपट्ट के मध्य में रक्त की एक बूंद दी जाती है तथा उसको एक मोटी त्रिकोणाकार सुई से इधर उधर फैला दिया जाता है, इतना कि उसके मध्य में होकर छपे हुए अक्षर पढ़े जा सकें। अब इस प्रलेप को शुष्क करना आवश्यक है। शुष्क करने के लिए काचपट्ट को किसी काच की साफ तस्तरी से ढक कर ताकि धूल से उसकी रक्षा हो सके दो चार घंटे के लिए छोड़ दिया जाता है। रात भर के लिए छोड़ दिया जाय तब भी कोई आपत्ति नहीं अथवा स्पिरिट लैंप की लौ के ऊपर उसको दूर से गर्म करके भी सुखाया जा सकता है। उसके सूख जा चुकने पर अब यह आवश्यक है कि उसको रक्त रंग रहित[3] तथा रंजित किया जाय। इसके लिए सर्वोत्तम विधि यह है कि काचपट्ट को सूख जाने पर एल्कोहल तथा नमक के तेजाब के के मिश्रण (एल्कोहल ९० प्रतिशत ५० सी० सी० तथा नमक का तेज़ाब १० बूंद) में डुबा कर धो दिया जाय ताकि उसका रङ्ग नष्ट हो जाय। इस के बाद पानी से धोकर तथा सुखाकर राइट[4] या ज़ीम्सा[5] के रङ्ग से रञ्जित किया जा सकता

1 Dehoemoglobinized 2 Wright 3 Giemoa

है। शुद्ध पानी से सावधानी के साथ धोकर जैनर[1] अथवा लीशमन[2] के रङ्ग से भी रञ्जित किया जा सकता है।

मलेरिया का जीवाणु[3]—इस स्थल पर इस जीवाणु के जीवन चक्र के सम्बन्ध में थोड़ा संकेत कर देना विषयान्तर होते हुए भी विषय को समझने की दृष्टि से उपयुक्त ही रहेगा। इस जीवाणु की चार उपजातियाँ मनुष्य में रोग की उत्पत्ति करती हैं यथा प्लाज्मोडियम वायवेक्स तृतीयक ज्वर (इकतरा) प्लाज्मोडियम मलेरी चतुर्थक ज्वर (तिजारी) तथा प्लाज्मोडियम फैल्सी पैरम घातक विषमज्वर का उत्पादक होता है। इनके अतिरिक्त प्लाज्मोडियम ओवे, भी मनुष्य में रोग उत्पन्न करते देखा गया है, किन्तु यह विशेष महत्त्व का नहीं। इस सभी जीवाणुओं का जीवन चक्र एक-सा है। मच्छर द्वारा काटे जाने पर उसकी लाला के साथ ये जीवाणु मनुष्य के शरीर में प्रवेश करते हैं। मच्छर से मनुष्य-शरीर में प्रवेश करते समय के इनके रूप को स्पोरोज़ायट[4] कहा जाता है।

आज से कुछ वर्ष पूर्व तक यह माना जाता था कि स्पोरोज़ायट मनुष्य शरीर में पहुँचने के पश्चात् सीधे लाल कणों में ही प्रवेश करते हैं। किन्तु अब यह निश्चित रूप से सिद्ध किया जा चुका है कि मनुष्य शरीर में पहुँचने पर स्पोरोज़ायट सीधे रक्त में नहीं पहुँच जाते बल्कि कुछ समय तक यकृत में निवास करते हैं। यकृत में निवास करते समय के इनके रूप को क्रप्टोज़ायट[5] कहा जाता है। क्रप्टोज़ायट से मैटाक्रप्टोज़ायट[6] तैयार होते हैं जो लगभग १२ दिन पश्चात् सायज़ोण्ट[7] के रूप में रक्त के लाल कण के अन्तर्गत प्रवेश करते हैं। यकृत के अन्तर्गत के इन जीवाणुओं के जीवन काल को रक्तातिरिक्त जीवन चक्र[8] (रक्त के बाहर का जीवन चक्र) कहा जाता है।

लाल कण में प्रवेश करने के पश्चात् सायज़ोंट लाल कण में वलयाकार रूप में रहता तथा बाद में उसके अन्तर्गत ही बढ़ता तथा निश्चित समय के पश्चात् लाल

1 Jenner 2 Lieshman 3 Malarial Parasite (M. P.) 4 Sporozoites 5 Cryptozoites 6 Metacryptozoites 7 Shizonts 8 Exo-crythrocytic (E. E. Cycle)

कण को विदीर्ण करके मेरोज़ायट[1] या गेमोटो सायट[2] के रूप में बाहर आता है। यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि एक सायज़ोएट के कई मेरोज़ायट बन जाते हैं तथा लाल कण के विदीर्ण हो जाने पर अन्य एक-एक लाल कण में प्रवेश कर जाते हैं। लाल कण में प्रवेश करने के पश्चात् लाल कण के अंतर्गत यह फिर से बढ़ते और निश्चित समय के पश्चात् मेरोज़ायट या गेमेटोसायट के रूप में बाहर निकल आते हैं। मलेरिया जीवाणु का यह रक्तान्तर्गत अमैथुनी जीवन चक्र[3] है जिसके कई क्रम हो सकते हैं। गेमेटोसायट स्त्रीगेमिट[4] तथा पुरुष गेमिट[5] अलग अलग होते हैं जो मच्छर के शरीर में जाकर वृद्धि को प्राप्त होते हैं तथा पुनः मच्छर द्वारा काटे जाने पर अन्य मनुष्य के शरीर में पहुँच जाते हैं।

इसी स्थल पर इस रक्तान्तर्गत जीवन चक्र से ही तात्पर्य है क्योंकि जीवाणु के रक्तान्तर्गत भिन्न रूप ही रक्त परीक्षा द्वारा देखे जा सकते हैं। तीनों के रक्तान्तर्गत रूपों में थोड़ी थोड़ी भिन्नता होती है जिसके आधार पर इनको एक दूसरे से अलग किया जा सकता है।

मलेरिया जीवाणु की उपस्थिति का निश्चय करने के लिए सदैव स्थूल प्रलेप की परीक्षा करें। चढ़े हुए ज्वर की अवस्था में ही रक्त लेकर उसका प्रलेप तैयार किया जाना चाहिए तथा इस निर्णय पर पहुँचने से पहले कि जीवाणु नहीं पाये जाते प्रलेप की कम से कम १०, १५ मिनट तक परीक्षा की जानी चाहिए। भिन्न भिन्न प्रकार के जीवाणु का अलग अलग ज्ञान करने के लिए तनुप्रलेप की परीक्षा आवश्यक है। रक्त परीक्षा का अभ्यास होना आवश्यक है ताकि जीवाणुओं को आसानी से पहचाना जा सके।

भिन्न भिन्न मलेरिया जीवाणुओं (चित्र ३३) के रक्तगत रूपों को समझने के लिए निम्न तालिका अधिक सहायक सिद्ध हो सकती है।

---

1 Merozoite 2 Gametocyte 3 Asexual Blood Cycle 4 Macrogametocyte 5 Microgmetocyte

जीवाणु की अवस्था	प्लाज्योडियम वायवेक्स बैनायन टर्शियन (इकतरा)	प्लाज्योडियम फैल्सी पैरम मैलिग्नेंट टर्शियन (घातक विषम ज्वर)	प्लाज्योडियम गलेरी चतुर्थक (तिजारी)
१. व्यापकता	सबसे अधिक पाया जाता है	ऋतुकाल के प्रारम्भ में ही	सबसे कम
२. चक्रकाल ज्वरा-वेगके बीचका समय	४८ घंटे	२४–४८ घंटे	७२ घंटे
३. ज्वर-काल में जीवाणु संख्या	२५०–५०० प्रतिघन मिलीमीटर	६००–१५०० प्रति घन मिलीमीटर	३००–६०० प्रति घन मिलीमीटर
४. जीवाणु युक्त रक्त कण	आकार में कुछ बड़ा किन्तु पीला	आकार ठीक ठीक गोल नहीं बहुरंगता	प्राकृत आकार
५. सायजोएट वलय	नीलवर्ण अनियमित आकार की बलय	बहुत छोटी किंतु सुन्दर बलय एक कण में दो या अधिक	गोल तथा कुछ मोटी वलय

जीवाणु की अवस्था	प्लाज्योडियम वायवेक्स वैनायन टर्शियन (इक्तरा)	प्लाज्योडियम फैल्सी पैरम मैलिग्नेंट टर्शियन (घातक विषम ज्वर)	प्लाज्योडियम गलेरी चतुर्थक (तिजारी)
६. सायजोएट पूर्ण विकसित	आकार में अनियमित तथा रंगकण नियमित रूप से वितरित	बाह्यस्थ रक्त में बहुधा नहीं पाया जाता।	जीवाणु अधिक गोलाकार, रंग पदार्थ बाहर के भाग में वितरित
७. विभाजन (मेरोजायट)	१५ अथवा अधिक अनियमित विभाजन	६–१० विभाजन-बाह्यस्थ रक्त में कम पाये जाते हैं	८–१० बराबर बराबर के विभाजन
८. स्त्री गैमिट	वृत्ताकार, नीलवर्ण, वर्ण-पदार्थ अधिक, क्रोमेटिन बाहर की ओर	अर्द्ध चन्द्राकार। बाह्यस्थ रक्त में पायाजाता है। वर्ण पदार्थ मध्य में केन्द्रित। क्रोमेटिन कम	गोल तथा अयनिमित रूप से रंग वितरित
९. पुरुष गेमिट	अधिक रंगीन नहीं। वर्ण पदार्थ कम क्रोमेटिन बीच में	तस्तरी की तरह। वर्ण पदार्थ तथा क्रोमेटिन इधर उधर फैला हुआ	क्रोमेटिन की मात्रा अधिक

सूक्ष्म दर्शक द्वारा मलेरिया जीवाणु के रक्त में क्रमिक विकास की अवस्थायें—

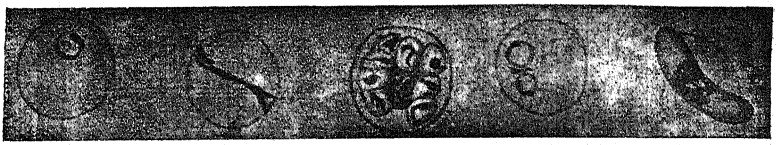

श्लीपद कृमि—इस कृमि के कई द हैं किन्तु भारतवर्ष की दृष्टि से फाय-लेरिया बैनक्रोफ्टी[1] ही महत्त्व का है क्योंकि भारतवर्ष में यही प्रकार रोगोत्पादन करता है। स्त्री एवं पुरुष युवा कृमि लसीका वाहनियों में निवास करते हैं। किन्तु उनसे असंख्य बालकृमि[2] जिनको सूक्ष्म कृमि[3] भी कह सकते हैं दूरस्थ रक्त में आ जाते हैं जहाँ से उन को रक्त की बूंद के साथ काच पट्ट पर लेकर मायक्रोस्कोप द्वारा हलकी शक्ति से ही देखा जा सकता है। ध्यान रहे कि ये बाल कृमि रात्रि के समय (६ से प्रातः १० तक) ही रक्त में बहुधा निकलते हैं अतः रात्रि के १२ बजे रक्त लेकर काचपट्ट पर प्रलेप बनाना ठीक है। यह भी हो सकता है कि एक ही नमूना जो लिया जाय उसमें ये जीवाणु न आने पावें अतः दो चार नमूने लेकर परीक्षा की जा सकती है। रक्त की एक बड़ी सी बूंद काच पट्ट के मध्य में ली जाती है तथा स्थूल प्रलेप विधि से फैला दिया जाता है। कवर ग्लास रखकर कवर ग्लास के चारो ओर वैसलीन लगाकर परीक्षा तुरन्त या प्रातः की जा सकती है। यह भी हो सकता है कि प्रलेप को मेथलीन ब्ल्यू के २ प्रतिशत घोल से २ मिनट तक रंजित करके फिर हलके एसीटिक एसिड के घोल (एक औंस पानी में चार बूंद) से उसको धो कर साफ कर लिया जाय।

1. Filaria Bancrofti 2. Embroys 3. Microfilaria

चित्र सं० ३५—कालाजार जीवाणु (प्लीहा वेधन से) कुछ स्वतन्त्र तथा कुछ एण्डोथिलियल सेल के अन्तर्गत। (वर्णन पृ० ११३ पर)

चित्र सं० ३६—आवर्तक ज्वर का जीवाणु (वर्णन पृ० ११३)

चित्र सं० १८—लवणाजल में दर्शित। १—अमीबा लिस्ट ४ केन्द्र युक्त, २—एककण युक्त गति शील अमीबा (वर्णन पृ० ६० पर)

चित्र सं० १९—लवण जल में दर्शित। १—अमीबा कोलाई सिस्ट केन्द्र, २—गति शली अमीबा कोलाई।
(वर्णन पृ० ६० पर)

,, २०—बेसीलरी आमातिसार। (वर्णन पृ० ६० पर)

,, २१—अमीबिक आमातिसार। (वर्णन पृ० ६० पर)

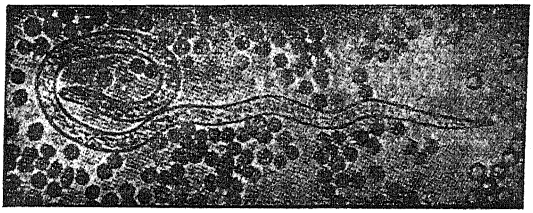

रक्त कणोंके मध्य में लम्बे लम्बे धागे सदृश बाल-कृमि देखे जा सकते हैं।
(चित्र ३४)

(चित्र संख्या ३४) श्लीपद कृमि।

कालाजार का जीवाणु[1]—ये रक्तमें बहुत कम पाये जाते हैं किन्तु प्लीहा, यकृत या वक्षास्थि छेदन[2] द्वारा प्राप्त द्रव में इनको आसानी से देखा जा सकता है। ज्वर चढ़ी हुई अवस्था में रक्त की बूंद ली जाती है तथा स्थूल प्रलेप तैयार कर लिया जाता है। बाद में उसके रक्त रंग को धोकर साफ करने के पश्चात् लीशमन विधि से रंजित कर दिया जाता है। कालाजार जीवाणु मोनो न्यूक्लीयर श्वेत कण के अन्तर्गत देखे जा सकते हैं। इनका आकार दीर्घ वर्तुल (अण्डाकार) होता है जिसकी लम्बाई (२-५ म्यू) रक्तकण की लम्बाई से कुछ कम ही होती है। जीवाणु के मध्य में बहुधा दो केन्द्र एक बड़ा तथा एक छोटा होता है (चित्र ३५)। यदि रक्त-परीक्षा में इनको न देखा जा सके तो वृद्धि करने के पश्चात् देखा जाना चाहिए।

आवर्तक ज्वर का जीवाणु—यह जीवाणु रक्त के ताजे प्रलेप में $\frac{1}{12}$ आब्जेक्टिव द्वारा तथा तनुप्रलेप में लीशमन विधि से रंजन के पश्चात् ओयल इम्मर्सन लेंस द्वारा देखा जाना चाहिए। यह भी ध्यान रहे कि रक्तकणों के मध्य के खाली स्थान में इसको देखने का प्रयत्न किया जाय अन्यथा इसका मिलना कठिन हो सकता है। जीवाणु लगभग $\frac{1}{2}$ म्यू मोटा किन्तु २५-२५ म्यू लम्बा होता है। (चित्र ३६)। इसका शरीर सीधा न होकर वक्र होता है।

जीवाणुमयता—जीवाणु मयता का अर्थ है:—रक्त में जीवाणुओं का पाया जाना। मलेरिया, कालाजार, आवर्तक ज्वर, श्लीपद के जीवाणु तो रक्त में ही

1. Leishman-Demovan Bodies 2. Spleen, Liver or Sternal puncture

पाए जाते हैं। आन्त्र ज्वर[1] उपान्त्र ज्वर[2] के जीवाणु भी ज्वर की प्रारम्भ की अवस्था में पाये जा सकते हैं। स्ट्रप्टो कोकाई, स्टैफ्लो कोकाई, न्यूमो कोकाई, मेनिंगो कोकाई, बी. कोलाई, गोनो कोकाई, क्षय जीवाणु आदि सदैव विकृत स्थान में ही सीमित रहते हैं, रक्त में नहीं पाये जाते। कभी कभी ये भी सीधे रक्त में पाए जाने लगते हैं किन्तु इस प्रकार की अवस्था सदैव भयंकरता की सूचक हुआ करती है। मलेरिया, कालाजार, श्लीपद, आवर्तक ज्वर के जीवाणु को छोड़ शेष जीवाणुओं को सूक्ष्मदर्शक द्वारा देख कर निश्चय नहीं किया जा सकता क्योंकि वे बहुत कम संख्या में होते हैं। इनकी परीक्षा के लिए रक्त का वर्द्धन करना नितान्त आवश्यक होता है। वर्द्धित रूप में जीवाणुओं को सीधे सूक्ष्म दर्शक द्वारा देखा जा सकता है अथवा प्राणियों में अन्तःक्षेप करके परीक्षा की जा सकती है। वर्द्धन के लिए पूरी पूरी शुद्धता के साथ ५-१० सी. सी. रक्त रोगी की शिरा में से लिया जाना चाहिए। ध्यान रखना चाहिए कि सल्फाविभाग एवं भिन्न भिन्न जीवाणुघ्न औषधियों की उपलब्धि के पश्चात् आधुनिक युग में इस प्रकार की परीक्षा की बहुत कम आवश्यकता पड़ा करती है।

रक्त की कुछ विशिष्ट परीक्षाएं

१. वर्णपट परीक्षा[3]— कोलगैस, पेट्रोल का धुआँ, नायट्रो बेजोल, कार्बन मोनो ओक्सायड आदि के विष प्रभाव तथा हीमोग्लोबिन की रक्त में उपस्थिति के लिए वर्णपट परीक्षा की जाती है। अंगूठे अथवा उंगली में छिद्र करके कुछ दो चार बूंद रक्त निकाल कर परिश्रुत जल में डाल दिया जाता है। यह जल हलका लाल रंजित हो जायगा। इसी रक्तरंजित जल को सीधे ग्लास में ही अथवा कांच के चतुष्कोण ट्यूब में भर कर वर्णपट परीक्षक द्वारा[4] परीक्षा की जाती है। जल को धुंधले प्रकाश की ओर करके वर्णपट परीक्षक द्वारा देखा जाता है। वर्णपट परीक्षक परीक्षक के नेत्रों तथा जलपात्र के बीच में रहता है तथा उसके द्वारा देखे गये विभिन्न वर्णों के आधार पर रोग का अनुमान लगाया

1. Typhoid 2. Paratyphoid 3. Spectroscopic examination. 4. Spectroscope

जाता है। इस परीक्षा की बहुत कम आवश्यकता पड़ती है तथा उसके लिए एक विशेष प्रकार के यन्त्र तथा अभ्यास की भी आवश्यकता है।

२. रक्त स्थापन काल[1]—रक्त का यह एक विशेष गुण है कि वह रक्त-नलिकाओं के बाहर बाह्य वायुमण्डल के सम्पर्क में आते ही थोड़े समय के अन्तर्गत ही जम जाता है। कम से कम जितने समय में रक्त जम जाता है वह रक्तस्थापन काल कहलाता है। यह समय राइट के रक्तस्थापन मापक[2] की सहायता से आसानी से नापा जा सकता है। इस यन्त्र में पतले पतले एक-सी मोटाई के कई ट्यूब होते हैं जो शरीर तापमान पर गर्म गर्म पानी में रक्खे जाते हैं। प्रत्येक ट्यूब में रक्त भर दिया जाता है। ३ मिनट पश्चात् प्रत्येक ट्यूब में से फूँक देकर ३०, ३० सेकंड के अन्तर से रक्त निकाला जाता है। निकल जाने का अर्थ है कि रक्तस्थापन नहीं हुआ तथा न निकलने का अर्थ है रक्तस्थापन हो गया अर्थात् रक्त जम गया। रक्त भरने तथा रक्तस्थापन होने के मध्य का समय ही रक्तस्थापन काल कहा जाना चाहिए। प्राकृतावस्था में ३७° सेंटीग्रेड पर यह काल लगभग ४ मिनट है अर्थात् ४ मिनट के अन्तर्गत रक्त जम जाता है।

हीमोफायलिया नामक रोग या हिपेरिन के प्रयोग करते समय यह काल बढ़ जाता है किन्तु थ्रोम्बोसायटो पीनिया में उतना ही रहता है।

३. रक्तस्राव काल[3]—किसी भी स्थान से निकलनेवाला रक्त थोड़े निश्चित समय में स्वयमेव बन्द हो जाता है। जब तक यह रक्त निकलता रहता है उस समय को रक्तस्राव काल कहते हैं। इस समय का अनुमान बहुत सरलता के साथ लगाया जा सकता है। कर्णपाली शीर्ष में सुई से छिद्र कर देते हैं। प्रति ½ मिनट पश्चात् इस रक्त को पोंछ दिया जाता या स्याही सोख्ता से शोषित कर दिया जाता है। अन्त में रक्त निकलना बन्द हो जाता है। रक्त निकलना प्रारम्भ होने तथा बन्द होने के बीच का समय ही रक्तस्राव काल है। प्रकृतितः यह काल २–५ मिनट होता है। परण्यूस या क्लोरोफोर्म के विषाक्त होने की अवस्था में यह समय बढ़ जाता है।

---

1. Coagulation time. 2. Wright's Coagulometer 3. Bleeding time

४. तलछट निर्माणगति[1]—स्वस्थावस्था में रक्तकण बहुत छोटे गुच्छों[2] के रूप में पुंजित[3] होते हैं फलतः तल में भी वे धीरे-धीरे बैठते हैं अर्थात् तलछट निर्माणगति धीमी होती है। कुछ रोगों में रक्तकण बड़े-बड़े गुच्छों में पुंजित होते हैं जिसका फल होता है तलछट निर्माणगति का तीव्र होना।

तलछट निर्माणगति के नापने के लिए वैस्टरग्रीन की विधि ही सबसे अधिक सरल है तथा अधिकतर प्रयोग में लाई जाती है। सोडा सायट्रास के ३·८ प्रतिशत घोल के $\frac{4}{5}$ सी. सी. एक सिरिंज में लिये जाते हैं तथा फिर उसी सिरिंज में शिरा में से $\frac{1}{5}$ सी. सी. रक्त और ले लिया जाता है। इस प्रकार सिरिंज में कुल १ सी. सी. द्रव हो जाता है। दोनों को हिलाकर भली प्रकार मिला दिया जाता है। इस मिश्रण में से एक विशेष प्रकार के $2\frac{1}{2}$ मिलीमीटर व्यास के पिपट में २०० चिह्न तक खींच लिया जाता है। पिपट को स्टैंड में पूर्ण उत्तान[4] रखते हुए स्थिर कर दिया जाता है। एक घंटे पश्चात् फिर देखा जाता है कि रक्तकण कहाँ तक नीचे तल की ओर बैठ गये। एक घंटे में जितने मिलीमीटर तल में बैठ जायँ वही तलछट निर्माण-गति समझना चाहिए। १–८ मिलीमीटर प्रति घंटा प्राकृत है, ९–२० मिलीमीटर थोड़ी विकृति की सूचक है तथा इससे अधिक गति विशेष विकृति की सूचक समझी जानी चाहिए।

कालाज़ार, कैंसर, क्षय, कुष्ठ, गर्भावस्था, शोथ, विभ्रमयता रक्ताल्पता आदि की अवस्था में यह गति बढ़ जाती है तथा पोली साइथीमिया रोग में घट जाती है। क्षय रोग, आमवात ज्वर, आमवात ज्वरजन्य सन्धिशोथ की अवस्था में प्रति सप्ताह या प्रति दो सप्ताह रक्त की तलछट निर्माण गति नापकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि रोगी की अवस्था में सुधार हो रहा है अथवा नहीं। यदि गति बढ़ती जा रही है अथवा बढ़ी हुई रहती है तो अनुमान लगाया जाना चाहिए कि अवस्था में सुधार नहीं हो रहा है। गति का घटना अवस्था में सुधार का परिचायक है।

५. रक्तकणों की भंजनशीलता[5]—समबल लवणजल (·९ प्रतिशत घोल) में रक्तकण घंटों तक अक्षुण्ण बने रह सकते हैं किन्तु ·४५ प्रतिशत घोल

1. Sedimentation rate 2. Clump 3. Agglutinate 4. Perpendicular 5. Fragality of Red cells

में उनका भंजन टूट-फूट या नाश होना अवश्य ही शुरू हो जाता है। एकोल्यूरिक कामला[1] में रक्तकणों की भंजनशीलता बहुत बढ़ जाती है अथवा यह कहना चाहिए कि रक्तकणों की भंजनशीलता बढ़ जाना ही इस रोग का कारण तथा प्रधान लक्षण है। ·६५—·७५ प्रतिशत नमक-जल में ही रक्तकणों का गलना प्रारम्भ हो जाता है तथा ·५० प्रतिशत में तो पूरी तरह गल जाते हैं। स्ट्रप्टोकोकलजन्य पूयमयता में भी ·५ प्रतिशत घोल में रक्तकणों का गलना प्रारम्भ हो जाता है। बहुत प्रकार की रक्ताल्पता की अवस्था में भंजनशीलता घट जाती है। ·३६ प्रतिशत से अधिक शक्ति के घोल में कण गलते ही नहीं।

भंजनशीलता की परीक्षा भी आसानी से की जा सकती है। बारह-बारह परखनलियों के दो विभाग बनाये जाते हैं। दोनों विभागों में क्रमशः ·८ प्रतिशत से लेकर ·२५ प्रतिशत तक शक्ति का नमक का घोल ५, ५ सी. सी. भर दिया जाता है, अर्थात् दो परखनलियों में ·८ प्रतिशत, दो में ·७५, दो में ·६ इसी प्रकार ·०५ घटा घटाकर अन्तिम दो में ·२५ प्रतिशत शक्ति का नमक घोल रहता है। इसकी शक्ति के अलग अलग घोल बनाने में बहुत कठिनाई हो सकती है अतः एक ब्यूरेट में शुद्ध पानी तथा एक में १ प्रतिशत नमक घोल लिया जाता है। प्रथम दो में ४, ४ सी. सी. घोल तथा १, १ सी. सी. पानी लिया जिसका अर्थ ·८ प्रतिशत घोल हुआ, दूसरे दो में ३$\frac{3}{4}$ सी. सी. घोल तथा १$\frac{1}{4}$ सी. सी. पानी जिसका अर्थ ·७५ प्रतिशत घोल हुआ। इसी प्रकार आगे के लिए $\frac{1}{4}$ सी. सी. घोल घटा-घटाकर $\frac{1}{4}$ सी. सी. पानी की मात्रा बढ़ाते जाते हैं जिससे अन्तिम दो परखनलियों में एक सी. सी. घोल तथा ४ सी. सी. जल होता है जिसका अर्थ ·२५ प्रतिशत हुआ। यह भी हो सकता है कि केवल ६, ६ परख नलियाँ ही ली जायं तथा दो परखनलियों के घोल की शक्ति में ·१ प्रतिशत का अन्तर हो।

अब एक ओर की परखनलियों में जिस रक्त की परीक्षा करनी है उसकी एक एक बूंद डाल दी जाती है तथा एक ओर की नलियों में स्वस्थ व्यक्ति के रक्त की एक एक बूंद डाल दी जाती है। घोल तैयार करने तथा रक्त मिलाने के बाद भी परखनलियों को हिला देना चाहिए तथा फिर वायु के तापमान पर

1. Achoheric Jaundice

कमरे में स्टेण्ड पर स्थिर रख दिया जाता है ताकि कण तल में पहुँच जायँ। जिस परखनली में भंजन की क्रिया पहले होती है उसमें ऊपर के द्रव में लालिमा उत्पन्न होने लगती है। उसी परखनली में के नमक घोल की शक्ति देख ली जाती है। मुकाबिले के लिए एक विभाग की परखनलियों में स्वस्थ रक्त की बूंद डालना भी आवश्यक है।

६. रक्तविभाजन[1]—रक्तदान[2] (एक व्यक्ति का रक्त दूसरे के शरीर में प्रवेश करना) के समय यह आवश्यक होता है कि यह परीक्षा कर ली जाय कि एक का रक्त दूसरे के उपयुक्त पड़ता है अथवा नहीं। एक व्यक्ति के रक्तकण दूसरे व्यक्ति के रक्तरस[3] द्वारा पुंजित[4] एवं द्रवित[5] हो जा सकते हैं अतः रक्त दान से पूर्व दानी[6] के रक्तकणों की ग्राहक[7] के रक्तरस के साथ परीक्षा कर ली जाती है। इस दृष्टि से सभी व्यक्ति चार भागों में विभाजित कर दिये गये हैं। भाग एक के अन्तर्गत सर्वग्राहक[8] तथा भाग चार के अन्तर्गत सर्वदानी[9] हैं। यह विभाजन मौस[10] के अनुसार है। जैन्स्की का विभाजन इससे अलग है। किन्तु आजकल अन्तर्राष्ट्रीय जगत में तीसरा ही विभाजन स्वीकार किया जाता है। मौस के १, २, ३, ४ जैन्स्की के अनुसार क्रमशः ४, २, ३, १ है तथा अन्तराष्ट्रीय जगत् में स्वीकृत आधुनिक विभाजन के अनुसार क्रमशः AB, A, B, O है।

इन विभिन्न विभागों के पारस्परिक सम्बन्ध निम्न तालिका से भली प्रकार स्पष्ट हो सकते हैं—

विभाग	रक्तरस निम्न विभाग के रक्त कणों का पुंजीकरण कर देता है	रक्तकण निम्न विभाग के रक्त-रस द्वारा पुंजित हो जाते हैं
AB	किसी के भी रक्त कणों का नहीं सबका रक्त इसको दिया जा सकता है। सर्व ग्राहक	A, B तथा O के रक्त रस द्वारा। इसका रक्त A, B तथा O को नहीं दिया जा सकता है।

1. Blood grouping 2. Blood transfusion 3. Serum 4. Agglutinate 5 Haemolyse 6. Donor 7. Recepient 8. Universal recepient 9. Universal donor 10. Moss

विभाग	रक्तरस निम्न विभाग के रक्त कणों का पुंजी करण कर देता है।	रक्तकण निम्न विभाग के रक्तरस द्वारा पुंजित हो जाते हैं।
A	विभाग AB व B के रक्त कण। AB व B का रक्त इसको नहीं दिया जा सकता। A व O का दिया जा सकता है।	विभाग B व O का रक्त-रस। इसका रक्त B व O को नहीं दिया जा सकता केवल AB व A को दिया जा सकता है।
B	विभाग AB व A के रक्त कण। AB व A का रक्त इसको नहीं दिया जा सकता। B व O का दिया जा सकता है।	विभाग A व O का रक्त रस। इसका रक्त A व O को नहीं दिया जा सकता केवल AB व A को दिया जा सकता है
O	विभाग AB, A व B के रक्त कण। AB, A व B का रक्त इसको नहीं दिया जा सकता केवल O का ही दिया जा सकता है।	किसी का भी रक्त रस नहीं इसका रक्त सबको दिया जा सकता है सर्व दानी

रक्त के उपरोक्त गुणों के आधार पर व्यक्तियों का भिन्न-भिन्न विभागों का विभाजन कठिन नहीं। आजकल कई स्थानों पर रक्तकोष[1] खुल गये हैं जहाँ पर रक्त रक्तदान के लिए सदैव तैयार रखा जाता है। जिस व्यक्ति को रक्त दिया जाता है उसका विभाग लिख कर तुरन्त वहाँ से उपयुक्त रक्त प्राप्त किया जा सकता है। किन्तु रक्तदान आदि जैसे कार्य प्रायः बड़े बड़े अस्पतालों में ही सम्भव हैं।

अनुपयुक्त विभाग का रक्त दे दिये जाने पर शीत के साथ ज्वर, शीतपित्त[2], रक्तमेह[3], हृतप्रदेश में पीड़ा[4], श्वास कृच्छ्र[5], नीलिमा[6] आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तथा मृत्यु तक हो सकती है।

1. Blood Bank 2. Urticaria 3. Haemoglobinuria 4. Precordial Pain 5. Dyspnoca 6. Cyanosis

विभाजन आसानीसे A व B विभाग के सुरक्षित रक्त रस के साथ परीक्षा करके किया जा सकता है। एक ही काचपट्ट पर A व B लिख कर उसके पास ही सुरक्षित रक्त रस की एक एक बूंद रख दी जाती है तथा उसमें एक एक बूंद समबल सोडा सायट्रास घोल की मिला दी जाती है ताकि रक्तस्थापन[1] न हो सके। जिस व्यक्ति के रक्त की परीक्षा करनी है उसके रक्त की एक एक बूँद अलग इसमें मिला देते हैं। यदि पुंजीकरण होता है तो उसको आसानी से साधारणतया नेत्रों से अथवा सूक्ष्म निरीक्षक की सहायता से देखा जा सकता है। यदि पूंजीकरण दोनों के साथ में हो जाता है तो परीक्षित रक्त A B विभाग का तथा यदि पूंजीकरण किसी के भी साथ नहीं होता तो O विभाग का समझा जाना चाहिए। यदि केवल A के साथ होता है तो विभाग B तथा यदि B के साथ होता है तो A मानना चाहिए।

रक्त विभाजन की और भी कई विधियाँ हैं किन्तु उन सब को समझने के लिए विशेष अभ्यास एवं अध्ययन की आवश्यकता है और यथार्थ बात यह है कि रक्तदानसम्बन्धी पूर्ण निश्चयात्मक निर्णय बड़े बड़े अस्पतालों में ही किया जा सकता है तथा किया जाना चाहिए।

सप्तम अध्याय

विभिन्न स्रावों की परीक्षा

गत अध्यायों में शरीर के प्राकृत पदार्थों मल, मूत्र, रक्त, आदि की परीक्षाविधि का वर्णन किया गया है जिनमें कि किसी रोग विशेष के कारण विशेषप्रारूप की विकृति हो जाया करती है। इस अध्याय में शरीर के विभिन्न स्रावों की परीक्षाविधि का वर्णन किया जायगा जो शरीर के किन्हीं विशेष अवकाश-स्थानों या

1. Clotting

गुहाओं में अथवा किसी भी स्थान पर अप्राकृतिक रूप से एकत्रित हो जाया करते हैं। साधारणतया ये स्राव भी दो प्रकार के हो सकते हैं। प्रथम निष्क्रिय निस्सरण[1] जो हृदय या वृक्क की विकृति के कारण किसी स्थान पर निस्सरित हो होकर एकत्रित हो जाते हैं तथा दूसरे शोथजन्य स्राव[2] जो किसी स्थान के शोथ के कारण उत्पन्न होते हैं।

मस्तिष्क सुषुम्नाद्रव

यह शरीर का एक प्राकृतिक द्रव है जो सुषुम्नानलिका तथा मष्तिष्क के कोष्ठों में व्याप्त रहता है। मष्तिष्कावरण शोथ तथा मष्तिष्क के कुछ अन्य रोगों में इस द्रव के अन्दर विकृति आ जाती है। इसी के लिए इसकी परीक्षा करना आवश्यक होता है।

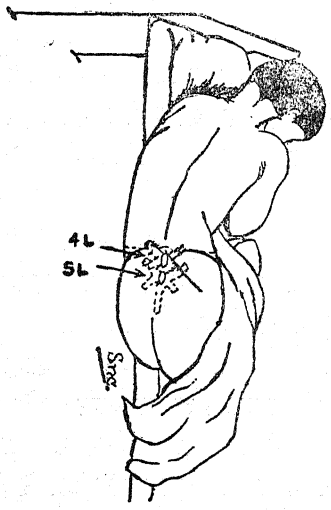

(चित्र संख्या ३७) कटिवेध की तैयारी।

प्राप्त करने की विधि—यह द्रव कटिवेध[3] द्वारा प्राप्त किया जाता है। मष्तिष्क सुषुम्ना द्रव का आन्तरिक दबाव कम करने, सपूय विषाक्त द्रव को निकालने तथा औषधि को इस मार्ग से अन्दर प्रवेश कराने के लिए भी कटिवेध करने की आवश्यकता पड़ जाया करती है। रोगी को पलंग पर एक ओर के किनारे की तरफ पार्श्व से लिटा लेते हैं (चित्र ३७) किसी पेंसिल या टिंचर आयोडीन के फाये से एक रेखा रीढ़ की हड्डी के सहारे सहारे तथा दूसरी कटिप्रदेश की अस्थियों की उच्चतम शिखर को मिलाती ई खींची जाती है। ये रेखाएं तृतीय एवं चतुर्थ उदरीय कशेरुक के मध्य में या चतुर्थ उदरीय कशेरुक के शीर्ष पर एक दूसरे को काटती हैं। ध्यान रहे कि रोगी को पार्श्व पर लिटाने के बाद

1. Passive Transudate 2. Inflamanatory exudate 3. Lumbar Puncture

जितना भी झुकाया जा सके उतना ही अच्छा है क्योंकि बिना इसके कशेरुकाओं के मध्य का स्थान स्पष्ट नहीं हो सकता। धनुर्वात[1] की अवस्था में जब कि शरीर अकड़ा होता है और इसलिए उसको झुकाना सम्भव नहीं होता क्लोरोफोर्म की आवश्यकता पड़ जाया करती है।

तृतीय एवं चतुर्थ या चतुर्थ एवं पंचम उदरीय कशेरुक के मध्य स्थान में कटिवेध शूची[2] अन्दर प्रविष्ट की जाती है। शूची को थोड़ा ऊपर एवं अन्दर की ओर प्रविष्ट करना चाहिए और यदि वह अस्थि से टकराती है तो थोड़ा ऊपर नीचे करके प्रविष्ट किया जा सकता है। अन्दर प्रविष्ट कर चुकने पर सुई के अन्दर का तार खींच लिया जाता है जिसके खींचने पर ही द्रव बाहर निकलने लगता है। यदि वेधन उचित रीति से किया जाय तथा द्रव स्वतः रक्तमिश्रित न हो तो द्रव के साथ में रक्त आने की आवश्यकता नहीं। शूची को उबाल कर शुद्ध कर-लिया जाना चाहिए तथा वेधन से पूर्व चर्म पर भी टिंचर आयोडीन लगा दी जानी चाहिए। प्रविष्ट करने की सुविधा के लिए शूची को साफ सिरिंज से लगाया जा सकता है, वैसे सिरिंज की सहायता से द्रव को खींचने की आवश्यकता नहीं। वह स्वतः ही बाहर निकलने लगता है। द्रव जीवाणुरहित शुद्ध परखनलियों में एक-त्रित किया जा सकता है।

यदि कटिवेध शूची के साथ एक दबाव मापक[3] लगा दिया जाता है तो मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव का दबाव नापा जा सकता है। साधारणतया यह दबाव ६५-१५० मिलीमीटर जल के बराबर होता है तथा एक बूंद प्रतिसेकण्ड या इससे कुछ ही अधिक तीव्र गति के साथ द्रव निकलने लगता है। यदि द्रव इतनी जल्दी-जल्दी निकलता है कि बूंदों को गिना नहीं जा सकता तो समझना चाहिए कि दबाव अधिक है। दबाव नापते समय यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रोगी का सिर तथा कटि प्रदेश समान तल में हो तथा वह शान्ति के साथ सांस लेता रहे।

यदि ग्रीवा प्रदेश में दोनों शिराओं[4] को दबाया जाता है तो मस्तिष्क में रक्ताधिक्य हो जाने के कारण मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव का दबाव भी बढ़ जाता है

1. Tetanus 2. Lumbar Puncture needle 3. Jugular Veins 4. Cerebral Haemorrhage

और यह बढ़ना ३००-४०० मिलीमीटर तक हो सकता है। शिराओं पर से दबाव हटाते ही यह दबाव भी कम हो जाता है। रोगी के खांसने से भी दबाव थोड़ा बढ़ता है। यदि मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव के मार्ग में कहीं रुकावट है तो इस प्रकार दबाव नहीं बढ़ेगा। ५–८ सी० सी० द्रव निकल जाने पर कुल दबाव आधा घट जाता है।

द्रव परीक्षा—*(१) भौतिक परीक्षा*—प्राकृतिक द्रव शुद्ध साफ जल के सदृश होता है जिसका आपेक्षिक घनत्व १००६ से १००९ तक रहता है।

द्रव में रक्त मिश्रित हो सकता है जो किसी रक्त-नलिका के शूची द्वारा वेधित हो जाने से आ सकता है। इस प्रकार का रक्त शुद्ध रक्त के रूप में होता है तथा द्रव लाल सा हो जाता है। मस्तिष्कगत रक्तस्राव मस्तिष्कशोथ[1] या मस्तिष्कावरणशोथ[2] के कारण भी हो सकता है जिसके कारण कुछ पीलिमायुक्त हो जाता है।

द्रव का अधिक पीला होना इस बात का भी परिचायक है कि द्रव में प्रोटीन की मात्रा अधिक है। इसका कारण मस्तिष्कावरण शोथ, सुषुम्ना शोथ, अथवा द्रव के मार्ग में अवरोध भी हो सकता है। इस प्रकार का द्रव जम भी जाता है।

द्रव का गदला होना पूय अथवा रक्त के कारण होता है। यदि थोड़ी देर शान्त रहने पर भी द्रव साफ नहीं होता तो गदलेपन का कारण जीवाणु समझे जाने चाहिए।

(२) रासायनिक परीक्षा—प्रोटीन प्राकृत द्रव में एल्ब्यूमिन की मात्रा बहुत थोड़ी तथा ग्लोब्यूलिन नाममात्र को ही होती है। साधारणतया परीक्षा के लिए एक परखनली में लगभग २ सी. सी. द्रव लिया जाता है तथा शुद्ध एल्कोहल उसमें किनारे से धीरे-धीरे छोड़ा जाता है। प्राकृत अवस्था में दोनों का मिलन-स्थान मात्र स्पष्ट दिखाई पड़ता है किन्तु प्रोटीन के अधिक होने पर उस स्थान पर गदली सी वलय बन जाती है।

हर प्रकार का मस्तिष्कावरण शोथ, मस्तिष्क शोथ, सुषुम्ना शोथ, व्यापक दाढ्यता[3] तथा नाड़ी संस्थान की फिरंगज विकृति में ग्लोब्यूलिन की मात्रा बहुत

1. Encephalitis 2. Meningitis 3, Disseminated Selerosis

बढ़ जाती है। मस्तिष्कगत अर्बुद तथा धमनी दाढ्य[1] की अवस्था में भी यह मात्रा बढ़ती है किन्तु कम।

ग्लोब्यूलिन के लिये द्रव-परीक्षा नॉन एपेल्ट[2] विधि से की जाती है। एक सी० सी० द्रव एक परखनली में लिया जाता है तथा उसमें एक सी० सी० ही एमोनियम सल्फेट का संतत घोल मिलाकर हिलाया जाता है। यदि तीन मिनट तक शान्त रहने के बाद गदलापन उत्पन्न हो जाता है तो ग्लोब्यूलिन की उपस्थिति समझनी चाहिए।

ग्लूकोज—प्रकृतितः द्रव के अन्दर ५०-७५ मिलीग्राम प्रति १०० सी० सी० ग्लूकोज रहता है। यदि एक सी० सी० द्रव को ½ सी० सी० फेहलिंग द्रव के साथ उबाला जाय तो फैहलिंग द्रव का वर्ण परिवर्तन हो जाना चाहिए। यदि नीलापन शेष रहता है तो समझना चाहिए कि ग्लूकोज की मात्रा कम है। तीव्र मस्तिष्कावरण शोथ की अवस्था में ग्लूकोज की मात्रा घट जाती है।

लवण—प्रकृतितः मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव में ·७२ से ·७५ प्रतिशत नमक—सोडियम क्लोरायड की मात्रा रहती है। मात्रा का घट जाना मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ का परिचायक है जब कि उसका बढ़ना इस बात का द्योतक है कि वृक्कों की खराबी के कारण लवण शरीर से पूर्णतः उत्सर्गित न होकर रुकते जाते हैं।

यूरिया—मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव में इनकी मात्रा रक्त में की मात्रा के बराबर ही होती है अतः अलग से द्रव की परीक्षा करना व्यर्थ है।

(३) सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा—यह परीक्षा जीवकोष गणना तथा जीवाणुओं की उपस्थिति का निश्चय करने के लिए की जाती है। जीवाण्वात्मक परीक्षा दी गई है। जीवकोषों की गणना रक्तकणमापक[3] की सहायता से ही की जानी चाहिए। चार भाग द्रव तथा एक भाग कोई वर्ण पदार्थ (लौफ्लर का मेथेलीन ब्ल्यू या कार्बल थियोनिन) एक केवीलरी पिपट की

1. Arteris selrosis 2. Nonne-Apelt test 3. Haemocytometes

सहायता से लेकर भली प्रकार मिला दिया जाता है तथा फिर इसमें जीवकोषों की गणना की जाती है। ध्यान रहे कि इस प्रकार की गणना के लिए द्रव की शीघ्र परीक्षा की जाय, क्योंकि अधिक काल तक रखा रहने से फल शुद्ध नहीं आ सकता। केन्द्रीकरण[1] के पश्चात् तलछट की परीक्षा इसलिए भी कर ली जानी चाहिए कि भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवकोषों का प्रतिशत प्रमाण क्या है। तलछट को लीशमन के रंग द्वारा रंजित किया जा सकता है। सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखे जाने पर एक ही क्षेत्र में तीन से अधिक जीवकोषों का होना विकृति का परिचायक है।

मस्तिष्क व सुषुम्ना की फिरंगज विकृति, क्षयजन्य मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ, सुषुम्ना शोथ, मस्तिष्क शोथ, रस कूल्यान्तर्गत रक्त स्थापन[2] आदि की अवस्था में लिम्फोसायट की संख्या बढ़ जाती है तथा पूयोत्पादक विन्द्राकार जीवाणु-जन्य मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ की अवस्था में पोलीमोर्फन्यूक्लीयर तथा ईओसोनोफिल की संख्या बढ़ जाती है। कर्णमूल[3] तथा खसरे[4] के कारण भी लिम्फोसायट की संख्या बढ़ जा सकती है किन्तु यह विशेष महत्व की नहीं।

(४) वासर मैन परीक्षा—नाड़ी संस्थान की फिरंगजन्य विकृति का सन्देह होने पर सदैव ही मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव की वासरमैन प्रतिक्रिया के लिए परीक्षा की जानी चाहिए क्योंकि रक्तपरीक्षा में यह प्रतिक्रिया यदि व्यक्त नहीं होती तब भी नाड़ी संस्थान के फिरंग का निराकरण नहीं किया जा सकता। फिरंग की द्वितीय अवस्था में मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव में यह परीक्षा ८० प्रतिशत पीड़ित व्यक्तियों में स्पष्ट होती है किन्तु इसके बाद धीरे धीरे या एकदम स्वतः ही या इलाज के फलस्वरूप समाप्त हो जाती है। किन्तु यदि नाड़ी फिरंग[5] की उत्पत्ति होती जा रही है तो मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव में यह परीक्षा व्यक्त ही रहती है।

1. Centri Fugalisation 2. Sinus Turombosis 3. Mumps 4. Measles 5. Neuro-syphlis

मस्तिष्क सुषुम्ना द्रवसम्बन्धी परीक्षा को निम्न तालिका के रूप में व्यक्त किया जा सकता है :—

अवस्था	परीक्षा	भौतिक रूप रंग आदि	रासायनिक परीक्षा मिली ग्राम प्रति १०० सी. सी. पूर्ण प्रोटीन	ग्लोब्यूलिन	ग्लूकोज	क्लोरायड	सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा पोली मौर्फ	लिम्फोसायट	जीवाणवात्मक परीक्षा वाशरमैन	जीवाणु	वर्द्धन व अन्तःक्षेप
प्राकृत		साफ, वर्ण-रहित, थक्का नहीं	२०–३५	०	५०	७२०-७५०	प्रतिघन ०	मिलीमीट ३	—	– –	———
म. द्र. वृषा शोथ	मेनिंगोकोकस-जन्य	गदला पन थक्का की उत्पत्ति	५०–२००	+ – से +	०–१५	६००-६८०	२००–२०००	५–५०	—	मेनिंगकोकस	———
	क्षयजन्य	वर्ण रहित थक्का की उत्पत्ति	२०–२००	+ – से +	१५–६०	४८०-६५०	०–१००	१००–३००	—	क्षय जीवाणु	वर्द्धन एवं अन्तः क्षेप द्वारा निश्चित करना सरल
व्यापकदाढ्यता		साफ वर्ण-रहित	३०–६०	–से +	प्राकृत	प्राकृत	०	५–१००	—	– –	———

नाड़ी फिरंग	फिरंगी पागलपन	वर्णरहित कभी कभी हलका थक्का	४०–१००	+ से +	४५ से ६०	प्राकृत	०–५	५–१००	+	– –	—	— —
	फिरंगी खंजन	साफ, वर्ण रहित	३०–६०	+ से +	४५ से ७०	,,	०	–१००	+	– – –	—	— —
	म.शु.वरण की फिरंगज विकृति	साफ या गदला कभी कभी थक्काका भी निर्माण	५००– २००–	+ से +	प्राकृत	,,	१०–५०	५–५००	+	– – –	—	— —
	तीव्रपूर्ववर्षीय सुषुम्नाशोथ[२]	बहुधा साफ कभी कभी थक्का	३०–६० बाद में १००– २०० ८से१० सप्ताह तक	० से + बाद में + +	१००	,,	१०–१००	बढ़े हुए	—	– – –	—	— —

1. Coguiam 2. Acute Anterior Polimyelitis

अन्य द्रव

मस्तिष्क सुषुम्नाद्रव प्राप्त करने तथा परीक्षा करने की विधि विशेष प्रकार की होने के कारण अलग से वर्णित कर दी गई है। अन्य द्रव जलोरस द्रव[1], जलोदर द्रव,[2] हृदयावरण द्रव[3] जलार्बुद द्रव[4] आदि के प्राप्त करने की विधि तथा परीक्षा एक-सी होने के कारण एक साथ ही वर्णन करना अधिक अच्छा होगा।

वेधन[5]—किसी स्थान से द्रव वेधन द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है। वेधन किसी भी प्रकार की इंजेक्शन सूची से किया जाता है, किन्तु सदैव विशेष प्रकार की वेधन सूची[6] का ही प्रयोग करना चाहिए जो यथार्थ में लम्बी, मजबूत तथा बड़े छिद्रवाली होती हैं। छिद्र इतना बड़ा होना चाहिए कि उसमें हो कर तैलीय पदार्थ प्रवेश कर सके क्योंकि मोटे छिद्रवाली सूची होने पर द्रव यदि गाढ़ा होगा तो भी निकल सकेगा तथा द्रव के निकलने में शीघ्रता होगी। यदि चिकित्सा की दृष्टि से द्रवापहरण[7] भी करना है जैसा कि जलोदर जलोरस आदि के लिये आवश्यक होता है तो सूची एवं सिरिंज के स्थान पर ट्रोकारव के न्यूला[8] का प्रयोग किया जा सकता है।

सूची एवं सिरिंज या ट्रोकार-केन्यूला को तीन मिनट तक उबाल कर शुद्ध कर लिया जाता है। वेधन-स्थान पर स्पिरिट अथवा टिंचर आयोडीन लगा दी जाती है। इसके बाद दूसरी छोटी दो सी. सी. की सिरिंज तथा सूची की सहायता से उस स्थान पर चर्म में एवं चर्म के नीचे स्थानीय संज्ञाहर नोवोकेन, कोकेन, या प्रोकेन या प्रोकेन का घोल प्रविष्ट किया जाता है। स्थानीय संज्ञाहर औषधि द्रव को सीमित करनेवाले आवरण तक पहुँचा दी जानी चाहिए ताकि सूची या ट्रोकार केन्यूला प्रवेश करते समय रोगी को पीड़ा न हो। जलोदर जलोरस की अवस्था क्रमशः यह स्थानीय संज्ञाकर औषधि उदरावरण एवं फुफ्फुसावरण तक पहुँचाना आवश्यक होता है। इसके बाद ३, ४ मिनट तक ठहरा रहे ताकि वह स्थान पूर्णतः संज्ञाहीन हो जाय।

1. Pleural Effusion 2. Ascitic fluid 3. Pericardial effusion 4. Cyst fluid 5. Exploration 6. Exploration needle 7. Tapping 8. Trocar and canula

अब सिरिंज में लगा कर वेधनशूची या ट्रोकार एवं केन्यूला अन्दर की ओर प्रविष्ट किया जाता है। दाएँ हाथ में उचित रीति से शूची या ट्रोकार केन्यूला को पकड़कर उसे शीघ्रता तथा मजबूती के साथ अन्दर प्रविष्ट करना चाहिए। यह भी ध्यान रखना चाहिए की अधिक आगे न बढ़ जाय अथवा किसी शिरा, धमनी या नाड़ी आदि को हानि न पहुँचा दे। शूची जब द्रव के अन्तर्गत पहुँच जाती है तब स्वतः यह अनुभव हो जाता है कि वह द्रव के अन्दर पहुँच गई, क्योंकि प्रवेश करने में हलकापन मालूम पड़ने लगता है। अब पिस्टन को खींचने या केन्यूला को अलग करने पर द्रव निकलने लगता है। यदि न निकले तो शूची को थोड़ा आगे पीछे या इधर उधर किया जाता है ताकि द्रव निकलने लगे।

वेधनस्थान-*जलोदर के लिए*—जलोदर का अर्थ है उदरगुहा के अन्तर्गत जल का एकत्रित हो जाना। इसके लिए किये जाने वाले वेधनकर्म को उदर-वेधन[1] नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। उदरवेधन बहुधा चिकित्सा की दृष्टि से ही किया जाता है ताकि अनावश्यक पानी को उदर में से निकाल कर रोगी के कष्ट को कम किया जा सके। बहुत कुछ सम्भावना इस बात की रहती है कि वेधन के पश्चात् बार-बार पानी एकत्रित हो जाता है तथा उस को बार-बार निकालना पड़ता है।

रोगी को पलंग पर या आराम कुर्सी पर अधलेटी अवस्था में कर लिया जाता है। वेधन करने से पहले यह आवश्यक है कि मूत्राशय को रिक्त कर लिया जाय। इसके लिए यह हो सकता है कि रोगी स्वतः मूत्र कर ले अथवा मूत्र नलिका की सहायता से मूत्र करा दिया जाय। वेधन विटप सन्धि एवं नाभि के बीच में मध्य-रेखा से थोड़ा इधर उधर हट कर करना चाहिए। उपरोक्त विधि से इसी स्थल पर ट्रोकार एवं केन्यूला अन्दर प्रविष्ट कर दिया जाता है। प्रवेश करने तथा केन्यूला निकालने के बाद यह हो सकता है कि ट्रोकार के साथ रबर की नली लगा दी जाय ताकि द्रव नीचे रखे बर्तन में एकत्रित होता रहे।

जलोरस—जलोरस[2] से तात्पर्य वक्षप्रान्त में एक ओर अथवा दोनों ओर फुफ्फुसावरणों के मध्य में जल का एकत्रित हो जाना है। उरःवेधन[3] का निश्चित

1. Paracentasis 2. Pleuricy with effusion 3. Paracentasis thoracis

स्थान फुफ्फुसावरण के अन्तर्गत जल की स्थिति पर निर्भर करता है। जल यदि सम्पूर्ण गुहा में एकत्रित है तो वेधन-कर्म मध्य कक्षा रेखा[1] में पंचम या छठे पर्शुकान्तरिक स्थान[2] में अथवा आठवें पर्शुकान्तरिक स्थान में पीछे की ओर स्कन्धास्थि शीर्ष[3] के ठीक नीचे करना चाहिए। यदि जल किसी स्थान विशेष पर सीमित[4] है तो ताड़न के द्वारा जिस स्थान पर सर्वाधिक मन्द ध्वनि मिले उसी स्थान पर करना चाहिए। क्ष-किरण द्वारा परीक्षा कर के भी यह स्थान निश्चित किया जा सकता है।

वेधनकर्म पूर्णतः उपरोक्त विधि से ही करना चाहिए। वेधन के समय शूची का रुख ऊपर तथा थोड़ा अन्दर की ओर रखा जाता है।

जलार्बुद या अन्य सीमित स्थान पर से द्रव निकालने के लिए वेधन स्थान सदैव रोग की स्थिति के अनुसार तय किया जाना चाहिए। साधारणतया यह ध्यान रखना है कि जिस स्थान पर वेधन किया जाता है उसके निकट कोई महत्व-पूर्ण अंग न हो तथा उस स्थल पर द्रव चर्म के अधिक से अधिक निकट हो।

द्रव परीक्षा—जीवकोष अथवा जीवाणुसम्बन्धी परीक्षा के लिए लगभग १० सी. सी. द्रव लिया जाता है तथा उसको कुछ समय के लिए स्थिर रहने देते हैं अथवा केन्द्रीकरण द्वारा तलछट को अलग करते हैं। तलछट की परीक्षा भिन्न-भिन्न जीवकोषों या जीवाणुओं के लिये की जाती है तथा यदि आवश्यकता हो तो उसी से बर्द्धन किया जाता एवं प्राणियों में अन्तःक्षेप द्वारा भी परीक्षा की जाती है। तलछट की परीक्षा द्वारा ही किसी प्रकार की घातक वृद्धि का भी अनु-मान लगाया जा सकता है। नितारने से प्राप्त ऊपरी द्रव की रासायनिक परीक्षा की जाती है।

भौतिक परीक्षा की दृष्टि से सर्वप्रथम द्रव का रंग देखना चाहिए और यह अनुमान लगाना चाहिए कि द्रव में रक्तमिश्रित तो नहीं। रक्त के सम्बन्ध में यह बात भी ध्यान में रखनी है कि वेधन के कारण भी थोड़ा बहुत रक्त निकल कर द्रव में मिल जा सकता है। इस बात का निश्चय करने के लिए यह किया

1. Mid-axillary line 2. Intercostal space 3, Tip of Scapula 4. Encysted

जा सकता है कि द्रव कई परखनलियों में लिया जाय। यदि रक्त की मात्रा परख नलियों में क्रमशः घटती जाती है तो निश्चित है कि रक्त वेधन के कारण ही मिल गया है। यह भी देखना चाहिए कि द्रव साफ पारदर्शक, अर्द्धपारदर्शक या अपारदर्शक है। सामान्यतया प्रत्येक द्रव साफ पारदर्शक होना चाहिए। अपारदर्शकता पूय की उपस्थिति के कारण हो सकती है जो द्रव के थोड़ी देर तक स्थिर रहने पर नीचे तल में बैठ जाती है। अर्द्ध-पारदर्शकता बसा अथवा अधिक संख्या में जीवाणुओं की उपस्थिति के कारण हो सकती है। बसा की उपस्थिति होने पर द्रव दूधिया वर्ण का हो जाता है जैसा कि श्लीपद रोग में अथवा किसी अर्बुद आदि के कारण लसीका वाहनी के अवरोध होने पर हो सकता है। इस प्रकार का दूधिया द्रव वक्ष प्रान्त में बहुधा तथा उदर प्रान्त में कभी-कभी मिल सकता है। बसा की निश्चिती करने के लिए द्रव में थोड़ा कास्टिक पुटाश का घोल मिलाने के बाद ईथर मिला कर हिलाओ। ऐसा करने से बसा ईथर में घुल जायगी। इस मिश्रण की कुछ बूंदे यदि ब्लाटिंग पेपर पर डाल कर सुखा दी जायं तो ईथर के उड़ जाने से ब्लाटिंग पेपर पर धब्बा पड़ जायगा। कुछ द्रव फायब्रिन की उपस्थिति के कारण थोड़े समय में ही जम जाते हैं। इस प्रकार की स्थिति होने पर यदि द्रव को परीक्षार्थ बाहर भेजना हो तो उस में थोड़ा सोडा सायट्रास मिलाया जा सकता है।

तलछट का वर्ण देखा जाता है। रक्त वर्ण रक्त कणों के कारण, श्वेत वर्ण श्वेत कण, पूय या कैंसर जीवकोषों के कारण हो सकता है।

पिपट की सहायता से तलछट का कुछ भाग लिया जाता है तथा उसकी एक बूंद काचपट्ट पर रख कर प्रलेप तैयार कर सूक्ष्म दर्शक द्वारा परीक्षा की जाती है। केन्द्रीकरण द्वारा तलछट तैयार करके परीक्षा करने में और भी सुविधा रहती है। प्रलेप को कार्बल थियोनिन या लीशमन के वर्ण द्वारा रंजित किया जा सकता है।

सूक्ष्मदर्शक द्वारा परीक्षा करने पर निम्न बातें देखी जा सकती हैं:—

(१) एण्डोथीलियल जीवकोष—ये जीवकोष गुहा को सीमित करने वाली झिल्ली के आन्तरिक स्तर की ओर से आये हुए होते हैं। निष्क्रिय

निस्सरण[1] में केवल यही जीवकोष पाये जा सकते हैं। जातक वृद्धि होने की अवस्था में कैंसर जीवकोष भी देखे जा सकते हैं किन्तु सामान्यतया दूसरे जीवकोषों से इन को पृथक करना आसान नहीं, विशेषरूप से परीक्षा करने पर ही यह सम्भव हो सकता है।

(२) कोलेस्टरोल, वसाम्ल के कण या मांसपेशियों के टुकड़े भी दिखाई पड़ सकते हैं।

(३) परिवर्तित रक्तकण एवं श्वेतकण या पूय जीवकोष भी मिल सकते हैं। तलछट की एक बूँद में यदि मीथायल ग्रीन मिश्रित एसीटिक एसिड के १ प्रतिशत घोल का कुछ अंश मिला कर परीक्षा की जाय तो पूय जीवकोषों की परीक्षा में बहुत सहायता मिलती है क्योंकि ऐसा करने से जीव कोषों के केन्द्र स्पष्ट हो जाते हैं। तीव्र शोथजन्य स्राव में पोलीयोर्कन्यूक्लीयर की अधिकता रहती है जब कि फिरंगज या क्षयज उपसर्गजन्य स्राव में लिम्फोसायट की अधिकता रहती है।

(द्रव की जीवाण्वात्मक परीक्षा का वर्णन अन्यत्र किया गया है।)

द्रव की रासायनिक परीक्षा प्रधानतः प्रतिक्रिया (क्षारीय अथवा आम्लीय) शर्करा तथा एलब्यूमिन के लिए की जाती है। यह परीक्षा पूर्णतः मूत्र परीक्षा की तरह ही है। द्रव का आपेक्षिक घनत्व भी मालूम किया जाना चाहिए। रासायनिक परीक्षा द्वारा बहुत कुछ इस बात का अनुमान लगाया जाता है कि द्रव निष्क्रिय निस्सरण[2] है अथवा शोथजन्य स्राव[3], जैसा कि अध्याय के प्रारम्भ में ही संकेत किया जा चुका है। निष्क्रिय निस्सरण से तात्पर्य हृदय अथवा वृक्क की विकृति के कारण एकत्रित द्रव पदार्थ से है जो उदर एवं वक्ष गुहा या चर्म के नीचे ही एकत्रित हो जाता है जब कि शोथजन्य स्राव से तात्पर्य उस द्रव से है जो शोथविशेष कर फिरंगज पर क्षयज के कारण किसी स्थान विशेष पर एकत्रित हो जाता है। दोनों प्रकार के ही द्रव रंग रूप में एक-से होते हुए भी सूक्ष्म दर्शक परीक्षा द्वारा पृथक् पृथक् किये जा सकते हैं। रासायनिक परीक्षा की दृष्टि से यह ध्यान रखना है कि १०१८ से अधिक आपेक्षिक घनत्व तथा ४ प्रतिशत

1. Passive Transudate 2. Passive effusion Transudate 3. Inflamanatory exudate

से अधिक प्रोटीन का होना शोथजन्य स्राव का द्योतक तथा १०१५ से कम आपेक्षिक घनत्व तथा २·५ प्रतिशत से कम प्रोटीन निष्क्रिय निस्सरण की परिचायक है। १०१५ एवं १०१८ के मध्य का आपेक्षिक घनत्व तथा २·५ से ४ प्रतिशत तक प्रोटीन की उपस्थिति सन्देहात्मक स्थिति की द्योतक है।

यकृत वेधन—यह शल्यकर्म पूय निकालने अथवा कालाज़ार की परीक्षा के लिए रक्त निकालने के लिए किया जाता है। यकृत पूय बहुधा एमीबाके कारण उत्पन्न हो जाया करती है। विषम ज्वर की तरह का ज्वर तथा यकृत प्रदेश में पीड़नाक्षमता इसके प्रधान लक्षण हैं। इस शल्यकर्म के सम्बन्ध में इस बात की खास तौर से सावधानी रखनी है कि अधोगामी महाशिरा[1] को क्षति न पहुँच जाय। इस सम्बन्ध में इस साधारण नियम का ध्यान रखना है कि सुई ३½ इंच से अधिक लम्बी न हो। यदि लम्बी हो तो शिरे की ओर ३½ इंच भाग खुला छोड़कर बाकी पर चिपकने वाला कपड़ा लपेटा जा सकता है ताकि सुई अधिक अन्दर प्रविष्ट ही न कर सके। स्थान को संज्ञाहीन बना लेने के पश्चात् सुई सर्वाधिक पीड़नाक्षमता के स्थान पर अथवा आठवीं, नवीं या दसवीं पशुकान्तरिक स्थान पर मध्य कक्षा रेखा में अन्दर प्रविष्ट की जाती है। प्रवेश करते समय सुई का रुख मध्य रेखा की ओर तथा किंचित् ऊपर की ओर रक्खा जाता है। ध्यान रहे कि सुई का छिद्र बड़ा हो ताकि गाढ़ी पूय उसमें होकर निकल सके। सिरिंज के पिस्टन को खींचे रखना चाहिए ताकि वहाँ शून्य स्थान उत्पन्न होने के कारण जैसे ही सुई पूय के स्थान में प्रविष्ट करे, पूय सिरिंज में आ जाय। यदि प्रथम प्रयास में ही सुई पूय में नहीं पहुँचती तो सुई को इधर उधर करके पूय तक पहुँचाने का प्रयत्न किया जाता है।

जितनी भी हो सके पूय निकाल ली जानी चाहिए तथा उसके स्थान पर वायु प्रविष्ट कर दी जानी चाहिए। जितनी पूय निकाली गई है उसकी लगभग आधी वायु प्रविष्ट की जा सकती है। इसके बाद एमेटीन आदि के द्वारा रोगी की चिकित्सा करे।

प्लीहावेधन—यह शल्यकर्म कालाजार की परीक्षा के लिए किया जाता है। कालाजार की प्रारम्भिक अवस्था, रक्ताल्पता के साथ चिरकालीन काला-

1. Inferior Venacava

ज्वर, रक्तस्राव की प्रवृत्ति, श्वेतकण ह्रास, जलोदर, अतिसार, श्वासनलिका शोथ आदि अवस्थाओं में यह शल्य कर्म न करे। जिस रोगी की प्लीहा अधिक कड़ी होती है उसमें यह शल्य कर्म आसानी से किया जा सकता है।

रोगी को प्रातः ही २० ग्रेन केल्सियम लेक्टेट या ग्लूकोनेट मुख द्वारा दे दिया जाता है। इसके बाद पुनः दस बजे इतनी ही मात्रा देते हैं। वेधन करने के लिए एक सिरिंज तथा लम्बी सुई ली जाती है। इसको उबाल कर शुद्ध कर लिया जाना चाहिए तथा शुद्ध समबल लवण जल अथवा लीक्विड पैराफिन से भी धो लिया जाना चाहिए। रोगी को चित्त लिटा लिया जाता है तथा सहायक उदर की ओर से प्लीहा को स्थिर रखता है। वेधन के स्थान पर थोड़ी स्पिरिट या टिंचर आयोडीन लगाकर सिरिंज में लगी सुई प्रविष्ट की जाती है। दो एक बार पिस्टन को खींचकर चूषण करके रक्त लेने के बाद सुई निकाल ली जाती है। कुल कार्य में १०-१५ सेकण्ड लगने चाहिए और अच्छा हो यदि रोगी इस समय में अपनी साँस बन्द रखे। सिरिंज में का रक्त दो तीन काचपट्टों पर डाला जाता है और सुई फैलाकर उसका प्रलेप तैयार कर लीशमन या जीम्सा के रंग से रंजित करके परीक्षा की जाती है। गुच्छों के रूप में जीवाणु देखे जा सकते हैं।

वक्षास्थिवेधन—यह शल्यकर्म कभी कभी तीव्र स्वरूप की रक्ताल्पता तथा श्वेत कण ह्रास की परीक्षा के लिए अस्थिमज्जा निकालने के लिए किया जाता है। कालाज़ार जीवाणु दर्शन के अतिरिक्त और भी कई रोग ऐसे हैं जिनके लिए इस परीक्षा की आवश्यकता होती है। शल्यकर्म तथा परीक्षा दोनों ही बहुत कठिन हैं तथा इनकी आवश्यकता भी बहुत कम पड़ा करती है अतः इसका वर्णन इस स्थलपर नहीं किया जाता है, इसके लिए अन्य साहित्य देखा जाना चाहिए।

फुफ्फुसवेधन—जब थूक उपलब्ध न हो किन्तु भौतिक परीक्षा द्वारा फुफ्फुस के अन्दर विकृत स्थान निश्चित किया जा सके तो एक लम्बी सुई तथा सिरिंज की सहायता से उसी स्थान से द्रव निकालकर उसकी सूक्ष्मदर्शक द्वारा अथवा वर्द्धन द्वारा परीक्षा करने से रोगोत्पादक जीवाणु का निश्चय किया जा सकता है।

लसीकाग्रन्थिवेधन—प्लेग, निद्राज्वर अथवा फिरंग के जीवाणु को देखने के लिए यह शल्य कर्म किया जाता है। दो सी. सी. की शुद्ध सिरिंज तथा सुई की सहायता से इसके करने में कोई कठिनाई नहीं।

अष्टम अध्याय

जीवाणवात्मक-परीक्षा

ऐलोपैथिक चिकित्सा की सफलता का एक प्रधान कारण जीवाणु वाद की मान्यता तथा तत्सम्बन्धी दिन पर दिन विशेष प्रगति है। बहुत दिन पूर्व ही यह निर्विवाद सिद्ध हो चुका है कि बहुत से रोगों के कारण जीवाणु हुआ करते हैं। शरीर के किसी स्रावविशेष में इनका पाया जाना इस रोग का एक निश्चित निदानकर लक्षण हुआ करता है—यदि कफ में क्षय के जीवाणु मिल जाते हैं तो इसमें सन्देह नहीं किया जा सकता कि रोगी क्षय से पीड़ित है।

जीवाणुओं सम्बन्धी पूरी जानकारी इस स्थल पर नहीं दी जा सकती क्योंकि यह अलग से एक स्वतन्त्र विषय है। इस स्थल पर हमको केवल यह देखना है कि भिन्न भिन्न स्रावों, मल, मूत्र, कफ आदि में जीवाणुओं की उपस्थिति का ज्ञान कैसे किया जा सकता है।

इस प्रकार की परीक्षा के लिए विशेष सामान की भी आवश्यकता नहीं पड़ती। एक सूक्ष्मदर्शक यंत्र, कुछ काचपट्ट[1] एवं कवरग्लास; प्लेटीनम का तार, स्पिरिट लैंप; काँच की कुछ बोतलें एवं परखनलियाँ तथा रासायनिक पदार्थों में शुद्ध परिश्रुत जल, गन्धक का शुद्ध तेजाब (२५ प्रतिशत), तथा स्पिरिट (७५ प्रतिशत) आवश्यक है। रंजन के लिए मेथेलीन ब्ल्यू. मीथायल वायलेट, न्यूट्रल-रैड, कार्बल फ्यूसिन, लीशमन स्टेन, शुद्ध सुरासार[2] ग्राम का आयोडीन घोल (२ प्रतिशत पोटास आयोडायड के घोल में १ प्रतिशत आयोडीन) चाहिए।

1. Slide 2. Absolute Alcohal

परीक्षा विधि—एक साफ शुद्ध काच पट्ट लेकर उसके ऊपर जिस पदार्थ की परीक्षा करनी है उसमें से थोड़ा सा रख दो तथा प्लेटीनम तार की सहायता से उसको अठन्नी के बराबर क्षेत्र में एक-सा फैला दो। इस प्रकार परीक्ष्य पदार्थ का पतला प्रलेप सा काच पट्टपर तैयार हो जाता है। यदि परीक्ष्य पदार्थ को अधिक दृढ़ होने के कारण फैलाने में कठिनाई होती हो तो एक बूंद पानी भी मिलाया जा सकता है। काचपट्ट को हवा में सूखने के लिए छोड़ दिया जाता है तथा बाद में स्पिरिटलैंप पर थोड़ा गर्म किया जाता है ताकि पदार्थ काचपट्ट पर भली प्रकार चिपक जाय। यहाँ ध्यान रखना चाहिए कि अधिक गर्म करना ठीक नहीं। काचपट्ट को साधारणतया इतना गर्म करना चाहिए कि वह हाथ के पिछले भाग को काफी गर्म मालूम पड़े। अब काचपट्ट को ठण्डा होने दिया जाता है तथा निम्न प्रकार से रंजित किया जाता है।

(१) **मेथेलीन ब्ल्यू**—एक साधारण रंजक पदार्थ है जो पूय आदि की परीक्षा के लिए काम में लाया जाता है। मेथलीन ब्ल्यूके जलीय घोल की कुछ बूंदें डालकर ½–२ मिनट के लिए छोड़ दो। बाद में पानी से स्लायड को भली प्रकार धो डालो तथा $\frac{1}{12}$ ओयल इम्मर्सन आब्जेक्टिव[1] द्वारा परीक्षा करो।

(२) **ग्राम जीन्सन[2] की रंजन-पद्धति**—मीथायल वायलेट (६ बी) के ½ प्रतिशत जलीय घोल से प्रलेप को धो डालो तथा २ मिनट तक ढंका रहने दो। इसके बाद ग्राम के आयोडीन घोल से मीथायल वायलेट को धो डालो तथा २ मिनट तक उसको प्रलेप के ऊपर रहने दो। अब आयोडीन घोल को अलग कर के शुद्ध शुरासार की सहायता से काचपट्ट को भली प्रकार धो डालो, यहाँ तक कि रंग को और अधिक न धोया जा सके किन्तु इस सब कार्य में २½ मिनट से अधिक नहीं लगना चाहिए। अन्त में शुद्ध परिश्रुत जल से भली प्रकार धोकर न्यूट्रल-रैड के १ : १००० जलीय घोल को काफी मात्रा में स्लायड के ऊपर डाल दो। ½–२ मिनट तक रहने के बाद पानी से धोकर तथा सुखाकर $\frac{1}{12}$ ओब्जेक्टिव द्वारा परीक्षा करो। ***ग्राम धनात्मक[3] जीवाणु बेंजनी या काले रंजित हो जाते हैं तथा ग्राम ऋणात्मक गुलाबी रंग जाते हैं।***

1. 1/12 Oil immersion objective 2. Gram Jensen's Method 3. Gram-positive 4. Gram-Negative

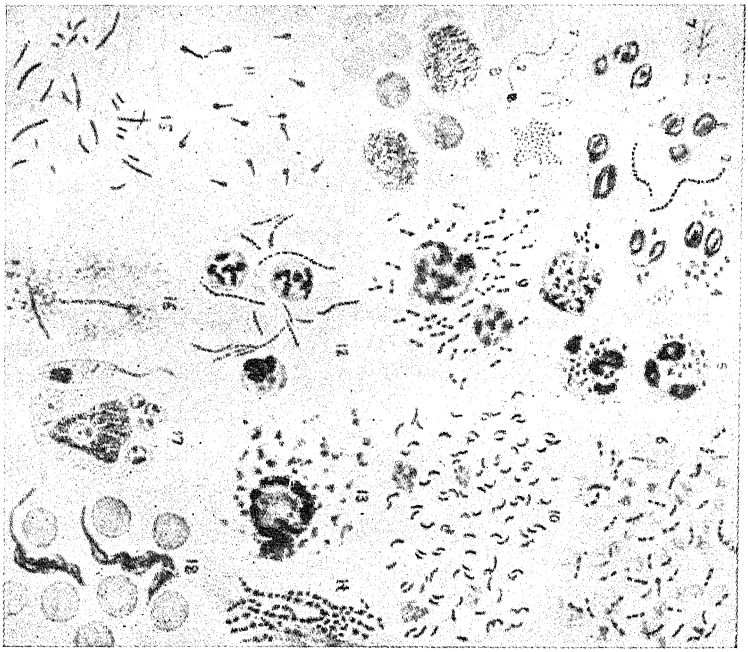

चित्र सं० ३८—ग्राम धनात्मक एवं ऋणात्मक भिन्न २ जीवाणु ।
१–न्युमोकोक्कस, २–स्ट्रेप्टोकोक्कस, ३–स्टैफिलाकोक्कस, ४–लिंगोमेकोक्कस, ५–गोनोकोक्कस, ६–रोहिणी जीवाणु, ७–क्षय जीवाणु, ८–कुष्ट जीवाणु, ९–प्लेग जीवाणु, १०–कौमावेसीलस, ११–टिटेनस वेसीलस, १२–एन्थ्रेक्स १३–एक्टीनोमायकोसिस, १४–दद्रु, १५–बिसैंट सीलस, १६–स्पायरो कीटा पैलिग (फिरग), १७–कालाजार का जीवाणु, १८–ट्रप्नोसोम

(वर्णन पृ० १३७ पर)

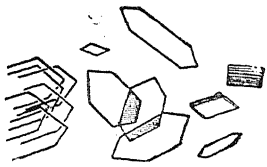

चित्र सं० ८--यूरिक एसिड कण
वर्णन पृ० ४६ पर)

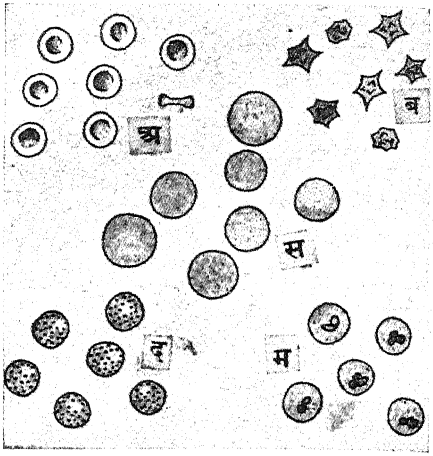

चित्र सं०—१५ भिन्न भिन्न प्रकार के रक्त कण।
(वर्णन पृ० ६४ पर)।

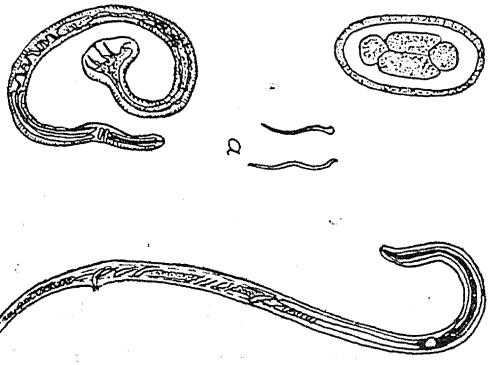

चित्र सं० २६—अंकुश मुख कृमि—स्त्री (बड़ा) एवं पुरुष कृमि। अ—ओवा।
(वर्णन पृ० ६६ पर)

(३) डिप्थीरिया जीवाणु के लिए नेसर[1] की रंजन-पद्धति—इस के लिये निम्न दो प्यालों की आवश्यकता पड़ती है—

(१) नेसर का मेथेलीन ब्ल्यू—मेथेलीन ब्ल्यू...$\frac{1}{3}$ ग्राम
शुद्ध शुरासार...१० सी० सी०
ग्लेसियल ऐसीटिक एसिड...२५ सी० सी०
शुद्ध परिश्रुत जल...५०० सी० सी०

प्रथम मेथेलीन ब्ल्यू को एल्कोहल में घोल लिया जाता है तथा बाद में उसे एसीटिक एसिड एवं जल के मिश्रण में मिला दिया जाता है ।

(२) विस्मार्क ब्राउन—विसमार्क ब्राउन$\frac{1}{2}$ ग्राम को २५० सी. सी. जल में घोल दिया जाता है ।

प्रथम घोल स्लायड पर डाल कर लगभग १ मिनट तक छोड़ दिया जाता है तथा बाद में उसको पानी से धो देते हैं तथा विस्मार्क ब्राउन को लगभग $\frac{1}{2}$ मिनट के लिए डाल देते हैं । पानी से धोकर सुखाकर परीक्षा की जाती है । डिप्थीरिया जीवाणु बादामी रंग से रंजित हो जाते हैं जिन के एक या दोनों शिरों पर काले कण लगे रहते हैं । चित्र (३८)

(४) क्षय-जीवाणु के लिए ज़ील नील्सन[2] की रंजन-पद्धति—स्लायड के ऊपर फिल्टर किया हुआ शुद्ध कार्बल फ्यूसिन खूब डाल दो तथा स्लायड को स्पिरिट लैंप पर हलका गर्म करो यहाँ तक कि हलकी हलकी वाष्प निकलने लगे । ४–५ मिनट तक रंग पदार्थ को स्लायड पर ही पड़ा रहने दो । बीच बीच में यह गर्म किया जा सकता है किन्तु यह ध्यान रहना चाहिए कि रंग पदार्थ स्लायड पर ही शुष्क न हो जाय । पानी से धो डालो तथा थोड़े समय के लिए २५ प्रतिशत गन्धक के तेज़ाब में स्लायड को डूबा रहने दो । गन्धक के तेज़ाब के पश्चात् उतने ही समय तक के लिए स्लायड ७५ प्रतिशत स्पिरिट में डूबी रहनी चाहिए । गंधक के तेज़ाब तथा स्पिरिट में डुबाने की यह क्रिया इतने समय तक करनी चाहिए कि पानी से धोने पर स्लायड रंगरहित या हलके रंग की ही मालूम पड़ने लगे । इसके बाद मेथलीन ब्ल्यू से रंजित करने के बाद धो डालो तथा सुखाकर ओयल

1. Neisser's stain 2. Zichl Nealsen

इम्मर्सन की सहायता से परीक्षा करो। धरातल पर रक्तवर्ण क्षय के जीवाणु आसानी से देखे जा सकते हैं। (चित्र ३६)

ग्राम घनात्मक एवं ऋणात्मक निम्न जीवाणु रोगोत्पादक हुआ करते हैं जो बहुधा देखे जाते हैं। (चित्र ४०)

ग्राम घनात्मक दण्डाकार—

(१) *बी-डिप्थीरिया*—यह डिप्थीरिया का उत्पादक जीवाणु है जिसकी नेसर की पद्धति से भी परीक्षा की जा सकती है। सन्देह की अवस्था में वर्द्धन करके भी निश्चय किया जा सकता है। यह गले से ली गई झिल्ली में पाया जा सकता है।

(२) *बेसीलस टिटेनी*—यह धनुर्वात का उत्पादक जीवाणु है जो व्रण से लिए गए स्राव में देखा जा सकता है। इसका आकार ढोल-दण्ड (ढोल बजाने के डण्डे) के समान होता है। वर्द्धन या प्राणियों में अन्तःक्षेप करके भी इसकी परीक्षा की जा सकती है।

(३) *बेसीलस ट्यूबरक्युलोसिस*—यह क्षय रोग का उत्पादक जीवाणु है जो पीड़ित व्यक्ति के कफ में पाया जाता है। ग्राम धनात्मक होते हुए भी ज़ील नील्सन विधि से इसकी परीक्षा करना ठीक है।

(४) *बेसीलस एन्थ्रेसिस*—यह एन्थ्रेक्स का उत्पादक जीवाणु है जो एन्थ्रेक्सजन्य फलक के स्राव में पाया जाता है। वर्द्धन द्वारा भी इसकी निश्चिती की जा सकती है। जीवाणु बड़ा होता है तथा जोड़े या शृंखला[1] में पाया जाता है।

(५) *स्ट्रप्टोथ्रिक्स एक्टीनोमायकोसिस*[2]—यह फुफ्फुस में या यकृत में एक विशेष प्रकार की विकृति उत्पन्न करता है। इसके लिए परीक्षा करते समय गन्धक कणों[3] के लिए खास तौर से देख-भाल की जानी चाहिए। थोड़ी पूय को पानी या समबल लवण जल के साथ परखनली में खूब मिलाओ तथा ४-५ मिनट के लिए छोड़ दो, कण तल में बैठ जायंगे। इस विधि को दो तीन बार दुहराओ यहाँ तक कि ऊपर का पानी बिलकुल साथ आने लगे। कुछ कण लेकर उनको

1. Chains 2. Streptothrix actinomycosis 3. Sulphur grambles

स्लायड पर कवर ग्लास द्वारा ही दबाकर तोड़ने के बाद ग्राम विधि से रञ्जित करने के बाद परीक्षा करो। ग्राम घनात्मक फिलामेंट[1] मध्य में देखे जा सकते हैं तथा कण के बाहरी भाग में ग्राम ऋणात्मक गदाकार अंग में दिखाई दे सकते हैं।

ग्राम घनात्मक विन्द्वाकार–

(१) स्ट्रप्टो कोकाई—शृंखलाओं में तथा *(२) स्टेफ्लोकोकाई*—गुच्छों[2] के रूप में देखे जा सकते हैं। ये दोनों ही प्रकार के जीवाणु पूयोत्पादक हैं।

(३) यून्मो कोकस निमोनिया का जीवाणु जोड़ों में दिखाई पड़ता है। जीवाणु के चारों ओर आवरण सा भी दिखाई दे सकता है।

ग्राम ऋणात्मक दण्डाकार—

(१) बेसीलस पेस्टिस—प्लेग का जीवाणु जो ग्रन्थि के साथ पूय में पाया जा सकता है। रक्त में तथा फुफ्फुस में विकृति होने पर यह कफ में भी देखा जा सकता है। इसे विन्द्वाकार दण्ड जीवाणु[3] भी कहा जाता है क्योंकि इसके दोनों शिरे मध्य की अपेक्षा अधिक रंजित हो जाने से साफ-साफ दिखने लगते हैं। वर्द्धन एवं प्राणियों में अन्तःक्षेप द्वारा भी निश्चिती की जा सकती है।

(२) बेसीलस पट्यूसिस—कुकुरखांसी का जीवाणु, यह अण्डाकार छोटा जीवाणु होता है जो इन्फ्लुएंजा के जीवाणु के सदृश दिखाई पड़ता है। रोग से पीड़ित व्यक्ति के कफ में पाया जाता है।

(३) बेसीलस टायफाड–डिसेंटरी कोलाई—ये सभी दण्डाकार जीवाणु आकार में लगभग मिलते-जुलते हैं जो रोग से पीड़ित व्यक्ति के मल में पाये जाते हैं। रोग के लक्षणों से या जीवाणु की वृद्धि तथा अन्य विधियों से निश्चित निदान किया जा सकता है।

(४) बेसीलस इन्फ्लूएंजा–यह बहुत छोटा दण्डाकार ग्राम ऋणात्मक जीवाणु है जो कार्बल फ्यूसिन द्वारा और भी अच्छी तरह रंजित किया जा सकता है।

ग्राम ऋणात्मक विन्द्वाकार—

(१) मेनिंगोकोक्कस—यह मस्तिष्क सुषुम्ना ज्वर (गर्दनतोड़ बुखार) का जीवाणु है जो मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव में ही पाया जा सकता है। इस द्रव में

1. Pitament 2. Clumps and bunches 3. Cocco-bacillus

पाये जाने वाले गोनोकोकस सदृश जीवाणु को मेनिंगो कोकस ही समझा जाना चाहिए। द्रव की वृद्धि करके भी इसका निश्चय किया जा सकता है। न्यूमोकोकस तथा मेनिंगोकोकस दोनों के ही लिए कुछ समय पूर्व प्रकार निश्चित करने की आवश्यकता पड़ा करती थी ताकि प्रकार निश्चित करके उसी विशेष प्रकार के जीवाणु के लिए उचित सीरम का प्रयोग किया जा सके। किन्तु आज-कल पैनीसलीन एवं सल्फा विभाग की औषधियों के प्रयोग के लिए प्रकार निश्चित करने की भी कोई आवश्यकता नहीं, क्योंकि ये औषधियां प्रत्येक प्रकार के जीवाणु के लिए घातक है।

(२) गोनोकोक्कस—यह पूयमेह (सुजाक) का जीवाणु है जो पूयमेह-जन्य पूय में दो-दो के जोड़ा में पाया जाता है, वृक्काकार होता है तथा पूय जीवकोष[1] के अन्तर्गत ही बहुधा देखा जाता है।

(३) मायक्रोकोक्कस कटारलिस[2]—यहभी कफ में पाया जाता है।

उपर्युक्त के अतिरिक्त भी और बहुत से जीवाणु हैं जो रोग की उत्पत्ति कर सकते हैं, किन्तु विशेष महत्त्व के न होने के कारण उन को यहाँ सम्मिलित नहीं किया जाता। मलेरिया ज्वर एवं कालाज़ार आदि के जीवाणुओं का वर्णन रक्त परीक्षा के साथ दिया गया है। मल में पाये जाने वाले जीवाणुओं का वर्णन मल परीक्षा के साथ कर दिया गया है। सिफलिस के जीवाणु की परीक्षाविधि बिलकुल अलग है।

स्पायरोकीट[3] पैलिडा (ट्रपीनीमा पैलिडा)—यह सिफलिस (आतशक, फिरंग या गर्मी) का जीवाणु प्राथमिक व्रण के स्राव में पाया जाता है। ध्यान रखना चाहिए कि फिरंग के लिए बहुधा की जानेवाली वाशर[4] मैन या दहन परीक्षा प्राथमिक व्रण उत्पन्न होने के १–२ सप्ताह बाद ही व्यक्त हो जाती है अतः रोग के प्रारम्भ में रोग निश्चिती का एक मात्र साधन व्रण स्राव की परीक्षा करना ही है किन्तु यह परीक्षा कठिन अवश्य है।

व्रण को एक शुद्ध रुई के फाए से नमक घोल में डुबा कर साफ कर दिया जाना चाहिए, किसी जन्तुघ्न पदार्थ का प्रयोग नहीं किया जाना चाहिए। व्रण को साफ करने के पश्चात् दबा कर द्रव रस निकाला जाता है। यदि यह द्रव

1. Pus cell 2. Micrococcus catarrhalis 3. Spirochaeta Pallida 4. Treponews Pallida

रस रक्तरंजित है तो उसको नहीं लिया जाना चाहिए बल्कि साफ कर दिया जाना चाहिए। एक केपीलरी ट्यूब लगा कर उसमें द्रव रस भर लिया जाता है। केपीलरी ट्यूब को दोनों शिरों पर गर्म कर के बन्द कर दिया जाता है। ध्यान रखना चाहिए कि दोनों शिरों को ही गर्म किया जाय, बीच में द्रव रस को नहीं। केपीलरी ट्यूब लेबोरेटरी भेज दिया जाता है जहाँ उसकी परीक्षा की जाती है।

जीवाणु कोर्कस्क्रू[1] की तरह वक्राकार होता है।

जीवाणुओं की वृद्धि एवं प्राणियों में अन्तःक्षेप—उपर्युक्त विधि से परीक्षा करने पर जीवाणुओं के पाये जाने पर ही उन जीवाणुओं से उत्पन्न रोग का निश्चित निदान किया जा सकता है। किन्तु जीवाणुओं के कम होने पर या किन्हीं अन्य कारणों से ऐसा भी हो सकता है कि परीक्षा करते समय जीवाणु मिल ही न सकें और रोग के लक्षण ऐसे हों जो रोग का सन्देह उत्पन्न करते हों। ऐसी अवस्था में यह आवश्यक हो जाता है कि अन्य प्रकार से जीवाणुओं की उपस्थिति का निश्चय किया जाय। यह निश्चय जीवाणुओं की वर्द्धन द्रव्य में वृद्धि करके तथा जीवाणुयुक्त द्रव का प्राणियों (शशक आदि) में अन्तःक्षेप करके किया जा सकता है। मल-मूत्र या थूक में सम्मिलित जीवाणुओं की इस प्रकार वृद्धि की जाती है। परीक्ष्य द्रव के थोड़े से अंश किसी वर्द्धन द्रव (अण्डे का रस आदि) में मिला दिये जाते हैं और फिर उसको इन्क्यूबेटर को उचित स्थान पर रख दिया जाता है ताकि जीवाणु बढ़ते रह सकें। कुछ समय पश्चात् वर्द्धन द्रव की परीक्षा की जाती है तथा निश्चय किया जाता है कि बर्द्धन हो जाने के कारण संशयित जीवाणु अब उस में पाये जाते हैं अथवा नहीं।

जीवाणु युक्त द्रव को अन्तःक्षेप द्वारा किसी शशक या अन्य प्राणी के शरीर में पहुँचाया जाता है। यदि अन्तःक्षेप द्वारा पहुँचाये गये द्रव में संशयित जीवाणु उपस्थित हैं तो यह निश्चित है कि उस प्राणी में उसी रोग की उत्पत्ति हो जायगी और इस के आधार पर निश्चित निदान किया जा सकेगा।

किन्तु इस विधि से निदान करने में बहुत विलम्ब लग जाता है और तब तक डिप्थीरिया या टिटनस जैसे रोगों में चिकित्सा के लिए ठहरा नहीं रहा जा

1. Cork skvew

सकता। अतः इस विधि का अवलम्बन करने की बहुत कम आवश्यकता पड़ा करती है।

रक्तरस-परीक्षा

रोगोत्पादक जीवाणु जब किसी भी मार्ग से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं तो उनमें तथा शरीर की प्रतिकार शक्ति में संघर्ष प्रारम्भ हो जाता है, क्योंकि प्रकृति इस बात का प्रयत्न करती है कि जीवाणुओं का नाश होकर शरीर की रक्षा हो सके। इस संघर्ष के फलस्वरूप शरीर के अन्तर्गत भिन्न भिन्न प्रकार के जीवाणु विरोधी पदार्थ उत्पन्न होकर रक्त रस में सम्मिलित होते जाते हैं जो जीवाणुओं को नष्ट कर सकें। ये पदार्थ प्रधानतः चार प्रकार के होते हैं यथा—

स्वादु कारक[1]—इस कोटि के पदार्थ जीवाणुओं को कुछ ऐसा बना देते हैं कि रक्त के श्वेत कणों द्वारा उनका आसानी से भक्षण[2] हो सके।

पुंज कारक[3]—ये जीवाणुओं को एक गुच्छे के रूप में एकत्रित[4] कर देते हैं।

अवक्षेपक[5]—जीवाणुओं को अवक्षेप के रूप में तल में सीमित कर देते हैं[6]।

द्रावक[7]—जीवाणुओं को द्रवित कर देते हैं।

प्रतिविष—जीवाणुजन्य विष को निर्विष करते हैं।

यह तो स्पष्ट ही होना चाहिए कि भिन्न भिन्न जीवाणुओं की भिन्न भिन्न प्रकृति के अनुसार ये पदार्थ भी भिन्न भिन्न ही होंगे। इस प्रकार के पदार्थों की रक्त रस में उपस्थिति का निश्चयात्मक ज्ञान प्राप्त कर लेना भी रोग के निदान की एक प्रधान विधि है यद्यपि इतनी विश्वसनीय नहीं जितनी कि जीवाणुओं का प्रत्यक्ष दर्शन। यह केवल अनुमानात्मक[8] कही जा सकती है जब कि जीवाणुओं का प्रत्यक्ष दर्शन निश्चयात्मक होता है और इसीलिए कुछ रोगों के निदान के लिए रक्त रस (सीरम) की परीक्षा की जाती है। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि रोग के प्रारम्भ होते ही रक्त रस की परीक्षा करने से कुछ भी निश्चय

1. Opsonins 2. Phagocytosis 3. Agglutinins 4. Agglutinate 5. Presipitants 6. Precipitate 7. Lysin 8. Presumptino

नहीं किया जा सकता क्योंकि जब तक विरोधी पदार्थ शरीर में उत्पन्न नहीं हो जाते तब तक इस प्रकार की परीक्षा सम्भव ही नहीं हो सकती। इस आधार पर निम्न परीक्षाएं की जाती हैं—

(१) वासरमैन परीक्षा[1]—यह परीक्षा शरीर के किसी भी स्राव पर की जा सकती है किन्तु प्रधानतः रक्त रस एवं मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव पर की जाती है। रोगी का लगभग ५ सी. सी. रक्त शुद्ध सिरिंज द्वारा शिरा में से लिया जाता है तथा शुद्ध शीशी में रखकर प्रयोगशाला परीक्षा के लिए भेज दिया जाता है जहाँ सीरम (रक्त रस) की परीक्षा की जाती है। रक्त के जम जानेपर केवल रक्तरस एक एक सी. सी. दो अलग अलग ट्यूबों में बन्द करके भी भेजा जा सकता है।

इस परीक्षा को पूरक निरोध परीक्षा[2] नाम से भी सम्बोधित किया जा सकता है क्योंकि परीक्षा का मूलभूत सिद्धांत फिरंगी सीरम × द्वियोगी पदार्थ[3]+पूरक पदार्थ का[4] फल होता है पूरक पदार्थ का नष्ट हो जाना तथा कार्य न कर सकना। फिरंग से पीड़ित व्यक्ति की सीरम में एक विशेष प्रकार के पदार्थ की उत्पत्ति हो जाती है जो ताप द्वारा नष्ट नहीं होता तथा जिसके ऊपर ही यह परीक्षा निर्भर करती है। द्वियोगी पदार्थ से तात्पर्य हृदय का एल्कोहलिक सत्व तथा कोलेस्ट-रोल का घोल है। पूरक पदार्थ गिनीपिग के सीरम के रूप में रहता है।

जिस सीरम की परीक्षा करनी है वह ५६° सेंटीग्रेड पर तीस मिनट तक गर्म किया जाता है ताकि उसके अन्तर्गत रहनेवाला स्वाभाविक पूरक नष्ट हो जाय। अब द्वियोगी तथा पूरक की निश्चित मात्रा सीरम के साथ मिलाकर निश्चित समय तक के लिए ३७° से० पर छोड़ दी जाती है ताकि तीनों की आपस में क्रिया होकर पूरक नष्ट हो सके। पूरक के नष्ट हो जाने से बहुत हलका अवक्षेप बनता है किन्तु उसको देखा नहीं जा सकता अतः पूरक नष्ट हुआ अथवा नहीं यह निश्चय करने के लिए तीनों के मिश्रण में एक निश्चित मात्रा में भेड़ के संस्कारित रक्तकण[5] मिलाये जाते हैं। यदि पूरक नष्ट हो चुका है तो ये रक्त कण द्रवित[6] नहीं होते तथा हिलाने पर सारा भाग गुलाबी से वर्ण का अपार-

1. Wasserman (W.R.) 2. Complement Fixation Test 3. Antigen 4. Complement 5. Sensitised red cells 6. Haemolysis

दर्शक द्रव बन जाता है। यदि पूरक नष्ट नहीं हुआ है जैसा कि प्राकृतिक सीरम के होने पर होना चाहिये तो रक्त कण द्रवित हो जाते हैं तथा एक साफ रक्त रंग का द्रव उत्पन्न हो जाता है।

गुलाबी वर्ण के अपार दर्शक द्रव का अर्थ है परीक्षा धनात्मक[1]

रक्त रंग के साफ द्रव का अर्थ है परीक्षा ऋणात्मक[2]

द्वियोगी पदार्थ की प्रकृति बदल कर यह परीक्षा क्षय, हायडेटिड, कुकुरखाँसी या सुजाक की परीक्षा के लिए भी की जा सकती है। कुकुरखाँसी के लिए परीक्षा करते समय द्वियोगी पदार्थ हीयोफायलस पर्ट्यूसिस (कुकुर खाँसी के जीवाणु) का अवलम्ब[3] या सुजाक के लिए परीक्षा करते समय गोनोकोकस का अवलम्ब या सत्व होना चाहिए। कुकुरखाँसी की अवस्था में यह परीक्षा तीसरे सप्ताह में व्यक्त होती है। सुजाक में रोग की तीव्रावस्था मूत्र मार्ग शोथ आदि की अवस्था में परीक्षा व्यक्त नहीं होती बल्कि सन्धि शोथ एवं चिरकालीन स्वरूप का कटि प्रदेशीय शोथ आदि की अवस्था में व्यक्त होती है। यथार्थ में तो यह परीक्षा केवल फिरंग के निदान के लिए ही बहुधा की जाती है।

प्राथमिक व्रण उत्पन्न होने के १५ दिन पश्चात् परीक्षा व्यक्त हो जाती है तथा रोग की द्वितीय अवस्था में सदैव व्यक्त रहती है। तृतीय अवस्था में उपसर्ग की भीषणता पर इसकी उपस्थिति निर्भर करती है।

सुषुम्ना द्रव की परीक्षा में धनात्मक फल का अर्थ है नाड़ी फिरंग[4] की निश्चित उपस्थिति किन्तु ऋणात्मक फल का अर्थ यह नहीं हो सकता कि नाड़ी फिरंग की उपस्थिति नहीं है। फिरंगी पागलपन[5] की अवस्था में परीक्षा बहुधा धनात्मक होती है किन्तु फिरंगी खञ्जता[6] की अवस्था में कभी कभी ऋणात्मक भी हो सकती है। फिरंगजन्य मस्तिष्कीय धर्मनियों[7] की विकृति में भी यह परीक्षा बहुधा धनात्मक होती है।

फल से रोग का अनुमान—धनात्मक परीक्षा फल का स्पष्टतः यह अर्थ है कि रोगी फिरंग से पीड़ित है। कभी कभी गलित कुष्ट, विषम ज्वर, निद्रा-

1. Positive 2. Negative 3. Suspension 4. Neurosyphilis or syphlis of nervous system 5. General Paralysis of Insane (G. A. I.) 6. Tabes Dorsalis 7. Menings vascular syphlis

ज्वर[1], परिवर्तित ज्वर[2] आदि रोगों में भी परीक्षा धनात्मक हो सकती है किन्तु ऐसा बहुत कम होता है तथा सामान्य रोग के लक्षणों से इस का पार्थक्य भी आसानी से किया जा सकता है। सामान्य नियम है कि दो या अधिक धन-चिह्न (+ +) एवं पूर्णतः धनात्मक[3] का अर्थ है कि रोगी निश्चित फिरंग से पीड़ित है। एक धन चिह्न (+) धनात्मक[4] का अर्थ अन्य लक्षण मिलने पर रोग के पक्ष में लिया जा सकता है। बार बार धनात्मक आने का अर्थ रोग की निश्चित उपस्थिति है। धन ऋण (+ —) ससन्देह धनात्मक[5] का कभी यह अर्थ नहीं लिया जा सकता कि रोगी फिरंग से पीड़ित है। लक्षणों की पूर्ण परीक्षा की जानी चाहिए तथा एन. ए. बी. ·३ ग्राम का एक उद्दीपक[6] इंजेक्शन देकर रक्त की पुनः परीक्षा की जा सकती है।

ऋण चिह्न (—) पूर्णतः ऋणात्मक[7] या केवल ऋणात्मक का अर्थ यही है कि रोगी फिरंग से पीड़ित नहीं किन्तु संदेह होने पर पुनः पुनः परीक्षा की जा सकती है। ध्यान रखना चाहिए कि रोग की प्रथमावस्था में ऋणात्मक फल मिल सकता है किन्तु द्वितीय एवं तृतीय अवस्था में प्रायः धनात्मक फल ही मिलता है। फिरंगी पागलपन तथा फिरंगी खंजता में भी बहुधा रक्त-परीक्षा धनात्मक ही होती है।

काह परीक्षा[8] —यह परीक्षा सीरम के अन्तर्गत अवक्षेपक पदार्थों की उपस्थिति पर निर्भर करती है। इस में परीक्ष्य सीरम एवं द्रियोगी[9] पदार्थ तथा लवण जल की ही आवश्यकता पड़ती है। पूरक की आवश्यकता नहीं। परीक्ष्य सीरम तथा एण्टीजिन दोनों तीन परखनलियों में भिन्न भिन्न मात्रा में मिला कर खूब हिलाये जाते हैं तथा फिर लवण जल और मिला कर खूब हिला कर दस मिनट तक स्थिर रक्खी जाती है। परीक्षा धनात्मक होने पर परखनलियों के मिश्रण में अपारदर्शकता (कुछ गँदलापन) तथा अवक्षेप की उत्पत्ति हो जाती है।

---

1. Sleeping Sickness 2. Relpsing Fever 3. Strongly positive 4. Positive 5. Doubtful positive 6. Provocative 7. Negative 8. Kahn Test 9. Autigen

इस परीक्षा से भी जैसा कि ऊपर ही दर्शाया गया है वासरमैन परीक्षा के अनुसार ही रोग का अनुमान लगाया जाना चाहिए। वासरमैन परीक्षा की अपेक्षा यह अधिक सरल तथा सूक्ष्मग्राही[1] है किन्तु अधिक काल पश्चात् व्यक्त होती है। मस्तिस्क सुषुम्ना जल के साथ यह परीक्षा इतनी सूक्ष्मग्राही नहीं।

विडाल परीक्षा[2]—यह परीक्षा प्रधानतः टायफायड के लिए की जाती है तथा प्रथम सप्ताह में व्यक्त न होकर द्वितीय सप्ताह में व्यक्त हो पाती है। रोग से पीड़ित व्यक्ति के रक्त में पुंजकारक[3] पदार्थों की उत्पत्ति हो जाती है जो टायफायड जीवाणुओं को पुंजित[4] कर देने की शक्ति रखते हैं। इसी सिद्धान्त पर परीक्षा आधारित है।

आजकल यह परीक्षा ड्रेयर के सुधार[5] के अनुसार की जाती है। रोगी की शिरा से रक्त लेकर सीरम तैयार कर के उसको ड्रेयर के ड्रौपिंग पिपट की सहायता से १:१० हलका कर दिया जाता है अर्थात् एक भाग सीरम में ९ भाग शुद्ध जल और मिला दिया जाता है। अब एक विशेष प्रकार की धातु निर्मित रैक[6] ली जाती है जिस में तीन लायनों में से प्रत्येक में पाँच पाँच छिद्र होते हैं। प्रत्येक छिद्र में विशेष प्रकार की पुंजीकरण नलिका[7] जिसका शीर्ष पतला होता है रख दी जाती है। लिखने की आवश्यकता नहीं कि नलिकाएं व पिपट वगैरा सभी शुद्ध साफ होने चाहिए। अब ड्रेयर के पिपट की सहायता से ही तीनों लायनों के प्रथम ट्यूब में दस, द्वितीय में पांच, तृतीय में तीन तथा चतुर्थ में एक बूंद हलकी की गई सीरम डाल दी जाती है। इस के बाद तीनों लायनों के ट्यूबों में शुद्ध परिश्रुत जल की क्रमशः ५, ८, ९ एवं १० बूँदे दूसरे, तीसरे, चौथे तथा पाँचवें ट्यूब में डाल दी जाती है। अन्त में एएटीजिन (मारित जीवाणुओं का प्रलम्बन[8]) की १५, १५ बूँदे कुल १५ ट्यूबों में से प्रत्येक में डाल दी जाती हैं तथा ट्यूबों को उलटा कर हिलाने से उनमें के द्रव भली प्रकार मिला लिये जाते हैं। रैक को जल में रख कर ५५° सेएटीग्रेड तापक्रम पर ही दो घंटे तक गर्म किया जाता है तथा बाद में परीक्षा की जाती है। यहाँ स्पष्ट हो जाना

1. Sensative 2. Widal 3. Agglutinins 4. Agglutinate 5. Dreyer's Modification 6. Metal Rack 7. Agglutinin Tube 8. Emulsion

चाहिए कि तीनों लायनों के अन्तिम पाँचवें ट्यूब में परीक्ष्य सीरम बिलकुल नहीं अतः वह मुकाबिले[1] का काम देगा। शेष चार ट्यूबों में सीरम क्रमशः १:२५; १:५०; १:१२५ तथा १:२५० के अनुपात से है।

जीवाणुओं के श्वेत घने अवक्षेप के रूप में ट्यूब के ऊपरी शीर्ष पर इकट्ठा हो जाने का अर्थ पूर्ण पुंजीकरण[2] है। यदि ये श्वेत घने अंश ट्यूब में इधर उधर छितराये हुए दिखाई देते हैं किन्तु तलछट के रूप में एकत्रित नहीं होते तो अंशतः पुंजीकरण[3] समझना चाहिए। परीक्षाफल सीरम जितनी भी हलकी की गई है उसीके रूप में प्रगट किया जाता है।

परीक्षा के धनात्मक आने पर यह आवश्यक हो सकता है कि सीरम को प्रथम परीक्षा की अपेक्षा और भी अधिक हलकी बनाकर परीक्षा की जाय—इतनी हलकी कि पूंजीकरण अंशतः हो या बिलकुल ही न हो।

यहाँ एक बात और भी ध्यान में रखने की है कि परीक्षा उन व्यक्तियों में भी व्यक्त हो सकती है जिनमें टायफायड से बचने के लिए टायफायड वेक्सीन का इंजेक्शन दिया गया है अथवा जो व्यक्ति टायफायड से पीड़ित रह चुके हैं, क्योंकि दोनों ही अवस्थाओं में यह तो निश्चित है ही कि सीरम में प्रतियोगी पदार्थ उपस्थित है। अतः ऐसे व्यक्तियों में यदि वे हर समय चढ़े रहने वाले ज्वर से पीड़ित होते हैं तो विडाल परीक्षा द्वारा निश्चित निर्णय करना कठिन हो जाता है। एक बात अवश्य ध्यान में रखने की है कि परीक्षा यदि प्रति सप्ताह की जाती है तो यथार्थ में टायफायड ज्वर से पीड़ित व्यक्ति में तो प्रतियोगी पदार्थ अधिक अधिक बनते जायंगे जब दूसरे दोनों व्यक्तियों में बढ़ेंगे नहीं, बल्कि उतने ही बने रहेंगे।

यह विडाल परीक्षा प्रारम्भ में केवल टायफायड ज्वर के लिए ही की गई थी किन्तु अब पैराटायफायड, बेसीलरी आमातिसार, माल्ट ज्वर आदि के लिए भी की जा सकती है।

कालाज़ार के लिए लसीका परीक्षा—

(१) चोप्रा परीक्षा—एक साफ छोटी नली में रोगी की ½ सी. सी. लसीका ली जाती है। यूरियास्टिबैमीन का शुद्ध परिश्रुत जल में ४ प्रतिशत घोल तैयार

1. Control 2. Complete agglutination 3. Partial aggbutination

कर लिया जाता है। इस घोल का लगभग एक सी. सी. लसीका में डाला जाता है। दोनों के मिलनस्थान पर तुरंत गाढ़ा अवक्षेप बन जाता है जो हिलाने पर भी टूटता नहीं तथा लगभग २० घंटे तक बना रहता है। परीक्षा पूर्ण व्यक्त होने पर अवक्षेप गाढ़ा, मन्द व्यक्त होने पर पतला तथा कम, संन्दिग्धावस्था में केवल धुधला पन एवं परीक्षा अव्यक्त होने पर कोई भी अन्तर नहीं पड़ता। इसको यूरिया स्टिबेमीन परीक्षा[1] भी कहते हैं।

(२) ***चोप्रा की विलयन पद्धति***[1]— यह परीक्षा भी पूर्णतः उपरोक्त की तरह है। अन्तर केवल इतना है कि उसमें लसीका का एक भाग ९ भाग समबल लवण जल में मिलाकर उसको और भी हलका कर लिया जाता है। उपरोक्त की अपेक्षा यह अधिक सूक्ष्म होती है तथा कालाजार के अतिरिक्त अन्य रोगों में व्यक्त नहीं होती।

(३) ***नेपीयर की परीक्षा***[2]—इस परीक्षा के लिए $\frac{1}{4}$ प्रतिशत यूरिया स्टिबेमीन घोल के २ सी. सी. लेकर उसमें रोगी की लसीका के दो बूंद छोड़े जाते हैं। यदि दस मिनट से लेकर दो घंटे तक के समय में हलका-सा श्वेत वर्ण अवक्षेप बन जाता है तो परीक्षा व्यक्त समझी जानी चाहिए।

(४) ***एल्डी हायस परीक्षा***[3]—एक शुद्ध सिरिंज की सहायता से रोगी की शिरा में से ५ सी. सी. रक्त लिया जाता है तथा उसे एक परखनली में डाल कर जम जाने दिया जाता है। रक्त के जम जाने पर किसी दूसरी नली में लगभग एक सी. सी. साफ लसीका लेकर उस में फौर्मेलीन के ४० प्रतिशत घोल के २–४ बूंद छोड़ें तथा नली को खूब हिलायें तथा फिर रख दें। कुछ समय पश्चात् लसीका श्वेत वर्ण अपारदर्शक बन जाता है। यदि यह स्थिति २० मिनट के अन्दर अन्दर उत्पन्न हो जाय तो परीक्षा पूर्ण व्यक्त (+++) समझी जानी चाहिए तथा यदि २४ घंटे में उत्पन्न हो तो परीक्षा मध्य व्यक्त (++) समझी जानी चाहिए तथा यदि २४ घंटे में उत्पन्न हो तो मन्द व्यक्त (+) समझी जानी चाहिए। श्वेत वर्ण तथा अपारदर्शकता की उत्पत्ति यदि इसके बाद हो या न हो तो परीक्षा ऋणात्मक समझी जानी चाहिए।

1. Urcastibaming Test 2. Chopra's Dilution method 3. Napier's Test
4. Aldehyde Test

यह परीक्षा बिधि बहुत सरल एवं सस्ती होने के साथ ही साथ विश्वसनीय भी है किन्तु सबसे बड़ा दोष यह है कि रोग के प्रारम्भ में यह व्यक्त ही नहीं होती। रोग प्रारम्भ होने के २½ महीने पश्चात् उत्पन्न होती है तथा इसके बाद २ महीने तक और संदिग्धावस्था में रहती है अर्थात् इस काल में परीक्षा व्यक्त न होने पर भी निराकरण नहीं किया जा सकता। कुष्ठ, यक्ष्मा, फिरंग, चिरकालीन विषम ज्वर की अवस्था में लसीका कभी कभी गाढ़ी हो सकती है किन्तु परीक्षा करने पर उसमें स्वेत वर्ण तथा अपारदर्शकता की उत्पत्ति कभी नहीं होती।

प्रथम तीन परीक्षाओं को एण्टीमनी परीक्षा भी कहते हैं क्योंकि इनमें यूरिया स्टिबेमीन के अतिरिक्त एण्टीमनी के अन्य योग स्टिब्यूरिया यूरियास्टिबोल प्रयुक्त किये जा सकते हैं। यह परीक्षा रोग की प्रारम्भिक अवस्था में ही व्यक्त होने लगती है—रोग के प्रारम्भ के १५ दिन पश्चात् से व्यक्त होती है तथा दो महीने पश्चात् से पूर्ण व्यक्त हो जाती है।

इन परीक्षाओं के सम्बन्ध में यह भी ध्यान रखना चाहिए कि ये परीक्षाएँ कुष्ठ, राजयक्ष्मा, पुराना मलेरिया आदि रोगों में भी क्षीण व्यक्त मिल सकती हैं।

विभिन्न स्रावों की जीवाण्वात्मक परीक्षा

मूत्र—जब भी इस बात का सन्देह हो कि मूत्र मार्ग में किसी जीवाणु के कारण विकृति हो सकती है मूत्र की इस सम्बन्धी परीक्षा अवश्य की जानी चाहिए। यहाँ यह भी ध्यान रखना चाहिए कि किसी भी कारण से पथरी, मूत्र मार्ग संकोच या पौरुषग्रन्थि वृद्धि से मूत्र मार्ग में अवरोध हो जाने पर जीवाणुजन्य उपसर्ग की सम्भावना विशेष बढ़ जाती है यद्यपि अवरोधजन्य लक्षणों के कारण उपसर्ग के लक्षण स्पष्ट नहीं होते। यह भी ध्यान रखना है कि मूत्र में बाहर से जीवाणु पहुँच कर आसानी से वृद्धि कर सकते हैं अतः मूत्र को सुरक्षित रखना चाहिए तथा पुरुषों में शिश्न मुण्ड को साफ़ करके तथा स्त्रियों में मूत्र नलिका द्वारा मूत्र लेकर शीघ्र से शीघ्र उसकी परीक्षा कर ली जानी चाहिए।

इस दृष्टि से सदैव तलछट की परीक्षा की जाती है। यदि जीवाणु कम हैं तो केन्द्रीकरण करने के बाद तलछट प्राप्त किया जाना चाहिए। तलछट से काँचपट्ट पर प्रलेप तैयार करने के बाद उसको ज़ील नील्सन विधि से क्षय

जीवाणु के लिए तथा ग्राम विधि से दूसरे जीवाणुओं के लिए रंजित किया जाता है। ज़ील नील्सन विधि से रंजित करने तथा अम्ल से धोने के बाद प्लेट को एक मिनट तक एल्कोहल से और धो देते हैं ताकि स्मेग्माबेसीलस भी अरञ्जित हो जाय क्योंकि इस जीवाणु की बाहर से मूत्र में मिल जाने की बहुत कुछ सम्भावना रहती है।

मूत्र में क्षय जीवाणु गुच्छों के रूप में या एक एक मिलते हैं किन्तु बहुत कम संख्या में होते हैं अतः क्षयजन्य वृक्कशोथ का सन्देह होने पर २४ घंटे के मूत्र को केन्द्रीयकरण करके परीक्षा की जाती है। इस पर भी जीवाणु न मिल सकने पर तलछट का गिनी पिग में अन्तःक्षेप किया जाता है तथा उसके आधार पर निश्चय किया जाता है। ग्राम विधि से रञ्जन द्वारा दूसरे जीवाणुओं का निश्चय हो जाने पर भी वृद्धि द्वारा उनका और भी निश्चय किया जा सकता है यद्यपि इसकी कोई विशेष आवश्यकता नहीं पड़ती।

क्षय जीवाणु, स्टेफ्लो कोकस औरियस तथा कोलन एवं टायफायड, पैरा टायफायड विभागके जीवाणुओं द्वारा वृक्कों का उपसर्ग हो सकता है। मूत्राशय का उपसर्ग इन जीवाणुओं के अतिरिक्त स्ट्रप्टोकोकस तथा गोनोकोकस द्वारा भी सम्भव है। मूत्रमार्ग का उपसर्ग बहुधा गोनोकोकस-सुज़ाक का जीवाणु द्वारा ही होता है।

मल—जीवाणुओं को देखने की दृष्टि से सूक्ष्मदर्शक द्वारा मल की परीक्षा प्रायः व्यर्थ होती है क्योंकि क्षय-जीवाणुओं के अलावा दूसरे जीवाणु कठिनता से दिख पाते हैं। एमीबा तथा कृमि के लिए इस परीक्षा का वर्णन मलपरीक्षा के साथ में ही किया गया है। मल की जीवाणुओं के लिए परीक्षा सूक्ष्मदर्शक द्वारा देखने के अतिरिक्त वर्द्धन तथा प्राणियों में अन्तःक्षेप द्वारा भी की जाती है। मल में पाये जाने वाले विभिन्न जीवाणुओं की ओर संकेत मल परीक्षा अध्याय में ही किया गया है।

कफ परीक्षा—कफ की परीक्षा क्षय जीवाणु या दूसरे जीवाणुओं के लिए की जाती है।

क्षय जीवाणु के लिए परीक्षा करने के लिए कफ का गाढ़ा तथा म्यूकस और पूययुक्त भाग लिया जाना चाहिए। यह हो सकता है कि कफ के साथ में

पांच भाग ५ प्रतिशत कार्बोलिक अम्ल का घोल मिलाकर खूब हिलाने के बाद रात को शान्त छोड़ दिया जाय। प्रातः ही निथरा हुआ ऊपर का द्रव फेंक दिया जाता है तथा तलछट को लेकर केन्द्रीकरण करने के बाद उत्पन्न घने तल-छट की परीक्षा की जाती है। नया काचपट्ट लेकर उसपर स्थूल प्रलेप तैयार किया जाता तथा उसको ज़ील नील्सन पद्धति से रञ्जित किया जाता है। सूक्ष्म दर्शक द्वारा नीले धरातल पर रक्त वर्ण क्षय जीवाणु आसानी से देखे जा सकते हैं। छोटे बच्चों में जो कफ को निगल जाते हैं इसी प्रकार उदर प्रक्षालन द्रव की परीक्षा की जा सकती है। ध्यान रखना चाहिए कि प्रथम बार निषेधात्मक कफ मिलने का यह अर्थ नहीं कि क्षयरोग का निराकरण किया जा सके क्योंकि क्षय रोग के जीवाणु सदैव कम संख्या में पाये जाते हैं। अतः क्षय का सन्देह होने पर बार बार कफ-परीक्षा करने के अतिरिक्त दूसरे साधनों से भी रोग की निश्चती करनी चाहिए। यदि जीवाणु थोड़ी संख्या में पाये जाते हैं तो उनका वर्द्धन किया जा सकता है तथा प्राणियों में अन्तःक्षेप करने के बाद रोग का निश्चय किया जा सकता है किन्तु इसमें ३–६ सप्ताह का समय नष्ट हो सकता है।

दूसरे जीवाणुओं के लिए कफ-परीक्षा करने के उद्देश्य से कफ प्रलेप को ग्राम विधि से रंजित किया जा सकता है। न्यूमोकोकस का वर्ग[1] निश्चित करने की आधुनिक युग में आवश्यकता नहीं पड़ती क्योंकि पैनीसलीन या सल्फा विभाग की औषधियाँ प्रत्येक वर्ग के लिए लाभकर हैं। फुफ्फुस विकृत हों किन्तु कफ की प्राप्ति न हो सके उस अवस्था में फुफ्फुस वेध करने के पश्चात् इसी विधि से परीक्षा करनी चाहिए। न्यूमोकोकस के अलावा कफ में इन्फ्लूएंजा बेसीलस, फ्रीडलेण्डर बेसीलस, मायक्रोकोकस कटारलिस तथा स्ट्रप्टोकोकस या एक्टीनोमावकोकस भी पाये जा सकते हैं। कुकुरखाँसी की अवस्था में जब कफ प्राप्त नहीं हो सकता, बालक से एक काँच की प्याली में जिसमें वर्द्धन द्रव्य रखा रहता है खांसने के लिए कहा जाता है। ऐसा करने से वर्द्धन द्रव तक जीवाणु पहुँच जाते हैं जो वर्द्धन के पश्चात् देखे जा सकते हैं।

1. Type

कभी कभी स्वस्थ व्यक्ति के थूक में भी ये जीवाणु देखे जा सकते हैं किन्तु रोग के स्पष्ट लक्षणों की अनुपस्थिति में इनका कोई महत्व नहीं। क्षय के जीवाणु प्रायः नहीं पाये जाते अतः कास तथा ज्वर से पीड़ित व्यक्ति के कफ में क्षय जीवाणुओं का पाया जाना रोग के निदान का एक निश्चित लक्षण समझा जाना चाहिए।

गले तथा नेसोफरेंक्स स्राव—मृदु तालु, टांसिल के आस पास के भाग तथा नासा के पीछे के गले के भाग से रुई के फाए की सहायता से स्राव लेकर उस की (१) डिप्थीरिया के जीवाणु (२) गले में शोथ उत्पन्न करने वाले दूसरे जीवाणु तथा (३) मेनिंगोकोकस, तथा हीमोलायटिक ट्रप्टोकोकस जीवाणु के लिए परीक्षा की जाती है कि रोगी के गले में ये जीवाणु तो नहीं पाये जाते जिनका दूसरी जगह प्रसार हो सके। प्रथम अध्याय में वर्णित विधि के अनुसार रुई के फाए से स्राव लेकर उसका प्रलेप तैयार कर के मेथलीन ब्ल्यू या ग्राम के रंग से रंजित करके परीक्षा की जाती है। उचित वर्द्धन द्रव्य में डाल कर जीवाणुओं का वर्द्धन करने के पश्चात् भी परीक्षा की जाती है।

मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव—जहाँ भी मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ का सन्देह हो द्रव की जीवाण्वात्मक परीक्षा की जानी चाहिए। यदि आवश्यकता हो तो द्रव के केन्द्रीकरण के पश्चात् तलछट से प्रलेप तैयार करके ग्राम अथवा जील नील्सन विधि से उसको रंजित करने के पश्चात् परीक्षा की जाती है। इस परीक्षा के पश्चात् जीवाणुओं का वर्द्धन भी किया जा सकता है।

क्षयजन्य मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ की अवस्था में मस्तिष्क सुषुम्ना द्रव के तलछट में परीक्षा करने पर बहुत कम जीवाणु दिखाई पड़ते हैं और उन के लिए भी बहुत सावधानी के साथ परीक्षा करना आवश्यक होता है। अच्छा हो कि द्रव को कुछ समय तक के लिए स्थिर रहने दिया जाय। कुछ समय पश्चात् थक्का जम जायगा। थक्के से प्रलेप तैयार कर जील नील्सन विधि से रंजित कर जीवाणु देखे जा सकते हैं। वर्द्धन अथवा प्राणियों में अन्तःक्षेप करके परीक्षा करने में ३–६ सप्ताह का समय लग सकता है, अतः इस प्रकार परीक्षा करना व्यर्थ है।

मस्तिष्क सुषुम्नावरण शोथ मेनिंगो, न्यूमो, स्ट्रप्टो तथा स्टेफ्लोकोकस के कारण भी हो सकता है। सूक्ष्मदर्शक द्वारा इन जीवाणुओं की उपस्थिति दिखने पर वर्द्धन द्वारा भी उस की पुष्टि की जा सकती है।

पूय—किसी भी स्थान से प्राप्त पूय की परीक्षा प्रधानतः यह निश्चय करने के लिए की जाती है कि पूय का उत्पादक जीवाणु कौन है। पूय का प्रलेप तैयार करके ग्राम विधि से रंजित किया जा सकता है। यदि क्षय जीवाणु का सन्देह हो तो ज़ील नील्सन विधि से रंजन करके परीक्षा की जानी चाहिए। पूय का वर्द्धन भी किया जा सकता है।

अन्य स्रावों की परीक्षा भी उपरोक्त विधि से ही की जानी चाहिए।

नवम अध्याय

कुछ विशिष्ट परीक्षाएं

गत अध्यायों में शरीर के विभिन्न स्रावों आदि की परीक्षा का वर्णन किया गया है। इस स्थल पर कुछ खास-खास परीक्षाओं का वर्णन किया जायगा जो कई विशेष अवस्थाओं में ही की जाती हैं।

बी. एम. आर. परीक्षा—बी. एम. आर. से तात्पर्य बेसलमैटाबोलिक रेट[1] से है। बाहरी दृष्टि से आराम करते रहने की अवस्था में भी शरीर के कुछ अंग-हृदय, फुफ्फुस, मस्तिष्क आदि अपना काम करते ही रहते हैं जिसके लिए शरीर के भिन्न भिन्न अंगों में टूट-फूट चलती रहती तथा आक्सीजन की हर समय आवश्यकता रहती है। यह कार्य तथा उसके फलस्वरूप टूट-फूट जितनी ही अधिक होगी शरीर उतनी ही अधिक आक्सीजन काम में लेगा।

प्राकृत से जितना प्रतिशत अधिक या कम आक्सीजन शरीर में प्रयुक्त होती है वही उसकी वेसन मैटाबोलिक रेट कहलाती है। यह धन या ऋण चिह्न द्वारा व्यक्त की जाती है।

परीक्षाविधि कई हैं जिन में से कुछ बहुत जटिल हैं जो विशेष उपकरणों से

1. Basalmetrbolic Rate

युक्त प्रयोगशाला में ही की जा सकती हैं। साधारणतया परीक्षा करने के लिए कई प्रकार के यन्त्र आते हैं जिनमें प्रधान रूप से एक गोलाकार श्वास यन्त्र[1] रहता है जिसके साथ मुख अथवा नासा द्वारा सांस लेने के भाग लगे रहते हैं। इस प्रकार का भी प्रबन्ध होता है कि भीतर जानेवाली तथा बाहर आनेवाली वायु सोडालायम में होकर निकले ताकि उसमें की सम्पूर्ण कार्बोनिक एसिड शोषित हो जाय। इस यन्त्र की सहायता से यह निश्चित कर लिया जाता है कि शरीर के अन्दर कुल कितनी ऑक्सीजन प्रयुक्त हो सकी है। प्रयुक्त हुई ऑक्सीजन की मात्रा मालूम हो जाने पर यन्त्र के साथ आनेवाली तालिका[2] की सहायता से यह हिसाब लगाया जा सकता है कि प्राकृत से कुल कितने प्रतिशत कम या अधिक ऑक्सीजन शरीर में व्यय हुआ है। यन्त्र के प्रयोग करने सम्बन्धी सारी सूचनाएं यन्त्र के साथ ही आती हैं तथा तालिका में तापमान[3], दबाव[4], ऊँचाई, भार, आयु तथा लिंग[5] आदि सभी बातों का ध्यान रखा जाता है। इस यन्त्र का प्रयोग करते समय यह अवश्य ही ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षा से १०,१२ घंटे पूर्व रोगी ने कुछ भी भोजन न किया हो तथा वह आराम से केवल लेटा रहा हो। यह भी आवश्यक है कि मुख तथा नासा में लगाये जानेवाले उपकरणों के लिए भी रोगी को पहले से ही अभ्यस्त बना लिया जाय ताकि ठीक परीक्षा के साथ रोगी को किसी भी प्रकार की असुविधा न हो क्योंकि थोड़ी भी मानसिक या शारीरिक असुविधा परीक्षा पर अपना प्रभाव डाल सकती है।

एक फार्मूला[6] के आधार पर साधारणतया नाड़ी की गति तथा नाड़ी के दबाव से ही बेसल मैटाबोलिक रेट का हिसाब लगाया जा सकता है यथा—

B. M. R. = ०.७५ (**P. R.** + ०. ७४ **P. P.**)—७२ **P. R.**[7]

से तात्पर्य है आराम की स्थिति में नाड़ी की गति तथा **P. P.**[8] का अर्थ है नाड़ी दबाव। संकोच कालीन[9] तथा विस्तारकालीन[10] रक्त दबाव के अन्तर को नाड़ी का दबाव कहा जाता है।

1. Spirometer 2. Table 3. Temperature 4. Barometric Pressure 5. Sex 6. Reed's Formula 7. Pulse rate 8. Pulse Pressure 9. Systolic 10. Diastolic pressure

बी. एम. आर. का महत्व—अवटुका ग्रन्थि[1] के रोगों में ही इसका विशेष महत्त्व है। अवटुका ग्रन्थि की कार्यवृद्धि की अवस्था में बी. एम. आर. बहुत बढ़ती अर्थात्+७५ तक हो जाती है जब कि उसके कार्यह्रास की अवस्था में बहुत घटती–३०या–४० हो जा सकती है। रोग निदान के अतिरिक्त समय-समय पर इसको नापने से इस बात का भी निश्चय किया जाता है कि चिकित्सा से कितना व क्या लाभ हो रहा है। अवटुका ग्रन्थि के कार्यवृद्धि की अवस्था में यह स्पष्टतः इस बात की निर्देशक होती है कि रोग कितना बढ़ा हुआ है तथा शल्यचिकित्सा की आवश्यकता है अथवा नहीं।

अवटुका ग्रन्थि के स्रावके बढ़ जाने से उत्पन्न प्रधान रोग है ग्रेव का रोग[2] जिससे बी. एम. आर+२० से +६० तक रहता है तथा स्राव के कम होने से उत्पन्न प्रधान रोग निक्सोडीमा तथा क्रीटनिज्म है जिनमें यह–४० तक हो जा सकता है।

गर्भावस्था परीक्षा—पुरुष अथवा स्त्री दोनों के ही मूत्र में साधारण अवस्था में भी पूर्व पियूषग्रन्थि का प्रोलोन नामक[3] अन्तःस्राव[4] उत्सर्गित होता रहता है। इस अन्तःस्राव का प्रधान काम पुरुष बीजग्रन्थि अथवा स्त्री बीज-ग्रन्थि को उत्तेजित करना है अतः इसको बीज ग्रन्थ्योत्तेजक अन्तःस्राव[5] नाम से सम्बोधित कर सकते हैं। गर्भावस्था में यह स्राव अथरा[6] द्वारा भी निर्मित होने के कारण गर्भिणी स्त्री के मूत्र में बढ़ जाता है और परीक्षा का यही प्रधान आधार है। गर्भ के कम से कम ६ सप्ताह पश्चात् ही परीक्षा व्यक्त होती है। गर्भावस्था के अतिरिक्त कुछ विकृति की अवस्थाएं भी ऐसी हैं जिनमें इस स्राव की मात्रा बढ़ जाती है यथा हायडेटिडी फोर्म मोल,[7] कोरियन कार्सिनोमा[8] आदि। इस परीक्षा की निम्न दो विधियाँ हैं।

आश्चिम जोंडेक परीक्षा[9]—यदि स्त्री मासिक धर्म से नहीं होती जिसका कारण गर्भ होने का सन्देह है तो प्रथम न होने वाले मासिक धर्म की तिथि से कम से कम १५ दिन पश्चात् स्त्री का प्रातःकालीन मूत्र लेकर परीक्षा

1. Thyroid gland 2. Anterior pituitary 3. Prolan 4. Hormone 5. Gonad Trophic Hormone 6. Plasents 7. Hydatidiform mole 8. Chorion carcenoms 9. Ascheim Zondek

की जाती है। २१-२१ दिन की पाँच चुहियाँ ली जाती हैं तथा प्रत्येक के चर्म के नीचे ३-३ सी. सी. मूत्र का प्रत्येक इंजेक्शन प्रातः सायं तीन दिन तक लगातार दिया जाता है। इस प्रकार कुल ६ इंजेक्शन दिये जाते हैं। पांच दिन पश्चात् चुहियों को मारकर उनकी बीज ग्रन्थियों की साधारणतया या सूक्ष्मदर्शक की सहायता से परीक्षा की जाती है। धनात्मक परीक्षा का अर्थ है चुहियों के गर्भाशय का कुछ बढ़ जाना तथा बीज ग्रन्थियों में सस्राव डिम्भ[1] अथवा पीतांग[2] की उपस्थिति। यदि परीक्षा एक भी चुहिया में धनात्मक मिलती है तो गर्भ का सन्देह निश्चित है।

परीक्षा का उपयोग प्रोलीन की निश्चित मात्रा के अनुमान लगाने के लिए भी किया जाता है। प्राकृत गर्भावस्था में १ : ५० तक हलके मूत्र मिश्रण में ही परीक्षा धनात्मक होती है जब कि हायडेटिडी फोर्म मोल या कोरियन कार्सिनोमा की अवस्था में परीक्षा १ : १००० या उससे भी अधिक तक हलके मूत्र मिश्रण के लिए भी धनात्मक हो सकती है।

फ्रीडमैन परीक्षा—इस परीक्षा के लिए स्त्री-खरहा जो कम से कम ३ मास से पुरुष खरहा से अलग रहा हो लिया जाता है। १२ घंटे के अन्तर से १०, १० सी. सी. मूत्र के दो इन्जेक्शन शिरा में दिए जाते हैं तथा द्वितीय इंजेक्शन के २४ घंटे पश्चात् उसको मार कर परीक्षा की जाती है। धनात्मक परीक्षा का अर्थ है सस्राव डिम्भकी बीज-ग्रन्थि में उपस्थिति। यह परीक्षा भी प्रथम होनेवाले मासिक धर्म के ७–१० दिन के अन्तर्गत व्यक्त होती है।

चर्म-प्रतिक्रिया-परीक्षा[3]

इस श्रेणी की कई परीक्षाएँ हैं जिन में किसी व्यक्तिविशेष की किसी पदार्थ के प्रति प्रतिक्रिया[4] देखी जाती है। प्रतिक्रियाव्यक्त[5] का अर्थ है चर्म में इंजेक्शन के स्थान पर शोथ की उत्पत्ति हो जाय। इस प्रकार की प्रतिक्रिया दो रूप की हो सकती है। प्रथम किसी विषपदार्थ जीवाणु जन्य के प्रति असह्यता। जैसा कि सिक[6] या डिक[7] परीक्षा में होता है। इस अवस्था में उन व्यक्तियों में भी जो विष

1. Haemorrhagic follicles 2. Corpus Luteum 3. Skin Test 4. Reaction 5. Positive reaction 6. Schick Test 7. Dick Test

पदार्थ के कभी भी सम्पर्क में नहीं आये परीक्षा व्यक्त हो सकती है। प्रतिक्रिया का दूसरा अर्थ व्यक्तिविशेष की किसी जीवाणुजन्य या अन्य प्रोटीन के प्रति उत्तेजनशीलता[1] या एलर्जी[2] है जैसा कि ट्यूबरकुलीन परीक्षा[3] में होता है। इस अवस्था में व्यक्त परीक्षा इस बात की परिचायका है कि परीक्षित व्यक्ति उस पदार्थ के सम्पर्क में पहले भी आ चुका है। ट्यूबरकुलीन परीक्षा यदि व्यक्त होती है तो उसका अर्थ यह होता है कि परीक्षित व्यक्ति के शरीर में क्षय के जीवाणु पहले भी प्रवेश पा चुके हैं चाहे परीक्षा के समय क्षय रोग हो अथवा न हो।

सिक परीक्षा—इस परीक्षा द्वारा यह देखा जाता है कि जिस व्यक्ति की परीक्षा की जा रही है वह रोहिणी विष[4] के प्रति क्षमता[5] रखता है अथवा नहीं। कांच की सिरिंज तथा एक सुई को उबाल कर शुद्ध कर लिया जाना चाहिए। सिरिंज के भलीप्रकार सूख जाने पर २. सी. सी. रोहिणी विष का मिश्रण चर्म में प्रविष्ट कर दिया जाता है। ध्यान रहे कि चर्म में प्रविष्ट किया जाय चर्म के नीचे नहीं। रोहिणी विष को इतना हलका किया जाना चाहिए कि आवश्यक मात्रा ($\frac{1}{100}$ न्यूनतम घातक मात्रा)[6] ·२ सी.सी. इंजेक्शन में सम्मिलित हो। इंजेक्शन देने से पहले दोनों ही पूर्व बाहुओं[7] के चर्म को भली प्रकार साफ कर लिया जाता है तथा उस पर एल्कोहल या ईथर का भी फाया लगा दिया जाता है। एक बाहु में ·२ सी.सी. रोहिणी विष का तथा दूसरी बाहु में गर्म किये गये रोहिणी विष का इंजेक्शन कण्ट्रोल का काम करता है क्योंकि इसमें का विष गर्म कर दिये जाने के कारण निष्क्रिय हो जाना चाहिए और यदि इसमें भी प्रतिक्रिया व्यक्त होती है तो वह अक्षमता की द्योतक नहीं मानी जा सकती।

उन व्यक्तियों में जिनमें रोहिणी के प्रति क्षमता नहीं होती प्रतिक्रिया २४ घंटे के अन्दर अन्दर व्यक्त हो जाती है तथा ४, ५ दिन में पूर्ण स्पष्ट हो जाती है। यदि दूसरी बाहु में भी कुछ प्रतिक्रिया मालूम पड़ती है तो वह चौथे दिन तक शान्त हो जाती है। अन्तिम निर्णय चौथे दिन ही किया जाना चाहिए।

इस परीक्षा द्वारा व्यक्तियों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—एक

1. Hypersensativeness 2. Allergy 3. Tuberculin Test 4. Diphtheria toxin 5. Immunity 6. Minimal Lethal Dose M. L. D. 7. Fore-arms

वे जिनके शरीर में रोहिणी के प्रति क्षमता है दूसरे वे जिनके शरीर में इस प्रकार की कोई क्षमता नहीं।

डिक परीक्षा—यह पूरी तरह उपरोक्त सिक परीक्षा की तरह ही है किन्तु लोहित ज्वर[1] के लिये की जाती है। लोहित ज्वर के रोगी भारतवर्ष में नहीं पाये जाते।

ट्यु बरकुलीन परीक्षा—यह परीक्षा इस सिद्धांत पर आधारित है कि जिस मनुष्य के शरीर में क्षय कीटाणु प्रवेश कर चुके हैं उसके शरीर में इन जीवाणुओं के प्रति एक प्रकार की उत्तेजनशीलता उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण ट्युबर कुलीन के प्रति चर्म में प्रतिक्रिया व्यक्त होने लगती है। ध्यान रखना चाहिए कि परीक्षा व्यक्त होने का केवल अर्थ यह है कि जीवाणु किसी समय शरीर में प्रवेश पा चुके हैं, इस समय रोग से पीड़ित हो अथवा शरीर की प्रतिकार शक्ति की प्रबलता के कारण रोग से पीड़ित न हो। परीक्षा अव्यक्त होने का स्पष्ट अर्थ यह है कि रोगी के शरीर में जीवाणुओं ने प्रवेश पाया ही नहीं अत रोगी इस रोग से पीड़ित हो ही नहीं सकता। पहले वान परकेट की विधि से यह परीक्षा की जाती थी किन्तु अब मैंटोक्स विधि से ही की जाने लगी है।

वान परकेट परीक्षा[2]—रोगी की अग्रबाहु पर एक बूँद ओल्ड ट्युबर कुलीन[3] की रखी जाती हैं तथा उसके पास ही दूसरी बूंद ग्लसरीनब्रोथ[4] की रखते हैं, जो कण्ट्रोल का काम देती है। दोनों ही बूंदों में होकर अलग अलग सुई से या पहले ग्लसरीन ब्रोथ की बूंद में होकर चर्म में खरोंच कर दी जाती है। प्रतिक्रिया व्यक्त होने पर २४–४८ घंटे के अन्दर ही उस स्थान पर लाल चमकीला फलक सा पड़ता है जो लगभग ५ मिलीमीटर व्यास का होता है।

मैंटोक्स परीक्षा—इस परीक्षा में ओल्ड ट्युबर कुलीन के १ : १०,००० घोल के ·१ सी. सी. का सिक परीक्षा की तरह चर्म में इंजेक्शन दिया जाता है तथा दूसरी अग्रबाहु की भुजा में कण्ट्रोल के रूप ग्लसरीन ब्रोथ के इसी शक्ति के घोल के १ सी. सी. का इसी प्रकार इंजेक्शन दिया जाता है। ध्यान रहे कि ग्लसरीन ब्रोथ का इन्जेक्शन दूसरी सिरिंज से दिया जाय तथा दोनों सिरिंज को उबाल कर

1. Scarlet fever 2. Von Perquet's Test 3. Old Tuberculin (O. T.)
4. Mantoux Test

शुद्ध कर लिया जाना चाहिए। यदि ४८–७२ घंटे के अन्दर अन्दर ट्युबर कुलीन के इंजेक्शन के स्थान पर १० मिलीमीटर व्यास के घेरे में शोथ तथा लालिमा की उत्पत्ति हो जाती है तो परीक्षा व्यक्त समझी जानी चाहिए। यदि ४८ घंटे के अन्तर्गत कोई भी फल नहीं होता तो १:१००० घोल प्रयुक्त कर फिर परीक्षा की जानी चाहिए। यदि इस बार भी व्यक्त न हो तो अन्तिम रूप से १:१०० घोल का प्रयोग किया जा सकता है।

ध्यान रखना चाहिए कि ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती जाती है परीक्षा व्यक्त होने की सम्भावना भी अधिक अधिक होती जाती है। यह भी सम्भव है कि रोग की प्रारम्भिक अवस्था में परीक्षा व्यक्त न हो तथा रोग की बिलकुल अन्तिम अवस्था में भी शारीरिक शक्तियों का ह्रास हो जाने के कारण परीक्षा व्यक्त न हो। यह पहले ही संकेत किया जा चुका है कि परीक्षा व्यक्त होने का अर्थ केवल इतना ही है कि क्षय जीवाणुओं को शरीर में प्रवेश करने का अवसर मिल चुका है। व्यक्ति रोग से पीड़ित हो चाहे न हो, यदि परीक्षा व्यक्त नहीं होती तो इसका स्पष्ट अर्थ यह लगाया जा सकता है कि व्यक्ति क्षय से पीड़ित नहीं।

बाह्य प्रोटीन के प्रति चर्म प्रतिक्रिया परीक्षा—यह परीक्षा वसन्तोद्भव ज्वर[1], श्वास या शीत पित्त की अवस्था में यह जानने के लिए की जाती है कि रोगी किस प्राणिज[2] या वानस्पतिक[3] प्रोटीन के प्रति, असह्यता व्यक्त करता है। जिस प्रोटीन के प्रति वह असह्यता व्यक्त करता है अर्थात् सहन नहीं कर सकता वही पदार्थ रोगी से दूर रक्खा जाता है ताकि श्वास के दौड़े न आने पावें। परीक्षा कठिन या असम्भव तो नहीं किन्तु बहुत कष्टसाध्य है क्योंकि असंख्य प्रकार की प्रोटीनों के साथ परीक्षा कर कर के एक निश्चित फल निकालना पड़ता है। घोड़े के बाल, पंख भिन्न भिन्न फूलों के पराग, फल, अण्डे, मछली के पेशी सूत्र आदि के जल में घुले हुए सत्व आते हैं जिन के साथ परीक्षा की जाती है। सत्व की एक बूंद चर्म पर डाल दी जाती है तथा उस में होकर लगभग एक सेंटीमीटर लम्बी खरोंच कर दी जाती है। यदि परीक्षा व्यक्त होती है तो उस स्थान पर दस मिनट के अन्दर अन्दर एक फलक सा पड़ जाता या लालिमा उत्पन्न हो जाती है जो ½ से १ घंटा के समय में पूर्णता को पहुँच जाती है। जिस पदार्थ के प्रति यह परीक्षा व्यक्त होती है उसी से रोगी को बचाया जाता है।

1. Hay fever 2. Animal 3. Vegitable

कुष्ट के लिए परीक्षा—प्रत्यक्ष जीवाणु-दर्शन ही कुष्ट के निदान का भी निश्चित साधन है किन्तु अब तक वर्णित किसी भी विधि से कुष्ट के जीवाणु नहीं देखे जा सकते। इन जीवाणुओं के देखने के लिए निम्न विधि काम में लाई जाती है—

१. त्वचा स्राव परीक्षा—

अ—गांठों, कर्णपाली या स्वाप स्थान[1] से स्राव लेकर परीक्षा की जाती है। एक तेज चाकू से इस स्थान पर चर्म का लेखन करते हैं अर्थात् चर्म का ऊपरी स्तर छील कर अलग कर दिया जाता है। इसके बाद जब रक्तरस स्रवने लगता है तो उस को काचपट्ट पर लेकर रंजन करके परीक्षा की जाती है।

ब—छेदन पद्धति उपरोक्त गांठ, कर्णपाली या स्वाप स्थान से ही चर्म का थोड़ा १–२ मिलीमीटर टुकड़ा कैंची से काट कर काचपट्ट पर रगड़ दिया जाता है ताकि उस स्थल का स्राव वहाँ लग जाय। इस प्रकार प्रलेप तैयार करके रंजन करने के पश्चात् परीक्षा की जाती है। दोनों ही विधियों में चर्म को पहले भली प्रकार साफ कर लिया जाना चाहिए तथा दूसरी विधि में वर्णित चर्म के ऊपरी भाग का टुकड़ा ही चिमटी से पकड़ कर उठा कर कैंची से काटना चाहिए। रोग के कारण स्थान के संज्ञा हीन होने से रोगी को कोई कष्ट नहीं होता।

२. नासा स्राव परीक्षा—

पहले नासा को प्रकाशित कर साफ रुई से पोंछ दिया जाना चाहिए। बाद में चाकू से खुरच कर या प्लेटीनम तार की सहायता से नासा मध्य भित्ति से स्राव लेकर काचपट्ट पर उसका प्रलेप तैयार कर लिया जाता है। इसको रंजन करके परीक्षा की जाती है।

उपरोक्त तीनों ही पद्धतियों में तैयार किये गये प्रलेप को क्षय जीवाणु की तरह ज़ील नील्सन विधि से ही रंजित किया जाता है। कुष्ट के जीवाणु कुष्ट जीवकोषों के अन्दर बण्डलों में दिखाई देते हैं।

वर्द्धन तथा प्राणियों में अन्तःक्षेप ये दोनों ही विधियाँ प्रायः कुष्ट जीवाणु के लिए प्रयोग में नहीं लाई जातीं।

1. Anaesthetic spot

वीर्य परीक्षा—प्रत्येक निस्सन्तान दम्पत्ति में गर्भ धारण न होने का कारण निश्चित करने के लिए स्त्री के अवयवों की परीक्षा के साथ ही साथ या बाद में जब स्त्री के सभी अंग ठीक मालूम पड़ें, पुरुष की परीक्षा भी आवश्यक है। यदि पुरुष नपुंसक है तब तो कारण स्पष्ट है किन्तु यदि पुरुष पुंसत्व युक्त है तब भी यह हो सकता है कि उत्सर्गित वीर्य शुक्र कीट हीन हों जो गर्भ धारण न करा सकें। शुक्र कीटों के लिए ही शुक्र की परीक्षा की जाती है जिसके द्वारा उनकी गतिशीलता, आकार तथा संख्या का अनुमान लगाया जाता है।

परीक्षा के लिए वीर्य प्रयोग शाला में ही हस्तमैथुन द्वारा लिया जा सकता है अथवा एफ. एल., या सविराम मैथुन द्वारा लेकर काच की शुद्ध परख नली में रखकर प्रयोग शाला भेजा जा सकता है। एफ. एल. की सहायता लेते समय यह नितान्त आवश्यक है कि उस को गर्म पानी में ३, ४ बार धोकर सुखा लिया जाय क्योंकि एफ. एल. में बहुधा शुक्र कीट नाशक पदार्थ लगा रहता है। जिस परखनली में वीर्य भेजा जाय वह भी ४, ६ बार पहले प्रयोग में आ चुकी होनी चाहिए तथा गर्म पानी से धोकर शुद्ध कर ली गई एवं सुखा ली गई हो। नई परख नली का ही प्रयोग करना ठीक नहीं। एक बात और भी ध्यान में रखने की है और वह यह कि शुक्र कीट उष्णता सहन नहीं कर सकते जब कि शीत में सुरक्षित रहते हैं। अतः परख नली के मुख को जलाभेद्य रूप से बन्द कर के थर्मीज़ फ्लास्क में बरफ या ठण्डे पानी में रखकर भेजा जा सके तो और भी अच्छा है। उत्सर्ग होने के एक घंटे के अन्दर अन्दर वीर्य की परीक्षा हो जाय यह भी आवश्यक है। परीक्षा प्रलेप तयार कर के सूक्ष्म दर्शक द्वारा की जा सकती है।

॥ इति ॥

मेडिकल पुस्तकें

डा० सुरेशप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित पुस्तकें

उत्तर प्रदेशीय सरकार द्वारा पुरस्कृत

रोगी की सेवा और पथ्य, वायोकेमिक चिकित्सा, आर्गेनन, एलोपैथिक चिकित्सा तथा होम्योकम्परेटिव प्रिंस मेटेरिया मेडिका।

१—रोगी की सेवा और पथ्यः—इस पुस्तक में रोगी की सेवा, पथ्य कैसे बनाया जाता है, आकस्मिक दुर्घटना होने पर प्राथमिक उपचार, पट्टी बाँधने की विधि, पथ्य-कुपथ्य, भोजन की अधिकारिक ताल्लिका एवं मात्रा, विटामिन आदि सभी विषयों का सुन्दर वर्णन दिया गया है। १६ चित्रों के साथ।

मू० ३) केवल।

२—वायोकेमिक चिकित्साः—वायोकेमिक-चिकित्सा सिद्धान्त के सम्बन्ध में सभी आवश्यक बातें तथा बारहों दवाओं का वृहद् मुख्य लक्षणों और किन-किन बीमारियों पर उसका मुख्य कार्य होता है, सरल ढंग से समझाया गया है।

मू० ४) केवल।

३—आर्गेननः—महात्मा हैनिमन द्वारा लिखित आर्गेनन का यह हिन्दी रूपान्तर है। सिद्धान्त एवं सूत्रों की व्याख्या बड़े ही स्पष्ट ढंग से की गयी है।

मू० ४) केवल।

४—होमियो कम्परेटिव प्रिंस मेटेरिया मेडिका—इस पुस्तक में सभी होमियोपैथिक दवाओं का वर्णन अन्य दवाओं के साथ तुलनात्मक ढंग से किया

गया है। प्रत्येक दवाओं के साथ उसकी प्रस्तुतविधि, अनुसरणीय, प्रतिषेधक दवाएँ एवं फार्मूला दिया गया है। मू० ८) केवल।

५—*एलोपैथिक चिकित्सा* (द्वितीय संस्करण)—ले० डा० सुरेश प्रसाद शर्मा। उ० प्र० सरकार द्वारा पुरष्कृत। प्रस्तुत पुस्तक विभिन्न आठ अध्यायों में लिखी गयी है। प्रथम चारों अध्यायों में 'विषय प्रवेश', 'शरीर विज्ञान', 'रोग निदान सम्बन्धी आवश्यक बातों' और 'नवीनतम आविष्कृत औषधियों' का वर्णन क्रमशः दिया गया है। पाँचवें अध्याय में प्रचलित सभी रोगों का वर्णन वृहद रूप से और उनकी चिकित्सा दी गयी है। चिकित्सा में प्रचलित नुस्खों, पेटेण्ट औषधियों एवं परीक्षित इंजेक्शन आदि का वर्णन है।

छठें अध्याय में—'लाक्षणिक चिकित्सा' और उसका महत्व, सातवें में—विटामिन द्वारा चिकित्सा और शक्तिवर्द्धक औषधियों का वर्णन है। आठवें अध्याय में—'ग्रन्थिस्राव' द्वारा चिकित्सा का वर्णन है। इस प्रकार पुस्तक सर्वोत्कृष्ट है। अधिकारिक विद्वानों की सम्मति भी दी गयी है।

मूल्य केवल ८) मात्र

६—*एलोपैथिक पेटेण्ट मेडिसिन्स—ले० अ० ना० पाण्डे*—इस पुस्तक में एलोपैथिक की प्रायः सभी पेटेण्ट दवाओं का वर्णन, उसका मिश्रण [Composition], प्रयोग विधि, मात्रा, किन-किन रोगों में उनके प्रयोग से लाभ होता है, किन कम्पनियों द्वारा तैयार की गई है, आदि बातें सरल ढंग से बतलाई गई हैं। मू० ३।) केवल।

७—*मलेरिया और कालाजार चिकित्सा (एलोपैथिक) ले०—डा० रा० च० भट्टाचार्या*—इस पुस्तक में मलेरिया और कालाजार का विशद वर्णन किया गया है। रोग का इतिहास, परिचय, रोग का संक्रमण, शारीरिक विकृति, खून का तुलनात्मक अध्ययन और खून जाँच करने की विधि तथा रोग की सामान्य चिकित्सा, लाक्षणिक चिकित्सा और विशिष्ट चिकित्सा का सविस्तार वर्णन दिया गया है। कालाजार के "विशिष्ट चिकित्सा के अन्दर" यूरियास्टीवामीन, नीयोस्टीबोसन, स्टिल्वामिडोन, नियोस्टीवीन, सलुस्टीवोसन, स्टीवेटीन और एन्थिमोलिन आदि सुई की औषधियों को उम्र अनुसार मात्रा, देने की विधि तथा यदि

यूरिया की सुई नस से बाहर हो जाये तो क्या उपचार करना चाहिए आदि बातों को भी सुन्दर ढंग से बतलाया गया है। मूल्य १।।।) सजिल्द।

डा० सुरेशप्रसाद शर्मा द्वारा लिखित अन्य पुस्तकें

८—*इंजेक्शन (चतुर्थ संस्करण)*:—आज के इस वैज्ञानिक युग में सूचीवेध विज्ञान, चिकित्सा क्षेत्र में अपना प्रथम स्थान रखता है। इस प्रकार उपयोगिता के दृष्टि से ही इसकी रचना हिन्दी में की गई है। पुस्तक के प्रथम खण्ड में सूचीवेध की आवश्यकता, सूचीवेध सम्बन्धी वैज्ञानिक तत्वों का संग्रह, सूचीवेध के भेद-उपभेद और उनके देने की विधि, इसमें प्रयुक्त होनेवाले यंत्र, दवाइयाँ, मात्रा और मात्राओं के सम्बन्ध में बड़े-बड़े विद्वानों का मत, सूचीवेध के दुष्परिणाम, इसके खतरे एवं उनकी शांति के उपाय, साथ ही साथ सूचीवेध सम्बन्धी आवश्यक क्रियात्मक विषयों पर पूर्ण विस्तार के साथ विवेचन किया गया है। पूतिकरण [Sterlization] पर एक अलग से ही अध्याय लिख गया है।

द्वितीय खण्ड में सुई की औषधियों का वर्णन है। इन औषधियों के परिचय में—उनका पर्यायवाची शब्द, रासायनिक संगठन, पैकेज, गुण, प्रयोगविधि, मात्रा, चेतावनी आदि विषयों पर वृहद् रूप से प्रकाश डाला गया है। औषधि-गुण के वर्णन में तीन विभाग कर दिये गये हैं। प्रथम-फार्माकोलोजी, द्वितीय—थेराप्युटिक प्रयोग और तृतीय—चिकित्सक का उस औषधि सम्बन्धी अनुभव। फार्माकोलोजी में उस औषधि का शरीर के अंग-प्रत्यंगों पर पड़नेवाला साधारण तथा विशेष प्रभाव बतलाया गया है। थेराप्युटिक प्रयोग में क्रमानुसार उसके विभिन्न महत्वशाली प्रयोगों का दिग्दर्शन कराया गया है। वृद्ध चिकित्सकों का अनुभव बड़े उद्योग एवं साधना से संग्रह किया गया है।

साथ ही इस खण्ड में अन्य औषधियों के अतिरिक्त-स्टेरोडिन, एन्थी-सान, साइनापाँईरिडिन, मायोस्टिविन, सारकोलन, लैकरनाँल, लैरोस्टीडियन एवं नवीनतम चमत्कारिका औषधियों में—*पेरान्ड्रीन* [Perandren], *इरगापाइरिन* [Irgapyrin], *औरियोमाइसिन* [Aureomycin], *पेनिसिलिन* [Penicillin], *स्ट्रेप्टोमाइसिन* [Streptomycin],

क्लोरोमाइसिटिन [Chloromycetin], *टेरामाइसिन* [Terramycin] आदि औषधियों का बहुत ही वैज्ञानिक एवं सारगर्भित वर्णन दिया गया है।

तृतीय खण्ड में व्याधि और उनकी चिकित्सा [**Therapeutic Hints**] का वर्णन दिया गया है। साथ ही सिरम द्वारा चिकित्सा [**Sirum Therapy**], वैक्सीन चिकित्सा [**Vaccine Therapy**], फाइलोकोजन चिकित्सा [**Phylocogen Therapy**] एवं सिम्पुल इंजेक्शन का वर्णन दिया हैं।

जीवनीय तत्व [**Vitamins**] आज चिकित्सा क्षेत्र में कितनी महत्वशालनी है यह वर्णनातीत है। अतः जीवतिक्ति विषियक चिकित्सा [**Vitamin Therapy**] के अन्दर वृहद् रूप में इसका वर्णन किया गया है। इसके गुण, इसकी महत्ता आदि विषयों को स्पष्ट रूप से समझाया गया है।

इस प्रकार यह पुस्तक न केवल वद्यार्थियों, प्रारम्भिक चिकित्सकों मात्र के लिये उपयोगी है वरन् निपुण एवं प्रतिष्ठित चिकित्सकों के लिये भी निर्देशक का कार्य करेगी क्योंकि इस प्रकार सर्वांगपूर्ण संगृहीत विषय एक जगह उन्हें भी प्राप्त नहीं होता। सुन्दर छपाई, कागज एवं चित्रों से परिपूर्ण। मूल्य १०) सजिल्द।

९—*मिक्श्चर (पंचम संस्करण)*—इस पुस्तक में एलोपैथिक दवाओं का मिक्श्चर बनाने की विधि, उसके सम्बन्ध में आवश्यकीय जानकारी, मात्राओं का निर्देश एवं विभिन्न डाक्टरी माप आदि का वर्णन दिया गया है। इसके अतिरिक्त १८५ रोगों पर परीक्षित ३५० नुस्खों का वर्णन दिया है। साथ ही साथ पेटेण्ट दवाओं और उन रोगों पर चलने वाले इन्जेक्शनों का नाम भी दिया गया है। इस प्रकार यह पुस्तक उन लोगों के लिये बहुत ही अनोखी सिद्ध हुई जिन्हें इस विद्या की विशेष जानकरी नहीं है। पाकेट साइज में हर समय साथ रखने योग्य।

मूल्य २।) केवल।

१०—*एलोपैथिक पाकेट गाइड*—इस पुस्तक में प्रमुख रोगों के परिचय, कारण तथा निदान के अनुसार एलोपैथिक प्रचलित औषधियों का नुस्खा, इन्जेक्शन यथा पेटेण्ट औषधियों द्वारा चिकित्सा करने की विधि सरल हिन्दी भाषा में

लिखी गयी है। पुस्तक विद्यार्थियों एवं समय-समय पर प्रतिष्ठित चिकित्सकों के लिये भी उपयोगी है। मूल्य २।।।) केवल।

११—स्त्री रोग चिकित्सा (सचित्र)—इस पुस्तक में तमाम स्त्री अवयवों का वर्णन, उनको होने वाले रोगों का कारण, परिचय, निदान एवं उनकी समुचित चिकित्साविधि होमियोपैथिक दवाओं द्वारा दी गई है। मूल्य ४।।) केवल।

१२—होमियो पारिवारिक चिकित्सा (द्वितीय संस्करण)—इस पुस्तक में चिकित्सा सम्बन्धी आवश्यकीय बातों, प्रत्येक रोगों के मुख्य-मुख्य लक्षणों, परिचय, निदान और परीक्षित होमियोपेथिक दवाओं द्वारा उनकी चिकित्सा विधि दी गयी है। मूल्य ५) केवल।

१३—भेषजसार (द्वितीय संस्करण)—इस पुस्तक में होमियोपैथिक दवाओं के मुख्य-मुख्य लक्षणों, ३१ पेटेण्ट मेडिसिन्स और बाहरी प्रयोग की दवाओं का वर्णन दिया है। मूल्य २) केवल।

१४—होमियो इंजेक्शन चिकित्सा—इस पुस्तक में होमियोपैथिक में इन्जेक्शन की आवश्यकता, सूचीवेध लगाने के विभिन्न तरीके, इसके सम्बन्ध में सभी आवश्यक बातें एवं होमियोपैथिक सुई की औषधि किस प्रकार तैयार की जाती है आदि बातों का वर्णन दिया गया है। मूल्य १।।।) केवल।

१५—भारतीय औषधावली तथा पेटेण्ट मेडिसिन (द्वितीय संस्करण)—इस पुस्तक में भारतीय एवं होमियोपैथिक पेटेण्ट दवाओं का वर्णन दिया गया है। मूल्य १।।) केवल।

१६—होमियो थाइसिस चिकित्सा—थाइसिस रोग और उसकी चिकित्सा का वृहद् वर्णन दिया गया है। मूल्य ।।।) केवल।

१७—होमियो टायफायड चिकित्सा—इसमें टायफायड रोग और उसकी चिकित्सा का वृहद् वर्णन दिया गया है। मूल्य ।।।) केवल।

१८—होमियो न्यूमोनियाँ चिकित्सा—इसमें न्यूमोनियाँ रोग और उसकी चिकित्सा का वृहद् वर्णन दिया गया है। मूल्य ।।।) केवल।

१९—*होमियो पाकेट गाइड (द्वितीय संस्करण)*—नित्य होने वाली बीमारियों पर १०–१५ परीक्षित दवाओं द्वारा चिकित्सा का वर्णन दिया गया है। मूल्य १) केवल।

२०—*बायोकेमिक पाकेट गाइड (द्वितीय संस्करण)*—नित्य होने-वाली बीमारियों पर १०–१५ परीक्षित दवाओं द्वारा चिकित्सा का वर्णन दिया गया है। मूल्य १) केवल।

२१—*होमियोपैथिक मेटेरिया मेडिका*—यह पुस्तक प्रारम्भिक चिकित्सकों एवं विद्यार्थियों के लिये अति उपयोगी है। इस पुस्तक के सहारे किसी भी रोगी के लक्षणों से आप होमियोपैथिक औषधियों का मेल सहज में खोज कर सफलता प्राप्त कर सकते हैं। पुस्तक के अन्त में रोग और रोगी के प्रकृतिगत औषधियों की सूची देकर विस्तृत थेराप्युटिक्स दिया गया है जिससे इस पुस्तक की उपादेयता बहुत ज्यादा बढ़ जाती है। सरल हिन्दी भाषा में प्रकाशित की गई है।

मूल्य सजिल्द ४) मात्र।

२२—*थर्मामीटर*—मूल्य ।), २२—एनिमा और कैथेटर—मूल्य ।=)

२३—*रोग लक्षण संग्रह*—मूल्य ≈)।

डा० शिवदयाल गुप्त ए० एम० एस० द्वारा लिखित पुस्तकें—

१—*सचित्र नेत्र रोग विज्ञान(एलोपैथिक)*—नेत्र पर हिन्दी भाषा में सर्वश्रेष्ठ पुस्तक है। प्रथम-नेत्र रचना, उसकी कार्यक्षमता आदि विषयों पर सुन्दर विवेचन किया गया है। जैसे निकट दृष्टि ज्ञान, दूर दृष्टिज्ञान आदि विषयों का सुन्दर विवेचन है। साथ ही साथ नेत्र सम्बन्धी सभी रोगों का वर्णन और उनकी चिकित्सा एलो-पैथिक ढंग से दी गई है। मोतियाविन्द, ग्लुकोमा, आदि पर शल्य कर्म किस प्रकार किया जाता है, उस समय कौन सी सावधानी करनी चाहिए, दी गई है। चश्मा के लिए नेत्र परीक्षा कैसे की जाती है। नम्बर का निर्णय किस प्रकार किया जाता है आदि बातें सरल ढंग से बतायी गई हैं। अन्त में प्रसिद्ध औषधियों का नेत्र चिकित्सा में महत्व, विटामिन्स का महत्व और शब्द कोष दिया गया है। १३० चित्रों के साथ मूल्य केवल ८) मात्र।

२–सफल औषधियाँ–पेनिसिलिन,स्ट्रेप्टोमायसीन-टैरामायसीन-औरोमायसीन-क्लोरोमायसिटीन-बेसीट्रेसीन, गार्लीसीन, एईरोस्पोरिन, टायरोथ्रायसीन, आयलो-टायसीन, मेग्नेमायसीन, फ्यूमेगिलीन-पी० ए० एस तथा क्षय रोग नाशक अन्य औषधियाँ-सल्फा औषधियाँ (सीवाज़ोल, एम० बी० ६६३)—मलेरिया नाशक (कुनीन,एटेब्रीन,प्लाज्मोचीन, पेल्यूड्रीन,क्लोरोक्वीनडेरा प्रिय आदि),कुष्ट नाशक योग, आतशक हर योग,कालाज़ार नाशक योग, अमीबिक आमातिसार हर योग, कृमिघ्न औषधियाँ तथा विष एवं प्रतिविष।

पुस्तक में हर एक औषधि के गुणाधर्म भिन्न भिन्न रोगों में देने की मात्रा व विधि, दुष्परिणाम तथा उनसे रक्षा एवं औषधि मिलने का पता आदि सभी बातों पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है।

लगभग २५० पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल २॥)

३—सन्तति निग्रह—अर्थ कट्रोल या संतति निग्रह की आजकल बहुत चर्चा पायी जाती है। लेकिन इसके सम्बन्ध में व्यवहारिक ज्ञान की पुस्तकें बहुत थोड़ी ही मिलती हैं। प्रस्तुत पुस्तक में किन किन उपायों द्वारा संतति निग्रह किया जा सकता है, बड़े स्पष्ट एवं सुबोध शब्दों में सचित्र समझाया गया है। हर व्यक्ति को पढ़ना चाहिए। मूल्य केवल ॥।) आने।

४—रोगों से रक्षा—अर्थात् हैजा, प्लेग, मलेरिया, टी० बी०, चेचक आदि से बचने के उपायों का सुन्दर वर्णन दिया गया है। मूल्य ॥।) आने।

५–मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा (एलोपैथिक)–चिकित्सा में रोग निदान का सर्वाधिक महत्व है, क्योंकि बिना इसके चिकित्सक एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता। यह सत्य है कि रोग निदान के लिए रोगी की प्रत्यक्ष परीक्षा–जैसे लक्षण, चिह्न, इतिहास, रोगी की परीक्षा आदि ही महत्व पूर्ण है लेकिन कई अवस्थायें ऐसी आती हैं जहाँ इनका महत्व नगण्य हो जाता है और मल, मूत्र, रक्तादि परीक्षा ही एक मात्र सन्धान होती है निदान का। आज के इस वैज्ञानिक युग में तो उनका और भी महत्व बढ़ गया है।

इस प्रकार प्रस्तुत पुस्तक में बड़े ही सरल शब्दों में उपरोक्त परीक्षाओं सम्बन्धी सभी बातों का स्पष्ट वर्णन दिया गया है। इसमें न केवल मल, मूत्र;

रक्तादि की परीक्षाओं का ही वर्णन है बल्कि स्राव, प्रलेप, थूक, वीर्य आदि परीक्षाओं की विधि भी सरल ढंग से दी गयी है। इसके अतिरिक्त परीक्ष्य पदार्थ संकलन, विभिन्न परीक्षाओं के लिए किस प्रकारसंकलन किया जाता है, किस रोग में किस प्रकार परीक्षायें की जायँ तथा उन परीक्षाओं का क्या अर्थ लगाया जाय आदि समस्त बातों का वर्णन सुन्दर ढंग से किया गया है। ३८ चित्रों के साथ। मूल्य केवल २॥)

'एलोपैथिक चिकित्सा' पर प्राप्त कुछ मुख्य सम्मतियाँ

"·····लेखक ने अति सरल ढंग से आधुनिक एलोपैथिक चिकित्सा को समझाया है। यह पुस्तक होमियोपैथिक, आयुर्वेदिक और यूनानी चिकित्सकों के लिए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होगी। लेखक का प्रयास सराहनीय है·····"।

एम० पी० माथुर
सिविल सर्जन
किंग एडवर्ड vii हास्पिटल, बनारस।

".....The book has been written on modern lines. It is a good attempt of the writer.

S. Nath.
M. B. B. S, D. O. M. S, Z. L. O.
(London) Banaras

".....It gives him Credit. Nearly all the subject have been dealt with Consisely and should be a great help to those who would like to have hindi translation of Medical terms in English.

G. S. Bhargav
Civil Surgeon (Retd)
King Edward vii Hospital. Banaras.

प्राप्तिस्थान—

मेडिकल पुस्तक भवन
अशोक भवन, गोला–दीनानाथ, बनारस।